आगम मनीषी

श्री तिलोकचंद जैन द्वारा संपादित

जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर

भाग ० ८

ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र : परिचय

प्रश्न–१ : इस सूत्र का परिचय क्या है ?

उत्तर– श्वेताम्बर जैनों द्वारा मान्य १२ उपा गसूत्रों में यह पाँचवाँ उपा गसूत्र है। न दी सूत्र की श्रुतसूचि में इस शास्त्र का नाम अ गबाह्य कालिक सूत्रों में है। औपपातिक सूत्र से लेकर प्रज्ञापना तक के चारों उपा ग उत्कालिक है। जिनके मूलपाठ की स्वाध्याय चारों प्रहर में हो सकती है। पर तु इस जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की स्वाध्याय रात्रि या दिन के प्रथम और चतुर्थ प्रहर में हो सकती है ।

मुख्यतः इस शास्त्र में जम्बूद्वीप के स ब ध में भोगोलिक एव अन्य जानकारियाँ होने से इसका सार्थक नाम ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति रखा गया है। इसमें विभाग रूप में सात अध्याय है, जिन्हें "वक्षस्कार" स ज्ञा दी गई है। इसके अतिरिक्त इसमें कोई प्रतिविभाग आदि नहीं है । इसलिये यह स पूर्ण सूत्र एक ही श्रुतस्क ध के रूप में है। इस सूत्र का परिमाण ४१४६ श्लोक प्रमाण माना गया है ।

रचनाकार–व्याख्याकार–इस सूत्र के रचनाकार का नाम सर्वथा अज्ञात है। अतः पहले के उपा ग सूत्रों के समान यह शास्त्र भी देवर्द्धिगणि के लेखन काल में स कलित करवाया गया है ऐसा स्वीकारना ही सर्वथा उचित है। क्यों कि न दी सूत्र में इसका नाम है और उसके पहले होने का कहीं कोई निर्देश प्राप्त नहीं होता है ।

इस सूत्र पर आचार्य श्री मलयगिरिजी की टीका उपलब्ध नहीं है और उनसे पूर्व आचार्यों ने चूर्णि व्याख्या करी थी ऐसे स केत मिलते हैं पर तु वह व्याख्या भी आज उपलब्ध नहीं है। आचार्य मलयगिरिजी के बाद विक्रम स वत १६६० में श्री शा तिचन्द्र वाचक के द्वारा स स्कृत टीका रची गई है जो आज मुद्रित मिलती है। आचार्य पू॰श्री घासीलालजी म॰सा॰रचित स स्कृत टीका, हिंदी-गुजराती अनुवाद के साथ उपलब्ध है। अन्य अनेक जगह से अर्थ विवेचन हिंदी-गुजराती में मुद्रित उपलब्ध है। गुजरात राजकोट से गुरुप्राण फाउन्ड़ेशन द्वारा गुजराती विवेचन

युक्त महत्त्वपूर्ण स पादन के साथ यह शास्त्र प्रकाशित उपलब्ध है। आगम सारा श और प्रश्नोत्तर के दोनों प्रावधानों में हमने इस शास्त्र के विषयों को दोनों प्रकार की शैली में देने का प्रावधान रखा है।

प्रश्न–२ : इस सूत्र के सात वक्षस्कारों का स क्षिप्त विषय परिचय क्या है ?

उत्तर– (१) प्रथम वक्षस्कार में– ज बूद्वीप के वर्णन का प्रार भ इसकी जगती–परकोटा से किया गया है। तदन तर ज बूद्वीप के वर्णन में दक्षिण दिशावर्ती भरत क्षेत्र का क्षेत्रीय–भोगोलिक वर्णन किया है ।

(२) दूसरे वक्षस्कार में– भरतक्षेत्र में काल परिवर्तन स ब धी वर्णन उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप कालचक्र के ६–६ आरों के स्वरूप द्वारा किया है।

(३) तीसरे वक्षस्कार में–भरतक्षेत्र में उत्पन्न होने वाले प्रथम चक्रवर्ती भरत महाराजा का वर्णन उनकी ऋद्धि एव छ ख ड़ की विजययात्रा के माध्यम से किया है।

(४) चौथे वक्षस्कार में–भरतक्षेत्र के बाद क्रमशः उत्तर दिशा की तरफ आगे बढ़ते हुए चुल्लहिमव त पर्वत से लेकर महाविदेह क्षेत्र एव मेरु पर्वत का वर्णन है। पुनः उत्तर में नीलव त पर्वत से लेकर ऐरवत क्षेत्र तक वर्णन पूर्ण किया है।

(५) पाँचवें वक्षस्कार में–तीर्थंकरों के जन्म समय ५६ दिशाकुमारियाँ और ६४ इन्द्रों के द्वारा किये जाने वाले जन्माभिषेक स ब धी रोचक और विस्तृत वर्णन है।

(६) छट्ठे वक्षस्कार में–ज बूद्वीप के क्षेत्रीय वर्णन स ब धी पर्वत, नदी, क्षेत्र, द्रह, तीर्थ आदि की कुल स ख्या गिनाई गई है।

(७) सातवें वक्षस्कार में–सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र एव तारा स ब धी अर्थात् ज बूद्वीप के ज्योतिष म ड़ल स ब धी स क्षिप्त और विविध जानकारी दी गई है, जो चन्द्र-सूर्य प्रज्ञप्ति का अर्थात् ज्योतिष-गणराज-प्रज्ञप्ति सूत्र का स क्षिप्त सार मात्र है।

इस प्रकार इस सूत्र में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कालचक्र सहित ज बूद्वीप क्षेत्र का भूगोल-खगोल स ब धी यों विविध तत्त्वों का परिबोध है।

प्रश्न-३ : आत्म साधना के इस धार्मिक जीवन में जम्बूद्वीप वगैरह भौगोलिक ज्ञान का महत्त्व किस प्रकार है ?

उत्तर- चौदह राजू प्रमाण यह लोक हैं। इस में जीव परिभ्रमण करता रहता है। ऊँचालोक तिर्छालोक और नीचालोक में भी जीव परिभ्रमण करता रहता है। तिर्छालोक में भी अस ख्याता द्वीप समुद्र है उनमें भी जीव जन्म मरण करते रहते हैं किन्तु उन द्वीप समुद्रों के मध्य में ढ़ाई द्वीप दो समुद्र है जिनमें जीव जन्म मरण भी करते हैं और मुक्त भी हो सकते हैं। इसी ढ़ाई द्वीप के बीचो बीच में अथवा सभी द्वीप समुद्रों के बीचो-बीच केन्द्र स्थान में ज बूद्वीप है। यह सम्पूर्ण तिर्छालोक के भी मध्य में है और इसी में हमारा निवास स्थान दक्षिण भरत का प्रथम ख ड़ है। अतः मुक्ति प्राप्त करने योग्य इस क्षेत्र रूप हमारे निवास स्थान से स ब धित भौगोलिक जानकारी भी आवश्यक है। आगमों में आध्यात्मिक ज्ञान के साथ अन्य विषय लोक स्वरूप, जीवादि स्वरूप आदि के ज्ञान को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसे भी अपेक्षा से आध्यात्म के सहयोगी ज्ञान माना गया है। लोक अलोक क्षेत्र एव जगत पदार्थों का सत्य ज्ञान भी आत्मा में परम स तुष्टि एव आन द देने वाला होता है। तथा सम्यक श्रद्धान को पुष्ट करने वाला भी होता है ।

वक्षस्कार-१

प्रश्न-१ : ज बूद्वीप का सामान्य परिचय किस प्रकार है ?

उत्तर- सम्पूर्ण लोक के तीन विभाग है- ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्छालोक। तिर्छेलोक में रत्नप्रभा नरक पृथ्वी पि ड़ के छत का ऊपरी भाग ही तिर्छालोक का समभूमि भाग है। इसी पर अस ख्य द्वीप-समुद्र है जो एक के बाद दूसरा यों क्रमशः गोलाई में घिरे हुए हैं । जिसमें पहला मध्य का द्वीप पूर्ण चन्द्र के आकार, थाली के आकार गोल है। शेष सभी द्वीप समुद्र क्रमशः एक दूसरे को घेरे हुए होने से वलयाकार, चूड़ी के आकार में रहे हुए हैं। उन द्वीप समुद्रों का वर्णन जीवाभिगम सूत्र में किया गया है। बीचों बीच थाली के आकार का जो गोल द्वीप है, वही जम्बूद्वीप है। यही सम्पूर्ण तिर्छालोक का मध्य केन्द्रबिन्दु है।

चारों दिशाओं का प्रारम्भ भी इसी द्वीप के बीचोबीच में स्थित मेरुपर्वत से होता है। इस जम्बूद्वीप का वर्णन इस प्रकार है-

जम्बूद्वीप-तिर्छालोक के बीचोबीच समभूमि पर स्थित यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन लम्बा, एक लाख योजन चौड़ा, परिपूर्ण गोल चक्राकार, थाली के आकार अथवा पूर्ण चन्द्रमा के आकार वाला है । इसमें मुख्य ६ लम्बे पर्वत हैं जो इस द्वीप के पूर्वी किनारे से पश्चिमी किनारे तक लम्बे हैं। जिससे इस द्वीप के मुख्य सात विभाग(क्षेत्र) होते हैं, यथा- (१) भरतक्षेत्र (२) हेमवयक्षेत्र (३) हरिवर्षक्षेत्र (४) महाविदेहक्षेत्र (५) रम्यक्वासक्षेत्र (६) हेरण्यवयक्षेत्र (७) ऐरवतक्षेत्र । इनमें पहला भरत क्षेत्र दक्षिण दिशा में है । उसके बाद दूसरा तीसरा उससे क्रमशः उत्तर दिशा में है । अ त में ऐरवत क्षेत्र इस द्वीप के अ तिम उत्तरी भाग में स्थित है ।

प्रश्न-२ : जगती किसे कहा गया है ?

उत्तर- एक लाख योजन ल बे-चौड़े गोलाकर इस ज बूद्वीप के किनारे चौतरफ परकोटा-कोट है उसे आगम भाषा में जगती कहा गया है। व्यवहार में हम इसे बाउण्ड़री, पाल, घेरा, भित्ति रूप भी समझ सकते हैं। ज बूद्वीप की यह किनारी आठ योजन ऊँची होने से इसे शास्त्र में जगती कहा है। अन्य द्वीप समुद्रों के किनारे यही परकोटा आधा योजन =दो कोस ऊँचा है उसे शास्त्र में वेदिका या पद्मवर वेदिका कहा गया है। तात्पर्य यह है कि समस्त तिरछा लोक में एक जम्बूद्वीप के किनारे ही जगती(ज्यादा ऊँची) है। शेष सभी के वेदिका(छोटी पाली) है ।

जम्बूद्वीप की यह जगती समभूमि पर सर्वत्र १२ योजन चौड़ी है, ऊपर की तरफ क्रमशः घटते-घटते मध्य में आठ योजन और शिखरतल पर चार योजन चौड़ी है। जगती की ऊँचाई के मध्य में चौतरफ फिरणी है। इसे गवाक्षकटक(जालीमय गोखड़ा)कहा गया है। यह ५०० धनुष चौड़ी आधा योजन ऊँची है। यह जगती से बाहर निकली हुई बरामदे सरीखी है। जम्बूद्वीप की परिधि, जगती की परिधि और फिरणी की परिधि ये सभी एक समान कही गई है अर्थात् ३ लाख, १६ हजार, २२७ योजन(३,१६,२२७ यो.) और ऊपर ३ कोस, १२८ धनुष और १३॥ अ गुल गोलाई वाली है ।

प्रश्न-३ : इस जगती का शिखरतल कैसा है ?

उत्तर- समभूमि से आठ योजन ऊपर जगती का शिखरतल सर्वत्र चार योजन की चौड़ाई वाला है। जिसकी गोलाई में परिधि जगती के समान है। चार योजन की चौड़ाई के बीचो बीच सु दर पाल-भींत सरीखी **पद्मवर वेदिका** है जो ५०० धनुष की चौड़ी(जाड़ी) और आधा योजन= दो कोश ऊँची है। इसकी गोलाई स पूर्ण जगती जितनी है अर्थात् जगती के स पूर्ण शिखरतल के बीच में यह पद्मवर वेदिका होने से शिखरतल के दो विभाग हो गये है। एक भीतरी विभाग और दूसरा बाह्य विभाग। भीतरी विभाग ज बूद्वीप के अ दर की तरफ है और बाह्य विभाग ज बूद्वीप के बाहर की तरफ अर्थात् लवण समुद्र की तरफ कहलाता है। फिर भी स पूर्ण जगती और शिखरतल जम्बूद्वीप की सीमा में है। पद्मवरवेदिका के दोनों तरफ कुछ कम दो-दो योजन का क्षेत्र है, उसे **वन ख ड़** कहा गया है अर्थात् वह स पूर्ण खुला विभाग सु दर बगीचे के रूप में है। जिसमें जगह-जगह जलस्थान (पुष्करणियाँ), वृक्ष, लताएँ, पर्वतगृह, म ड़प, बैठने-सोने के आसन शिलापट(कुर्सिया) आदि सभी पृथ्वीकाय मय है। यहाँ बहुत से वाणव्य तर देव घूमने-फिरने, मौज-शौक करने आते रहते हैं, भ्रमण करते रहते हैं ।

वेदिका के गवाक्ष कटक आदि- पद्मवर वेदिका रूप उस भित्ति पर गवाक्ष कटक के समान विविध जालियाँ जालघर हैं यथा- हेमजाल, गवाक्षजाल, खि णिणि(घटिकाएँ)जाल, मणिजाल, कनकजाल, रयण-जाल, ये चौतरफ घिरे हुए हैं। वे जालघर आदि विविध मणिरत्न हार आदि से सुसज्जित हैं। वे आपस में स्पर्श किये हुए नहीं हैं किन्तु बहुत नजदीक(समीप)में होने से म द म द हवा के चलने पर आपस में स्पर्श टकराव होने से उनमें अत्य त सुरीली मधुर ध्वनियें होती रहती है।

पद्मवर वेदिका पर अनेक वृक्ष एव लताएँ हैं, अनेक पद्म कमल जगह-जगह पर रहे हुए है। इसलिए उसे पद्मवर वेदिका कहा गया है। इस प्रकार सु दर भव्य ज बूद्वीप की यह जगती है।

स पूर्ण जगती नीचे से ऊपर तक मौलिक रूप में वज्ररत्नमय पृथ्वीकाय की है। इसके सिवाय गवाक्ष, पद्मवर वेदिका, फिरणी आदि अन्य भी मणिरत्नोंमय है।

पद्मवर वेदिका ठोस भित्ति रूप है तथापि इसके भीतरी और बाहरी दोनों तरफ स्त भों के आधार से बरामदे रूप विभाग हैं जिसमें अनेक प्रकार के रूपों के युगल-जोड़े चित्रित होने से वह दर्शनीय और आकर्षक है।

प्रश्न-४ : जगती-कोट में द्वारों की क्या व्यवस्था है ?

उत्तर- जम्बूद्वीप की १२ योजन चौड़ी जगती के तीन लाख साधिक परिधि में विजय आदि चार द्वार है। उनके मालिक देव भी उसी नाम वाले हैं। द्वारों स ब धी वर्णन जीवाभिगम सूत्र में विस्तार से है। जिसके लिये प्रश्नोत्तर भाग-६, पृष्ट-१३०-१३१ में देखना चाहिये ।

प्रश्न-५ : ज बूद्वीप में भरतक्षेत्र कहाँ किस प्रकार आया है ?

उत्तर- पूर्ण गोलाकार एक लाख योजन विस्तार वाले ज बूद्वीप के दक्षिण दिशा में ५२६ योजन साधिक अर्ध चन्द्राकार रूप में भरतक्षेत्र स्थित है। उत्तर दिशा में चुल्ल हिमव त पर्वत है। वहाँ भरतक्षेत्र की ल बाई १४४७१ योजन साधिक है। शेष तीन दिशाएँ गोलाई में लवण समुद्र से घिरी हुई है। समुद्र और भरतक्षेत्र के बीच आठ योजन ऊँची ज बूद्वीप की जगती है। इसलिये लवण समुद्र का पानी सीधा भरत क्षेत्र में नहीं आता है कि तु जगती में कहीं कहीं स्वभाविक छिद्र बने हुए हैं उसमें से समय-समय पर पानी अ दर आता है। जो तीनों दिशाओं में भरतक्षेत्र के किनारे रहता है। वर्तमान में वह पानी लवण की खाड़ी, प्रशा त महासागर, हिंद महासागर आदि नाम से कहा जाता है।

तीन तीर्थ- समुद्री जल में पूर्व में मागध, दक्षिण में वरदाम और पश्चिम में प्रभास नामक तीर्थस्थान है। तीनों तीर्थों में उसी नाम के मालिक देव अपने भवन में रहते हैं। उनके नाम (१) मागधतीर्थकुमार (२) वरदामतीर्थ कुमार (३) प्रभासतीर्थ कुमार । ये नागकुमार जाति के भवनपति देव हैं ।

वैताढ़्य पर्वत-इस भरत क्षेत्र के मध्य में वैताढ़्य पर्वत है, जो पूर्व पश्चिम ल बा है। इसके दोनों किनारे जगती को भेद कर लवण समुद्र को स्पर्श किये हुए है। यह पर्वत चा दीमय पृथ्वीका ५० योजन चौड़ा (जाड़ा), २५ योजन ऊँचा है। मध्य में स्थित होने से इसके द्वारा ५२६-६/१९ योजन चौड़ा भरतक्षेत्र दो विभागों में विभाजित है। वे

प्रत्येक भाग २३८-३/१९ योजन के चौड़े हैं और लम्बाई में किनारे (जगती) तक है ।

विद्याधर श्रेणी-१० योजन ऊ चे जाने पर यह पर्वत दोनों बाजू में चौड़ाई में एक साथ १०-१० योजन घट गया है। जिससे १०-१० योजन की दोनों बाजू में समतल भूमि है, वहाँ पर विद्याधर मनुष्यों के नगर है एव विद्याधर मनुष्य वहाँ निवास करते हैं। अतः इन दोनों क्षेत्रों को विद्याधर श्रेणी कहा गया है। उत्तर की विद्याधर श्रेणी में ६० नगर है, दक्षिण की श्रेणी में ५० नगर हैं। यहाँ मनुष्य विद्या सम्पन्न होते हैं।

आभियोगिक श्रेणी-इसी प्रकार विद्याधर श्रेणी से दस योजन ऊपर जाने पर वहाँ भी १०-१० योजन चौड़ी समभूमि दोनों बाजू है। उसमें वाणव्य तर जाति के देवों के भवन है और वे देव शक्रेन्द्र के लोकपालों के आभियोगिक देव हैं, इसलिये इन दोनों श्रेणियों को आभियोगिक श्रेणी कहा गया है। व्य तर में भी मुख्यतया यहाँ १० जृ भक देवों का निवास स्थान है।

शिखरतल-आभियोगिक श्रेणी से पाँच योजन ऊपर जाने पर वैताढ्य पर्वत का शिखरतल आता है। जो १० योजन चौड़ा है, वह शिखरतल पद्मवर वेदिका एव वनख ड़ से घिरा हुआ है अर्थात् शिखरतल के दोनों किनारों पर वेदिका(पाली-भित्ति)है, और उन दोनों वेदिकाओं के पास अ दर की तरफ एक-एक वनख ड़ है उन वनख ड़ों में बावड़ियाँ, पुष्करणियाँ, आसन, शिलापट्ट, म ड़प, पर्वत गृह आदि है। वेदिका वनख ड़ों की चौड़ाई जम्बूद्वीप की जगती के ऊपर कहे गये पद्मवर वेदिका एव वनख ड़ के समान है। इनकी लम्बाई एव शिखरतल की लम्बाई इस पर्वत की लम्बाई जितनी है। दोनों विद्याधर श्रेणी में एव दोनों आभियोगिक श्रेणी में और समभूमि पर भी दोनों बाजू इसी प्रकार पद्मवर वेदिका एव वनख ड़ है।

कूट-शिखरतल पर पूर्व से पश्चिम तरफ क्रमशः ९ कूट इस प्रकार हैं- (१) सिद्धायतन कूट (२) दक्षिणार्द्ध भरत कूट (३) ख ड़प्रपात गुफा कूट (४) माणिभद्र कूट (५) वैताढ्य कूट (६) पूर्णभद्र कूट (७) तिमिस्त्र गुफा कूट (८) उत्तरार्द्ध भरत कूट (९) वैश्रमण कूट ।

ये कूट ६-१/४ योजन ऊँचे हैं एव मूल में इतनी ही लम्बाई

चौड़ाई वाले हैं और उनकी गोलाई(परिधि) चौड़ाई से तीन गुणी साधिक है। ऊपर क्रमशः चौड़ाई कम कम है। अतः गोपुच्छ स स्थान के ये कूट है। इनके चौतरफ वैताढ्य पर्वत के शिखरतल पर वनख ड़ और पद्मवर वेदिका है एव कूट के शिखरतल पर भी पद्मवर वेदिका, वनख ड़ तथा बावड़ियाँ सरोवर आदि देवों के आमोद प्रमोद के स्थान हैं।

कूट शिखरों के मध्य भाग में एक एक प्रासादावत सक है जिसमें उस कूट के मालिक देव के रहने के लिये प्रासाद है। वह एक कोस ऊँचा, आधा कोस लम्बा-चौड़ा गोल है। उसके बीच में ५०० धनुष लम्बा, २५० धनुष चौड़ा चबूतरा है उस पर सि हासन आदि है। एक पल्योपम स्थिति का मालिक देव यहाँ अपने परिवार सहित रहता है। उसके चार अग्रमहिषी, ४००० सामानिक देव, १६ हजार आत्मरक्षक देव, तीन परिषद, सात अनिका(सेना)एव सेनापति आदि परिवार है।

इन मालिक देवों की राजधानी दक्षिण में अन्य जम्बूद्वीप में उसकी जगती से १२००० योजन अ दर है। उनकी राजधानी का वर्णन जीवाभिगम सूत्र में वर्णित विजयदेव की राजधानी के समान है।

माणिभद्र, वैताढ्य, पूर्णभद्र ये तीन कूट स्वर्णमय है, शेष रत्नमय है। दो गुफा के नाम वाले कूटों के मालिक देवों के नाम कृतमालक और नृतमालक है। शेष ६ देवों के नाम कूट के समान ही है। सिद्ध कूट पर बीच में एक सिद्धायतन है जो एक कोस लम्बा, आधा कोस चौड़ा एक कोस ऊँचा है। उसके तीन द्वार तीन दिशा में हैं और एक दिशा ब द है जिस तरफ सिद्धायतन में १०८ जिन प्रतिमाएँ हैं। उनके दोनों बाजू में दो दो चमर धारक प्रतिमाएँ है। पीछे छत्र धारक दो प्रतिमाएँ है। आगे दोनों बाजू में नाग, यक्ष, भूत आदि की मनोरम मूर्तियाँ है। घ टे, कलश, पुष्प, मयूरपिच्छी, धूपदान आदि भी वहाँ व्यवस्थित रखे रहते हैं। सिद्ध कूट पर मालिक देव नहीं है। ये कूट मध्य में कुछ कम ५ योजन चौड़े और ऊपर तल पर ३ योजन साधिक लम्बे चौड़े हैं।

गुफाएँ- वैताढ्य पर्वत के पूर्वी भाग में और पश्चिमी भाग में यों दो गुफाए है जो वैताढ्य पर्वत के उत्तरी किनारे से दक्षिणी किनारे तक ५० योजन की ल बी है, १२ योजन चौड़ी एव आठ योजन ऊँची है। गुफाओं के उत्तर दक्षिण दोनों बाजू में एक एक द्वार है जिसका प्रवेश

४ योजन का है। पूर्वी गुफा के भीतर पूर्वी किनारे और पश्चिमी गुफा के भीतर पश्चिमी किनारे क्रमशः ग गा, सि धु नदी भित्ति के अ दर नीचे चलती है। उसके सामने की दिशा की भित्ति में से उमगजला और निमगजला नाम की दो नदियाँ निकलती है जो पूर्ण गुफा के १२ योजन क्षेत्र को पार कर ग गा-सि धु नदी में गिरती है। ये नदियाँ ३-३ योजन की चौड़ी है और इनका आपस में अ तर २-२ योजन का है। पूर्वी गुफा का नाम ख ड़प्रपात है और पश्चिमी गुफा का नाम तमिश्रागुफा है। दोनों गुफाएँ अ धकारपूर्ण एव सदा ब द दरवाजे वाली है। चक्रवर्ती का सेनापति रत्न इनमें प्रवेश हेतु एक-एक तरफ के दरवाजे को खोलता है और बाहर निकलने हेतु दूसरी दिशा के दरवाजे स्वतः खुल जाते हैं। इन दोनों गुफाओं के एक-एक मालिक देव है। ख ड़ प्रपात गुफा का कृतमालक देव और तमिश्रा गुफा का नृतमालक देव है।

वैताढ़्यनाम– भरतक्षेत्र के दो विभाग करने वाला होने से इसे वैताढ़्य कहा गया है अथवा वैताढ़्यगिरि कुमार नामक महर्द्धिक देव पल्योपम की स्थिति वाला इसका मालिक देव है। अतः यह नाम शाश्वत है, किसी के द्वारा दिया हुआ यह नाम नहीं है।

ग गासिन्धु नदी–चुल्लहिमव त पर्वत के लम्बाई चौड़ाई से मध्य में एक पद्मद्रह है। जो पूर्व पश्चिम १००० योजन का लम्बा, उत्तर दक्षिण ५०० योजन चौड़ा है। उसके पूर्वी किनारे से ग गा नदी निकलती है और पश्चिमी किनारे से सिन्धु नदी निकलती है। वे नदियाँ ५००-५०० योजन पर्वत पर सीधी चलती है। फिर ग गावर्त कूट और सिन्धु आवर्त कूट के पास से दक्षिण की ओर मुड़ कर पर्वत के दक्षिणी किनारे से भरतक्षेत्र में पर्वत के नित ब(तलहटी)में रहे ग गा कु ड़ एव सिन्धु कु ड़ में गिरती है। गिरने के स्थान पर वे नदियाँ एक जिव्हाकार मार्ग से निकलती है, जो ६-१/४ योजन का चौड़ा आधा योजन ल बा आधा कोस मोटा है अर्थात् वह जिव्हा पर्वत से आधा योजन बाहर निकली हुई है उसमें से पानी १०० योजन साधिक नीचे पड़ता है।

दोनों कु ड़ों के दक्षिणी तोरण से दोनों नदी ६-१/४ योजन के विस्तार से एव आधा कोस की जाड़ाई से प्रवाहित होती है। दक्षिण की तरफ आगे बढ़ती हुई उत्तरार्द्ध भरतक्षेत्र में चलती हुई वैताढ़्य

पर्वत की ख ड़प्रपात गुफा के नीचे से ग गा नदी और तमिश्रा गुफा के नीचे से सिन्धु नदी निकलती है। वैताढ़्य पर्वत को उत्तर दिशा से भेद कर दक्षिण दिशा से दोनों नदियाँ पर्वत से बाहर निकलती है। दक्षिणार्द्ध भरत के आधे भाग तक(बीच तक) सीधी दक्षिण में बहती हुई ग गा नदी पूर्व की तरफ और सिन्धु नदी पश्चिम की और मुड़ जाती है। आगे जाकर दोनों नदियाँ क्रमशः पूर्वी लवण समुद्र और पश्चिमी लवण समुद्र में मिल जाती है। दोनों भरत क्षेत्र के कुल १४००० अन्य नदियों को अपने में समाविष्ट करती हुई समुद्र में ६२-१/२ योजन विस्तार एव सवा योजन की ऊँड़ाई से(जाड़ाई से) मिलती है। नदियों के दोनों किनारे पर सर्वत्र वेदिका और वनख ड़ है।

भरत क्षेत्र के छः ख ड़– इस प्रकार इन दोनों नदियों के भरत क्षेत्र में बहने से उत्तर भरत के और दक्षिण भरत के तीन-तीन विभाग हो जाते हैं अर्थात् वैताढ़्य पर्वत के कारण दो विभाग और नदियों के कारण से कुल ६ विभाग बने हैं। वे भरत क्षेत्र के ६ ख ड़ कहे जाते हैं।

दक्षिण भरत के मध्य में बीचो-बीच विनीता नगरी है, यही पहला ख ड़ है, वही सबसे बड़ा ख ड़ है। सिन्धु नदी का निष्कु ट वाला विभाग दूसरा ख ड़ है। तीसरा ख ड़ उत्तर भरत में सिन्धु निष्कु ट है। चौथा ख ड़ उत्तर भरत का मध्य वाला विभाग है, पाँचवाँ ख ड़ ग गा निष्कु ट उत्तर भरत का है और छट्ठा ख ड़ दक्षिण भरत का ग गा निष्कु ट (खुणा) है। इन ६ ही ख ड़ों में मनुष्य पशु आदि निवास करते हैं। इनमें से दक्षिण भरत में आये पहले दूसरे छट्ठे ख ड़ पर वासुदेव बलदेव का राज्य चलता है और छहों ख ड़ों पर चक्रवर्ती का एक छत्र राज्य होता है। इन ६ ख ड़ों में और विद्याधरों की दोनों श्रेणियों में उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के ६ ही आरों का प्रवर्तन होता है। तीसरा और पाँचवाँ ख ड़ समान है एव दूसरे चौथे छट्ठे ख ड़ से बड़े है।

ऋषभ कूट पर्वत– उत्तर भरत के बीच के (चौथे) ख ड़ में बीचो-बीच चुल्ल हिमव त पर्वत के निकट ऋषभ कूट नामक पर्वत है। आठ योजन ऊँचा एव मूल में आठ(१२) योजन के विस्तार वाला है। ऊपर क्रमशः चौड़ाई कम कम है। शिखर तल चार योजन का चौड़ा है। सर्वत्र गोल है, अतः तिगुणी साधिक परिधि है। समभूमि पर एव

शिखर तल पर पद्मवर वेदिका और वनख ड़ है। शिखरतल के बीच में एक भवन है जो एक कोस लम्बा आधा कोस चौड़ा और देशोन एक कोस ऊँचा है। उसमें महर्द्धिक देव सपरिवार रहता है जो कि इस ऋषभ कूट पर्वत का मालिक देव है। गोपुच्छाकार कूट के समान आकार वाला होने से इसका नाम कूट शब्द के साथ कहा गया है। यहाँ कूट के समभूमि पर विष्क भ के लिए १२ योजन का पाठा तर लिखा है जो लिपि दोष मात्र है। समस्त कूट जितने ऊँचे होते है उतने ही मूल में चौड़े होते हैं।

नोट– ग गा सिन्धु नदियों का वर्णन चौथे वक्षस्कार से यहाँ दिया गया है।

प्रश्न–६ : वर्तमान का भारत और ग गा-सि धु नदी वे ही है या अन्य ?

उत्तर– एक ही नाम के अनेक व्यक्ति, गा व, आज भी देखे सुने जाते हैं। आगम में भी ज बूद्वीप नाम का अन्य द्वीप होने का वर्णन भी है । इसी प्रकार ये भी नाम साम्य है। वर्तमान का भारत आगम वर्णित भरतक्षेत्र का ही विभाग है और स पूर्ण ज्ञात दुनिया के द्वीप और क्षेत्र भी आगम वर्णित भरत क्षेत्र में ही है। ज्ञात दुनिया भरतक्षेत्र का स ंख्यातवाँ भाग जितना क्षेत्र है। शेष भरतक्षेत्र अभी हमसे अज्ञात है। आगम कथित ग गा सि धु नदी भी अलग है जो हमसे लाखों किलोमीटर दूर है। उनके वर्णन अनुसार अपने भारत देश में बहने वाली ग गा-सिन्धु नदियाँ छोटी है। नाम समानता के कारण अनेक (५) ग गा नदियाँ के नाम भी साहित्य में मिलते हैं। इस प्रकार आगम वर्णन अनुसार विशाल भरतक्षेत्र और नदियाँ समझना चाहिये।

प्रश्न–७ : आगम वर्णित भरतक्षेत्र के तीर्थस्थान, नदियाँ, वैताढ्य पर्वत और गुफाएँ कितनी दूर है ?

उत्तर– हमारी वर्तमान दुनियाँ आगमिक विनीता–अयोध्या, वाराणसी, हस्तिनापुर आदि के पास की भूमि है। अतः यह प्रथम ख ड़ का मध्य स्थानीय भूमि भाग है जो ३–४ योजन प्रमाण ही है। इस स्थान से शाश्वत योजन की अपेक्षा–मागध तीर्थ एव प्रभास तीर्थ ४८७४ योजन है। वरदाम तीर्थ ११४ योजन है। दोनों शाश्वत नदियों का एक निकटतम हिस्सा १००० योजन है। गुफाएँ १२५० योजन है। एक

योजन ८००० माइल का (१२००० कि.मी. का) होता है। अतः इन योजनों के माइल कि.मी. इस प्रकार है–

नाम	माइल	कि.मी.
मागध तीर्थ	३,८९,१२,०००	५८४८८०००
वरदाम तीर्थ	९,१२,०००	१३६८०००
प्रभास तीर्थ	३,८९,१२,०००	५८४८८०००
ग गा सि धु नदी	८०,००,०००	१२००००००
दोनों गुफा	१,००,००,०००	१५००००००

वक्षस्कार–२

प्रश्न–१ : उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी किसे कहते हैं ?

उत्तर– दस क्रोड़ा-क्रोड़ी सागरोपम जितने काल की उत्सर्पिणी और उतने ही काल की अवसर्पिणी होती है। दोनों मिलकर एक कालचक्र कहलाता है। यह कालचक्र भरत-ऐरवत क्षेत्रों में ही होता है, महाविदेह क्षेत्र में नहीं होता है। उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी दोनों में ६–६ विभाग होते है, उन्हें ६ आरे कहा जाता है। उत्सर्पिणी के पहले से छट्ठे आरे तक क्रमशः मनुष्यों की अवगाहना-आयुष्य बढ़ते हैं। पुद्गलों में वर्ण ग ध रस स्पर्श शुभ रूप में बढ़ते हैं और अवसर्पिणी में ये सभी क्रमशः घटते रहते हैं। महाविदेह क्षेत्र में ऐसा उतार-चढ़ाव नहीं होता है, सदा एक सरीखा समय वर्तता है। इसलिये वहाँ ६ आरे नहीं होकर सदा एक सा अवसर्पिणी का चौथा आरा वर्तता है। **सागरोपम** का स्वरूप प्रज्ञापनासूत्र प्रश्नोत्तर भाग–७ में दिया है। अभी वर्तमान में हमारे भरत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल का पाँचवाँ आरा चल रहा है, अवसर्पिणी के छ आरों के नाम इस प्रकार है– (१) सुखमासुखमी (२) सुखमी (३) सुखमा दुखमी (४) दुःखमा सुखमी (५) दुःखमी (६) दुःखमादुःखमी। उत्सर्पिणी में पहला आरा दुःखमा दुःखमी होता है और फिर उलटे क्रम से कहना, इसका छट्ठा आरा सुखमा सुखमी होता है।

प्रश्न-२ : पहला सुखमा सुखमी आरा किस प्रकार होता है ?

उत्तर- इस आरे में मनुष्य अत्य त सुखी होते है, इसलिये इस आरे का नाम सुखमासुखमी है। यह आरा ४ क्रोड़ा क्रोड़ सागरोपम का होता है। इस काल में भरत क्षेत्र के पृथ्वी, पानी एव वायु म ड़ल का तथा प्रत्येक प्राकृतिक पदार्थों का स्वभाव अति उत्तम, सुखकारी एव स्वास्थ्य प्रद होता है। मनुष्यों की तथा पशु पक्षी की स ख्या अल्प होती है। जलस्थानों की एव दस प्रकार के विशिष्ट वृक्षों की बहुलता होती है। ये विशिष्ट वृक्ष १० जाति के होते हैं इन्हीं से मनुष्यों आदि के जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इस काल में खेती व्यापार आदि कर्म नहीं होते हैं। नगर, मकान, वस्त्र, बर्तन आदि नहीं होते हैं। भोजन पकाना, स ग्रह करना नहीं होता है। अग्नि भी इस काल में उत्पन्न नहीं होती है नहीं जलती है। इच्छित खाद्यपदार्थ वृक्षों से प्राप्त हो जाते हैं। निवास एव वस्त्र का कार्य भी वृक्ष छाल पत्र आदि से हो जाता है। पानी के लिए अनेक सु दर स्थान सरोवर आदि होते हैं। दस वृक्षों का वर्णन जीवाभिगम सूत्र प्रश्नोत्तर भाग-६ में देखें।

युगल मनुष्य-इस समय में स्त्री पुरुष सुन्दर एव पूर्ण स्वस्थ होते हैं। उन्हें जीवनभर औषध उपचार वैद्य आदि की आवश्यकता नहीं होती है। मानुषिक सुख भोगते हुए भी जीवन भर में उनके केवल एक ही युगल उत्पन्न होता है अर्थात् उनके एक पुत्र और एक पुत्री जन्मती है। **हम दो हमारे दो** का आधुनिक सरकारी सिद्धा त उस समय स्वाभाविक प्रवहमान होता है। उस युगल पुत्र पुत्री की ४९ दिन पालना माता पिता द्वारा की जाती है फिर वे स्वनिर्भर स्वावल बी हो जाते हैं। ६ महिने के होने पर उनके माता पिता छींक एव उबासी के निमित्त से लगभग एक साथ मर जाते हैं। फिर वह युगल भाईबहिन के रूप में साथ-साथ विचरण करता है और योवन वय प्राप्त होने पर स्वतः पति-पत्नि का रूप धारण कर लेता है।

युगल शरीर-उस समय के मनुष्यों की उम्र ३ पल्योपम की होती है और क्रमिक घटते घटते प्रथम आरे की समाप्ति तक २ पल्योपम की हो जाती है। उन मनुष्यों के शरीर की अवगाहना ३ कोस की होती है। स्त्रियाँ पुरुष से २-४ अ गुल छोटी होती है। यह अवगाहना भी

घटते-घटते पहले आरे के अ त में २ कोस हो जाती है। इन युगल मनुष्यों के शरीर का वज्रऋषभनाराच स हनन होता है, सु दर सुड़ौल समचौरस स स्थान होता है। उनके शरीर में २५६ पसलियाँ होती है। उन युगल मनुष्यों को तीन दिन से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। उनका आहार पृथ्वी, पुष्प और फल स्वरूप होता है। उन पदार्थों का आस्वाद चक्रवर्ती के भोजन से अधिक स्वादिष्ट होता है। वे मनुष्य जीवन में किसी भी प्रकार का कष्ट दुःख नहीं देखते। सहज शुभ परिणामों से मर कर वे देवगति में ही जाते हैं। देवगति में भवनपति से लेकर पहले दूसरे देवलोक तक जन्मते हैं, आगे नहीं जाते। अपनी स्थिति से कम स्थिति के देव बन सकते हैं, अधिक स्थिति के नहीं अर्थात् ये युगल मनुष्य तीन पल से अधिक स्थिति के देव नहीं बन सकते। १००००वर्ष से लेकर ३ पल तक की कोई भी उम्र प्राप्त कर सकते हैं। अन्य किसी भी गति में ये नहीं जाते हैं। तिर्यंच युगल भी इसी तरह जीवन जीते हैं और देवलोक में जाते हैं। उनकी उत्कृष्ट अवगाहना मनुष्य से दुगुनी होती हैं और जघन्य अनेक धनुष की होती हैं। सामान्य तिर्यंच भी अनेक जाति के होते हैं।

यह पहले आरे का वर्णन पूरा हुआ। यह काल ४ क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम तक चलता है। शेष वर्णन क्षेत्र स्वभाव, युगल स्वभाव जीवाभिगम प्रश्नोत्तर भाग-६ में देखें।

प्रश्न-३ : दूसरा सुखमी आरा किस प्रकार होता है ?

उत्तर- पहला आरा पूर्ण होने पर दूसरा आरा प्रारम्भ होता है। सभी रूपी पदार्थों के गुणो में अन तगुणी हानि होती हैं। इस आरे के प्रारम्भ में मनुष्य की उम्र २ पल्योपम और अ त में एक पल्योपम की होती है। अवगाहना प्रारम्भ में २ कोस और अ त में एक कोस होती है। उनके शरीर में **एक सौ अठाईस** पसलियाँ होती हैं। दो दिन से आहारेच्छा उत्पन्न होती है। माता-पिता पुत्र पुत्री कि पालना ६४ दिन करते हैं। ये सभी परिवर्तन भी क्रमिक होते हैं ऐसा समझना चाहिये। शेष वर्णन प्रथम आरे के समान है। तिर्यंच का वर्णन भी प्रथम आरे के समान जानना। यह आरा तीन क्रोड़ा-क्रोड़ सागरोपम तक चलता है।

प्रश्न-४ : तीसरे सुखमा दुःखमी आरे का क्या स्वरूप है ?

उत्तर– इस आरे में मानव दो तिहाई भाग तक पूर्ण सुखी होते है, पिछले एक तिहाई भाग में कल्पवृक्ष कम होने लगते हैं और मानव स्वभाव में अ तर आता है। तब कुछ दुःख होने से इस आरे का नाम सुखमा-दुःखमी है। दूसरा आरा पूर्ण होने पर तीसरा आरा प्रारम्भ होता है। सभी पदार्थों के गुणों में अन त गुणी हानि होती है। प्रारम्भ में मनुष्यों की उम्र एक पल्योपम होती है। अ त में एक करोड़ पूर्व की होती है। अवगाहना प्रार भ में एक कोस की होती है। अ त में ५०० धनुष की होती है। शरीर में **पसलियाँ ६४** होती है। एक दिन से आहार की इच्छा होती है एव पुत्र की पालना ७९ दिन की जाती है। शेष वर्णन प्रथम आरे के समान है।

इस आरे के दो तिहाई भाग तक उक्त व्यवस्था में क्रमिक हानि होते हुए वर्णन समझना किन्तु पिछले एक तिहाई भाग में पल्योपम का आठवाँ भाग शेष रहने पर फिर अक्रमिक हानि वृद्धि का मिश्रण काल चलता है। दस विशिष्ट वृक्षों की स ख्या कम होने लग जाती है। युगल व्यवस्था में भी अ तर आने लग जाता है। इस तरह मिश्रण काल चलते चलते ८४ लाख पूर्व का जितना समय इस आरे का रहता हैं तब लगभग पूर्ण परिवर्तन हो जाता है अर्थात् युगल काल से कर्मभूमि काल आ जाता है। तब खान-पान, रहन-सहन, कार्य-कलाप, सन्तानोत्पत्ति, शा ति, स्वभाव, परलोक गमन आदि में अ तर आ जाता है। चारों गति और मोक्ष गति में जाना चालू हो जाता है। शरीर की अवगाहना एव उम्र का भी कोई ध्रुव कायदा नहीं रहता है। सहनन स स्थान सभी(छहों) तरह के हो जाते हैं।

प्रश्न–५ : इस तीसरे आरे में कुलकर व्यवस्था क्यों और कैसे होती है ?

उत्तर– पिछले एक तिहाई भाग के भी अ त में और पूर्ण कर्मभूमि काल के कुछ पूर्व वृक्षों की कमी आदि के कारण एव काल प्रभाव के कारण, कभी कहीं आपस में विवाद कलह पैदा होने लगते हैं। तब उन युगल पुरुषों में ही कोई न्याय करने वाले प च कायम कर दिये जाते हैं। उन्हें **कुलकर** कहा गया है। इन कुलकरों की ५–७–१०–१५ पीढ़ी करीब चलती है। तब तक तो प्रथम तीर्थंकर उत्पन्न हो जाते है। कुलकरों को कठोर

द ड़ नीति नहीं चलानी पड़ती है। सामान्य उपाल भ मात्र से ही अथवा अल्प समझाइस से ही उनकी समस्या हल हो जाती है। इन कुलकरों की ३ नीतियाँ कही गई हैं– हकार, मकार, धिक्कार। ऐसे शब्दों के प्रयोग से ही वे युगल मनुष्य लज्जित भयभीत और विनयोवनत होकर शा त हो जाते हैं। इस वर्तमान अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे में हुए १४ कुलकरों के नाम ये है– (१) सुमति (२) प्रतिश्रुति (३) सीम कर (४) सीम धर (५) क्षेम कर (६) क्षेम धर (७) विमलवाहन (८) चक्षुष्मान (९) यशोवान (१०) अभिचन्द्र (११) चन्द्राभ (१२) प्रसेनजीत (१३) मरुदेव (१४) नाभि। इसके बाद प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान भी पहले कुछ समय कुलकर अवस्था में रहे। ८३ लाख पूर्व स सारावस्था में रहे। इस प्रकार प्रत्येक अवसर्पिणी के तीसरे आरे की मिश्रण काल की अवस्था समझनी चाहिये।

प्रश्न–६ : इस तीसरे आरे में भगवान ऋषभदेव का जन्म-दीक्षा आदि की जानकारी किस प्रकार दी गई है ?

उत्तर– नाभी और मरुदेवी भी युगल पुरुष और स्त्री ही थे किन्तु मिश्रण काल होने से उनकी अनेक वर्षों की उम्र अवशेष रहते हुए भी भगवान ऋषभदेव का इक्ष्वाकु भूमि में जन्म हुआ था। उस समय तक नगर आदि का निर्माण नहीं हुआ था। ६४ इन्द्र आदि आये, जन्माभिषेक किया। बाल्यकाल के बाद भगवान ने योवन अवस्था में प्रवेश किया, कुलकर बने, फिर राजा बने। बीस लाख पूर्व की उम्र में राजा बने, ६३ लाख पूर्व तक राजा रूप में रहे। कुल ८३ लाख पूर्व स सारावस्था में रहे। लोगों को कर्म भूमि की योग्यता के अनेक कर्तव्यों कार्यकलापों का बोध दिया। पुरुषों की ७२ कला, स्त्रियों की ६४ कला, शिल्प, व्यापार, राजनीति आदि का, विविध नैतिक सामाजिक व्यवस्थाओं एव स सार व्यवहारों का ज्ञान विज्ञान प्रदान किया। शक्रेन्द्र ने वैश्रमण देव के द्वारा दक्षिण भरत के मध्य स्थान में विनिता नगरी का निर्माण कराया और भगवान का राज्याभिषेक किया। अन्य भी गाँव नगरों का निर्माण हुआ। राज्यों का विभाजन हुआ। भगवान ऋषभदेव के १०० पुत्र हुए थे। उन सभी को अलग अलग १०० राज्य बा ट कर राजा बना दिया। भगवान के दो पुत्रियाँ हुई– ब्राह्मी और सु दरी।

जिनका भरत और बाहुबली के साथ युगल रूप में जन्म हुआ था।

भगवान ऋषभदेव के विवाह विधि का वर्णन सूत्र में नहीं है, व्याख्याग्र थों में बताया गया है कि मिश्रण काल के कारण सुन दा और सुम गला नामक दो कु वारी कन्याओं के साथ युगल रूप में उत्पन्न बालकों के मृत्यु प्राप्त हो जाने पर वे कन्याएँ कुलकर नाभि के स रक्षण में पहुँचा दी गई थी। वे दोनों ऋषभदेव भगवान के साथ में ही स चरण करती थी। योग्य वय में आने पर शक्रेन्द्र ने अपना जीताचार जानकर कि "अवसर्पिणी के प्रथम तीर्थंकर का पाणिग्रहण करना मेरा कर्तव्य है" भरत क्षेत्र में आकर देव देवियों के सहयोग से सुम गला और सुन दा कुँवारी कन्याओं के साथ भगवान की विवाहविधि सम्पन्न की।

भगवान ऋषभ देव की दीक्षा–८३ लाख पूर्व(२०+६३)कुमारावस्था एव राज्यकाल के व्यतीत होने पर चैत्र वदी ९ (ग्रीष्म ऋतु के पहले महीने पहले पक्ष चैत्र वदी नवमी) के दिन भगवान ने विनीता नगरी के बाहर सिद्धार्थ वन नामक उद्यान में दीक्षा अ गीकार की। दीक्षा महोत्सव ६४ इन्द्रों ने किया। साथ में ४००० व्यक्तियों ने भी स यम अ गीकार किया। एक वर्ष पर्यन्त भगवान ने देवदूष्य वस्त्र धारण किया–क धे पर रखा। एक वर्ष तक मौन एव तप अभिग्रह धारण किया। प्रथम पारणा एक वर्ष से राजा श्रेयाँश कुमार के हाथ से हुआ। १००० वर्ष तक तप स यम से आत्मा को भावित करते हुए भगवान ने विचरण किया। १ हजार वर्ष व्यतीत होने पर पुरिमताल नगर के बाहर शकटमुख उद्यान में ध्यानावस्था में तेले की तपस्या में फागुण वदी ११ को केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हुआ।

भगवान ने उपदेश देना प्रारम्भ किया, चार तीर्थ की स्थापना की। ८४ गण ८४ गणधर ऋषभसेन प्रमुख ८४००० श्रमण, ब्राह्मी सुन्दरी प्रमुख ३ लाख श्रमणियाँ, श्रेयाँस प्रमुख तीन लाख पाँच हजार श्रावक, एव सुभद्रा प्रमुख ५ लाख ५४ हजार श्राविकाएँ हुई। भगवान के अस ख्य पाट तक केवलज्ञान प्राप्त होता रहा, इसे युगान्तर कृत भूमि कहा गया है एव भगवान के केवलज्ञान उत्पत्ति के अ तर्मुहूर्त बाद मोक्ष जाना प्रारम्भ हुआ, इसे पर्यायान्तरकृत भूमि कहा गया है।

इस प्रकार भगवान ऋषभदेव इस अवसर्पिणी काल के प्रथम

राजा, प्रथम श्रमण, प्रथम तीर्थंकर केवली हुए। पाँच सौ धनुष का उनका शरीरमान था। एक लाख पूर्व स यम पर्याय, ८३ लाख पूर्व गृहस्थ जीवन, यों ८४ लाख पूर्व का आयुष्य पूर्ण कर के माघ वदी १३ के दिन, १० हजार साधुओं के साथ ६ दिन की तपस्या में अष्टापद पर्वत पर भगवान ऋषभदेव ने परम निर्वाण को प्राप्त किया। देवों ने भगवान एव श्रमणों के शरीर का अग्नि स स्कार किया। निर्वाण महोत्सव और दाह स स्कार का शास्त्र में विस्तृत वर्णन है। उस दिन से तीसरे आरे के ८९ पक्ष(३ वर्ष ८-१/२ महीना)अवशेष रहे थे। यह ऋषभदेव भगवान का वर्णन कहा गया है। सभी अवसर्पिणी के तीसरे आरे के अ तिम भाग का वर्णन एव प्रथम तीर्थंकर का वर्णन यथायोग्य नाम परिवर्तन आदि के साथ उक्त प्रकार से समझ लेना चाहिए। यह तीसरा आरा दो क्रोड़ा क्रोड़ सागरोपम का होता है।

प्रश्न–७ : चौथा दुःखमा सुखमी आरा किस प्रकार का होता है?

उत्तर– इस आरे में शारीरिक, मानसिक और आपसी अनेक दुःख क्लेश चलते रहते हैं तथापि क्षेत्रस्वभाव, कालस्वभाव बहुत अनुकूल होता है। सुख सामग्री की बहुलता होती है। अतः इस आरे का नाम दुःखमा सुखमी है।

प्रथम तीर्थंकर के मोक्ष जाने के ३ वर्ष, साढ़े आठ मास बाद चौथा आरा प्रारम्भ होता है। पूर्वापेक्षया पदार्थों के गुणधर्म में अन तगुणी हानि होती है। इस आरे में मनुष्यों की अवगाहना अनेक धनुष की अर्थात् २ से ५०० धनुष की होती है। उम्र आरे के प्रारम्भ में जघन्य अ तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट करोड़ पूर्व की होती है और आरे के अ त में जघन्य अ तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट साधिक सौ वर्ष अर्थात् २०० वर्ष से कुछ कम होती है। ६ स हनन, ६ स स्थान एव आरे के प्रारम्भ में **३२**,अ त में **१६ पसलियें** मनुष्यों के शरीर में होती है। ७२ कला, खेती, व्यापार, शिल्प, कर्म, मोहभाव, वैर, विरोध, युद्ध–स ग्राम, रोग, उपद्रव आदि अनेक कर्मभूमिज अवस्थाएँ होती है। इस काल में २३ तीर्थंकर ११ चक्रवर्ती होते हैं। एक तीर्थंकर और एक चक्रवर्ती तीसरे आरे में हो जाते हैं। ९ बलदेव ९ वासुदेव ९ प्रतिवासुदेव आदि विशिष्ट पुरुष होते हैं। इस काल में जन्मे हुए मनुष्य चारों गति में और मोक्ष गति में

जाते हैं। इस समय युगल काल नहीं होता है। अतः हिंसक जानवर एव ड़ा स मच्छर आदि क्षुद्र जीवजन्तु मनुष्यों के लिए कष्टप्रद होते हैं। राजा, प्रजा, सेठ, मालिक, नौकर, दास आदि उच्च-निम्न अवस्थाएँ होती है। काका, मामा, दादा, दादी, पौत्र, प्रपौत्र, मौसी, भूआ आदि कई सम्बन्ध होते है। और भी जिन-जिन भावों का प्रथम आरे में निषेध किया गया है वे सभी भाव इस आरे में पाये जाते हैं।

इस आरे के ७५ वर्ष साढ़े आठ मास अवशेष रहने पर २४वें तीर्थंकर का जन्म होता है एव ३ वर्ष साढ़े आठ महिने रहने पर २४वें तीर्थंकर निर्वाण को प्राप्त करते हैं। यह आरा एक क्रोड़ा क्रोड़ सागरोपम में ४२००० वर्ष कम का होता है।

प्रश्न–८ : पाँचवाँ दुःखमी आरे का क्या स्वरूप है ?

उत्तर– २४ वें तीर्थंकर के मोक्ष जाने के ३ वर्ष साढ़े आठ महीने बीतने पर पाँचवाँ दुःखमी आरा प्रारम्भ हो जाता है। इन आरों के नाम से सुख दुःख का स्वभाव भी स्पष्ट होता है। पहला दूसरा आरा सुखमय होता है, दुःख की कोई गिनती वहाँ नहीं है। तीसरे में अल्प दुःख है अर्थात् अ त में मिश्रणकाल और कर्मभूमिज काल में दुःख, क्लेश, कषाय, रोग, चिन्ता आदि होते हैं। चौथे आरे में सुख और दुःख दोनों हैं अर्थात् कई मनुष्य स पूर्ण जीवनभर मानुषिक सुख भोगते हैं। पुण्य से प्राप्त धनराशि में ही स तुष्ट रहते हैं और फिर दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करते हैं अधिक मानव स सार प्रप च, जीवन व्यवस्था, कषाय क्लेश में पड़े रहते हैं। उसके अन तर पाँचवाँ आरा दुःखमय है, इस काल में सुख की कोई गिनती नहीं है, मात्र दुःख चौतरफ घेरे रहता है। सुखी दिखने वाले भी दिखने मात्र के होते हैं। वास्तव में वे भी पग-पग पर तन-मन-धन-जन के दुःखों से व्याप्त होते हैं।

पूर्व की अपेक्षा इस आरे में पुद्गल स्वभाव में अन तगुणी हानि होती है। मनुष्यों की स ख्या अधिक होती है। उपभोग परिभोग की सामग्री हीनाधिक होती रहती है। दुष्काल दुर्भिक्ष होते रहते हैं। रोग, शोक, बुढ़ापा, मरीमारी, जन-स हार, वैर-विरोध, युद्ध-स ग्राम होते रहते हैं। जनस्वभाव भी क्रमशः अनैतिक हिंसक क्रूर बनता जाता है। राजा नेता भी प्रायः अनैतिक एव कर्तव्यच्युत अधिक होते हैं। प्रजा के पालन

की अपेक्षा शोषण अधिक करते हैं। चोर ड़ाकू लुटेरे दुर्व्यसनी आदि लोग ज्यादा होते हैं, धार्मिक स्वभाव के लोग कम होते हैं। धर्म के नाम से ढ़ोंग ठगाई करने वाले कई होते हैं।

इस आरे में जन्मने वाले चारों गति में जाते हैं, मोक्ष गति में नहीं जाते हैं। ६ स घयण ६ स स्थान वाले होते है एव प्रारम्भ में १६ और अ त में ८ पसलियें मानव शरीर में होती है। अवगाहना अ त में उत्कृष्ट दो हाथ और प्रारम्भ में मध्य में अनेक हाथ होती है। (अनेक हाथ से ७ या १० हाथ भी हो सकती है।) एक हाथ करीब १ फुट का माना गया है। उम्र प्रारम्भ में मध्य में उत्कृष्ट २०० वर्ष से कुछ कम हो सकती है। अ त में उत्कृष्ट २० वर्ष होती है। इस काल में मनुष्यों में विनय, शील, क्षमा, लज्जा, दया, दान, न्याय, नैतिकता, सत्यता आदि गुणों की अधिकतम हानि होती है और इसके विपरीत अवगुणों की अधिकतम वृद्धि होती है। गुरु और शिष्य अविनीत अयोग्य अल्पज्ञ होते हैं। चारित्रनिष्ठ क्रमशः कम होते जाते हैं। चारित्रहीन अधिक होते जाते हैं। धार्मिक, सामाजिक और राजकीय मर्यादा लोपक बढ़ते जाते हैं और मर्यादा पालक घटते जाते हैं एव इस आरे में दस बोलों का विच्छेद होता है। भगवान महावीर स्वामी अ तिम तीर्थंकर के मोक्ष जाने के बाद गौतम स्वामी, सुधर्मास्वामी, जम्बू स्वामी तक १२+८+४४= ६४ वर्ष तक केवलज्ञान रहा, उसके बाद इस आरे के अ तिम दिन तक साधु साध्वी श्रावक श्राविका धर्म की आराधना करने वाले एव देवलोक में जाने वाले होते हैं।

प्रश्न–९ : इस पाँचवे आरे में किन तत्त्वों का विच्छेद होगा अर्थात् अस्तित्व विनष्ट होगा ?

उत्तर– (१) परम अवधिज्ञान (२) मनःपर्यवज्ञान (३) केवलज्ञान (४–६) तीन चारित्र (७) पुलाकलब्धि (८) आहारकशरीर (९) जिनकल्प (१०) दो श्रेणी उपशम और क्षायिक ।

कई लोग भिक्षुपड़िमा, एकल विहार, स हनन आदि का भी विच्छेद कहते हैं किन्तु वह कथन आगम से सम्मत नहीं है अपितु विपरीत भी होता है। भगवान महावीर के शासन में १००० वर्ष बाद स पूर्ण पूर्व ज्ञान का मौलिक रूप में विच्छेद हुआ, आ शिक रूपा तरित

अवस्था में अब भी उपा ग, छेद आदि में विद्यमान है। २१ हजार वर्ष तक यह भगवान महावीर का शासन उतार-चढ़ाव के झोले खाता हुआ भी चलेगा। सर्वथा(आत्य तिक) विच्छेद भगवान के शासन का इस मध्यावधि में नहीं होगा। किन्तु छट्ठा आरा लगने पर पाँचवें आरे के अ तिम दिन ही होगा। प्रथम प्रहर में जैन धर्म, दूसरे प्रहर में अन्य धर्म, तीसरे प्रहर में राजधर्म, चौथे प्रहर में अग्नि का विच्छेद होगा । इसी प्रकार का वर्णन सभी अवसर्पिणी के पाँचवें आरे का समझना । यह आरा २१००० वर्ष का होता है।

प्रश्न–१० : छट्ठा दुःखमा दुःखमी आरे का वर्णन किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर– यह आरा भी २१ हजार वर्ष का होता है। महान दुःखपूर्ण यह काल होता है। इस समय में दिखने मात्र का भी सुख नहीं रहता है। वह घोर दुःख वर्णन नरक के दुःखों की स्मृति कराने वाला होता है। इस आरे का वर्णन भगवती सूत्र, श.७, उद्दे.६, प्रश्न–१२ में देखें।

प्रश्न–११ : उत्सर्पिणी का पहला दुःखमा दुःखमी आरा कैसा होता है ?

उत्तर– उत्सर्पिणी के पहले आरे का वर्णन अवसर्पिणी के छट्ठे आरे के अ तिम स्वभाव के समान है अर्थात् छट्ठे आरे के प्रारम्भ में जो प्रलय का वर्णन है वह यहाँ नहीं समझना किन्तु उस आरे के मध्य और अ त में जो क्षेत्र एव जीवों की दशा है वही यहाँ भी समझना। यह आरा २१००० वर्ष का होता है।

उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ श्रावण वदी एकम को होता है। शेष आरे किसी भी दिन महिने में प्रारम्भ हो सकते हैं। उसका कोई नियम नहीं है क्यों कि आगम में वैसा कथन नहीं है अपितु ऐसा नियम मानने पर आगम विरोध भी होता है। यथा– ऋषभदेव भगवान माघ महीने में मोक्ष पधारे उसके तीन वर्ष साढ़े आठ महिने बाद श्रावण वदी एकम किसी भी गणित से नहीं आ सकती। अतः चौथा आरा किसी भी दिन प्रारम्भ हो सकता है। उसी तरह अन्य आरे भी मूलपाठ में केवल उत्सर्पिणी का प्रारम्भ श्रावण वदी एकम से कहा गया है। अन्य आरों के लिये मनकल्पित नहीं मानना ही श्रेयस्कर है।

प्रश्न–१२ : दूसरे दुःखमी आरे का प्रारम्भ किस प्रकार होता है ?

उत्तर– २१+२१=४२ हजार वर्ष का महान दुःखमय समय व्यतीत होने पर उत्सर्पिणी का दूसरा आरा प्रारम्भ होता है। इसके प्रार भ होते ही (१) सात दिन पुष्कर स वर्तक महामेघ मूसलधार जलवृष्टि करेगा। जिससे भरतक्षेत्र की दाहकता ताप आदि समाप्त होकर भूमि शीतल हो जायेगी। (२) फिर सात दिन तक क्षीर मेघ वर्षा करेगा। जिससे अशुभ भूमि में शुभ वर्ण ग ध रस आदि उत्पन्न होंगे। (३) फिर सात दिन निर तर घृत मेघ वृष्टि करेगा जिससे भूमि में स्नेह स्निग्धता उत्पन्न होगी। (४) इसके अन तर फिर अमृत मेघ प्रकट होगा, वह भी सात दिन रात निर तर वर्षा करेगा। जिससे भूमि में वनस्पति को उगाने की बीजशक्ति उत्पन्न होगी। (५) इसके अन तर रस मेघ प्रकट होगा, वह भी सात दिन मूसलधार वृष्टि करेगा जिससे कि भूमि में वनस्पति के लिये तिक्त कटुक मधुर आदि रस उत्पन्न करने की शक्ति का स चार होगा।

इस प्रकार पाँच सप्ताह की निर तर वृष्टि के बाद आकाश बादलों से साफ हो जायेगा। तब भरतक्षेत्र में वृक्ष लता गुच्छ तृण औषधि हरियाली आदि उगने लगेंगे एव क्रमशः शीघ्र वनस्पति विकास हो जाने पर यह भूमि मनुष्यों के सुखपूर्वक विचरण करने योग्य हो जायेगी। अर्थात् कुछ ही महीनों एव वर्षों में भरत क्षेत्र का भूमि भाग वृक्ष लता, फल, फूल आदि से युक्त हो जायेगा।

प्रश्न–१३ : ७२ बिलों में रहने वाले मानव फिर क्या बिल छोड़ देते हैं ?

उत्तर– वर्षा के बाद बिलवासी मानव प्रसन्न होंगे और धीरे-धीरे बाहर विचरने लगेंगे। काला तर से जब पृथ्वी वृक्ष लता फल फूल आदि से परिपूर्ण युक्त हो जायेगी तब मानव देखेंगे कि अब हमारे लिये क्षेत्र सुखपूर्वक रहने विचरने योग्य हो गया है, इस क्षेत्र में जीवन निर्वाह करने योग्य अनेक वृक्ष लता पौधे बेलें और उनके फल फूल आदि विपुल मात्रा में उपलब्ध होने लग गये है। तब उनमें से कई सभ्य स स्कार के मानव कभी आपस में इकट्ठे होकर म त्रणा करेंगे कि "अब विविध प्रकार के खाद्यपदार्थ उपलब्ध होने लगे है, अब हम में से कोई मानव

मा साहार नहीं करेगा और जो कोई इस नियम को भ ग करेगा उसे हमारे समाज से निष्कासित माना जायेगा और कोई व्यक्ति उस मा साहारी की स गति नहीं करेगा, उसके निकट भी नहीं जायेगा, सभी उससे घृणा नफरत करेंगे, उसकी छाया के स्पर्श का भी वर्जन करेंगे।" इस प्रकार की एक व्यवस्था वे मानव कायम कर जीवन यापन करते है। शेष वर्णन अवसर्पिणी के पाँचवें आरे के समान है। धर्म प्रवर्तन इस आरे में नहीं होता है। फिर भी मानव चारों गति में जाने वाले होते हैं। जब कि इसके पूर्व के ४२ हजार वर्षों में मानव प्रायः नरक तिर्यंच में ही जाते हैं। इस दूसरे आरे में धर्म प्रवर्तन नहीं होते हुए भी मनुष्यों में नैतिक गुणों का क्रमिक विकास होता है, अवगुणों का ह्रास होता है। इस प्रकार यह २१ हजार वर्ष के काल का दूसरा आरा व्यतीत होता है।

प्रश्न-१४ : पाँच सप्ताह वृष्टि होती है या सात सप्ताह ? सुना है कि सात सप्ताह के ४९ दिन होते हैं, इसलिये हमारी स वत्सरी भी चातुर्मास लगने के ४९ दिन बाद ५० वें दिन होती है ? तो पाँच या सात में सही क्या है?

उत्तर- यहाँ कई लोग ऐसे भ्रमित अर्थ की कल्पना भी कर बैठते है कि मानों वृष्टि खुलते ही भूमि वृक्षादि से युक्त हो जाती है, ऐसा कथन अनुपयुक्त है। क्यों कि वृक्षों से युक्त होने में वर्षों लगते हैं और अन्य वनस्पति गुच्छ गुल्म लता आदि के फल फूल लगने में भी महिनों लगते हैं। क्यों कि वे प्राकृतिक होते हैं कोई जादू म तर या करामात तो नहीं है कि एक ही दिन में ४२ हजार वर्षों की ब जर दग्ध भूमि में वर्षा ब द होते ही फल फूल वृक्ष तैयार हो जाय।

इस दूसरे आरे की आगमिक स्पष्ट वर्णन वाली निर तर पाँच साप्ताहिक वृष्टि के लिये जबरन सात साप्ताहिक मान कर एव काला तर से मानव द्वारा की जाने वाली मासा हार निषेध की प्रतिज्ञा को लेकर कई एकतरफा दृष्टि वाले अर्द्धचिंतक लोग इसी को स वत्सरी का उद्‌गम कह बैठते है। कहाँ तो श्रमण वर्ग के द्वारा निराहार मनाई जाने वाली धार्मिक पर्व रूप स वत्सरी और कहाँ सचित्त वनस्पति, क द, मूलादि खाने वाले स यतधर्म रहित काल वाले मानवों का जीवन।

स वत्सरी का सुमेल कि चित भी नहीं होते हुए भी अपने आपको विद्वान मान कर जबरन शास्त्र के नाम से उन अव्रती सचितभक्षी मानवों द्वारा चलाई गई सामाजिक सामान्य व्यवस्था को स वत्सरी मान कर उसका अनुसरण स्वय करना, साथ ही तीर्थंकर भगवान को, गणधरों को और व्रती श्रमणों को उनका अनुसरण करने वाला बताकर ये विद्वान मात्र बुद्धि की ह सी करवाने का ही कार्य करते हैं। ऋषि प चमी का उद्‌गम तो ऋषि महिर्षियों द्वारा धर्म प्रवर्तन के साथ होता है। उसे भुला कर पाँच सप्ताह के सात सप्ताह करके और वर्षा ब द होते ही वृक्षों की, बेलों की, फलों की, धान्यों की, अस गत कल्पना करके अव्रती सचित्तभक्षी लोगों की नकल से स वत्सरी को खींचतान कर तीर्थंकर धर्म प्रणेताओं से जोड़ करके इस प्रकार की आत्म स तुष्टी करते हैं कि मानो हमने आगमों से स वत्सरी पर्व का बहुत बड़ा प्रमाण ४९ दिन का खोज निकाला है। ऐसे बुद्धिमानों की बुद्धि पर बड़ा ही आश्चर्य एव अनुक पा उत्पन्न होती है किन्तु इस प चमकाल के प्रभाव से ऐसी कई कल्पनाएँ भेड़चाल से प्रवाहित होती रहती है और होती रहेगी। सही चिंतन और ज्ञान का स योग महान भाग्यशालियों को ही प्राप्त होगा।

सार- ***धर्म का प्रवर्तन तीसरे आरे में प्रथम तीर्थंकर द्वारा होता है। अतः दूसरे आरे से स वत्सरी का स ब ध नहीं हो सकता।***

प्रश्न-१५ : तीसरा आदि शेष सभी आरों का स्वरूप क्या है ?

उत्तर- अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के समान यह तीसरा आरा होता है। इसके तीन वर्ष साढ़े आठ महिने बीतने पर प्रथम तीर्थंकर माता के गर्भ में आते हैं। नौ महीने साढ़े सात दिन से जन्म होता है। फिर यथा समय दीक्षा धारण करते हैं एव केवलज्ञान होता है। चार तीर्थ की स्थापना करते है। धर्म प्रवर्तन करते हैं। तब ८४ हजार वर्ष से विच्छेद हुआ जिन धर्म पुनः प्रारम्भ होता है। उपदेश श्रवण करके कई जीव श्रमण बनते हैं। कोई गृहस्थ धर्म अ गीकार करते हैं। शेष सम्पूर्ण वर्णन पूर्व वर्णित चौथे आरे के समान समझना चाहिये। यह आरा एक क्रोड़ा क्रोड़ सागर में ४२००० वर्ष कम होता है। इसमें पुद्‌गल-स्वभाव, क्षेत्र स्वभाव में क्रमिक गुणवर्धन होता है।

चौथा सुखमा दुःखमी आरा- इस आरे के तीन वर्ष साढ़े आठ महिना

व्यतीत होने पर अ तिम २४ वें तीर्थंकर का जन्म होता है, उनकी उम्र ८४ लाख पूर्व होती है, ८३ लाख पूर्व गृहस्थ जीवन में रहते हैं, एक लाख पूर्व स यम पालन करते हैं। सम्पूर्ण वर्णन ऋषभदेव भगवान के समान जानना। किन्तु व्यवहारिक ज्ञान सिखाना, ७२ कला सिखाना, आदि वर्णन यहाँ नहीं है। क्यों कि यहाँ कर्मभूमि काल तो पहले से ही है, उसके बाद युगल काल आता है। अ तिम तीर्थंकर के मोक्ष जाने के बाद क्रमशः शीघ्र ही साधु-साध्वी श्रावक श्राविका एव धर्म का और अग्नि का विच्छेद हो जाता है। १० प्रकार के विशिष्ट वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं। मानव अपने कर्म, शिल्प, व्यापार आदि से मुक्त हो जाते हैं। यों क्रमिक युगल काल रूप में परिवर्तन होता जाता है। पल्योपम के आठवें भाग तक कुलकर व्यवस्था और मिश्रणकाल चलता है। फिर कुलकरों की आवश्यकता भी नहीं रहती है। धीरे-धीरे मिश्रण काल से परिवर्तन हो कर शुद्ध युगल काल हो जाता है। पूर्ण सुखमय शान्तिमय जीवन हो जाता है। शेष वर्णन अवसर्पिणी के तीसरे दूसरे और पहले आरे के समान ही उत्सर्पिणी के चौथे पाँचवें छट्ठे आरे का है एव कालमान भी उसी प्रकार है अर्थात् यह चौथा आरा दो क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का होता है फिर पाँचवाँ आरा तीन क्रोड़ा सागरोपम का और छट्ठा आरा चार क्रोड़ाक्रोड़ सागरोपम का होता है। पाँचवें आरे का नाम **सुखमी** आरा एव छट्ठे आरे का नाम **सुखमा सुखमी** है।

प्रश्न–१६ : अढ़ाई द्वीप के १०१ मनुष्य के क्षेत्रों में क्या इस प्रकार आरे परिवर्तन होते हैं ?

उत्तर– अढ़ाईद्वीप के कर्मभूमि क्षेत्रों में से आरों रूप उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल, ५ भरत और ५ एरवत इन दस क्षेत्रों में ही होता है, शेष ५ कर्मभूमि रूप पाँच महाविदेह क्षेत्र में, ३० अकर्मभूमि में और ५६ अ तरद्वीपों में यह काल परिवर्तन नहीं होता है। उन ९१ क्षेत्रों में सदा एक सरीखा काल प्रवर्तमान होता है । यथा–

५ महाविदेह में– अवसर्पिणी के चौथे आरे का प्रारम्भकाल

१० देवकुरू उत्तरकुरू में– अवसर्पिणी के प्रथम आरे का प्रारम्भकाल

१० हरिवर्ष रम्यक वर्ष में– दूसरे आरे का प्रारम्भकाल

१० हेमवय हेरण्यवय में– तीसरे आरे का प्रारम्भकाल

५६ अ तर द्वीपों में– तीसरे आरे के अ तिम त्रिभाग का शुद्ध युगल काल अर्थात् मिश्रण काल के पूर्ववर्ती काल ।

प्रश्न–१७ : काल विभागों को यहाँ "आरा-आरे" ऐसा क्यों कहा है ?

उत्तर– उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी मिलकर एक **कालचक्र** २० क्रोड़ाक्रोड़ी सागर का होता है। चक्र शब्द को ध्यान में रखा गया है। चक्र में गाड़ी के पहियें जैसे आरे होते हैं। अतः इस कालचक्र का चक्राकार चित्र कल्पित करके उसमें १२ आरें पूरे गोलाई में बीच की धुरी से लेकर किनारे की पट्टी तक जुड़े होते हैं। गाड़ी के पहियें में आरों की स ख्या निश्चित नहीं होती है। बैलगाड़ी के पहियें में ६ आरे प्रायः होते हैं पर तु घोड़ागाड़ी(बग्धी) के बड़े पहियें होते हैं, उसमें १२ आरे होते हैं। इस प्रकार मूल शब्द कालचक्र होने से एव चक्र में आरे होने से यहाँ उस उपमा को लक्ष्य में रखकर **आरा** शब्द से कहा गया है।

प्रश्न–१८ : उत्सर्पिणी अवसर्पिणी शब्द में सर्प शब्द से क्या फलित होता है ?

उत्तर– उत्तर १७ में कहे गये चक्र के किनारे के पाटियों के स्थान पर दो सर्प की कल्पना की जाती है। जिनका मुख ऊपर होता है और पूँछ नीचे होती है। अवसर्पिणी के सर्प के मुख स्थान से पहला आरा प्रार भ होता है वह ४ क्रोड़ा क्रोड़ी सागर का होता है। फिर सा प नीचे की तरफ पतला होता जाता है वैसे वैसे तीसरे आदि आरे छोटे होते है। पाँचवाँ छट्ठा आरा पूँछ के स्थान में आता है वे दोनों बहुत छोटे हैं।

उसके बाद दूसरे सा प की पूछ से उत्सर्पिणी का पहला दूसरा आरा प्रारम्भ होकर सा प के मुख स्थान की जगह उत्सर्पिणी का छट्ठा आरा ४ क्रोड़ाक्रोड़ी सागर का आता है। सर्प की उपमा और उतार चढ़ाव और छोटे बड़े आरे समझे जाते है। इस प्रकार पहले उतरते सर्प से **अवसर्पिणी** काल होता है फिर पूँछ से ऊपर चढ़ते सर्प से **उत्सर्पिणी काल** होता है। इसलिये दोनों नाम उपमा की अपेक्षा सार्थक होते हैं।

वक्षस्कार-३

प्रश्न-१ : चक्रवर्ती के १४ रत्नों की उत्पत्ति कहाँ होती है ?

उत्तर- दक्षिण भरतक्षेत्र में तीन ख ड़ होते है उसमें से मध्य के ख ड़ में तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि जन्म धारण करते है। ऋषभदेव भगवान प्रथम राजा और प्रथम तीर्थंकर इस भरत क्षेत्र में हुए। उन्होंने अपने १०० पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र भरत को राज्याधिकार दिया और शेष ९९ पुत्रों को भी अलग-अलग राज्य बाँट कर राजा बनाया था। भरत राजा विनीता नगरी में रहकर राज्य स चालन करता था। विनीतानगरी भगवान ऋषभदेव के लिये शक्रेन्द्र ने बनवाई थी। जो द्वारिका के समान १२ योजन ल बी ९ योजन चौड़ी प्रत्यक्ष देवलोक जैसी ऋद्धि समृद्धि से स पन्न थी।

भरत क्षेत्र में प्रथम चक्रवर्ती का भरत नाम होता है और ऐरवत क्षेत्र में प्रथम चक्रवर्ती ऐरवत नाम वाला होता है, महाविदेह की ३२ विजयों के नाम की समानता वाले चक्रवर्ती होते हैं।

राज्य स चालन करते हुए पुण्य प्रभाव से एव चक्रवर्ती बनने का समय निकट आने पर १४ रत्नों की उत्पत्ति होती है। (१) चक्ररत्न (२) द ड़रत्न (३) असिरत्न(तलवार) (४) छत्ररत्न ये चार एकेन्द्रियरत्न शस्त्रागार-आयुधशाला में उत्पन्न होते हैं। (५) चर्मरत्न (६) मणिरत्न (७) का गणिरत्न; ये तीन लक्ष्मीभ ड़ार में उत्पन्न होते हैं अर्थात् समय आने पर देवता लाकर रखते हैं। ये सातों एकेन्द्रिय रत्न १०००-१००० देवों के द्वारा सेवित होते है । ये रत्न पृथ्वीमय होते हैं।

(८) सेनापतिरत्न (९) गाथापतिरत्न (१०) बढ़ईरत्न (११) पुरोहितरत्न ये चार रत्न मानव रूप है। राजधानी में उत्पन्न होते हैं । (१२) अश्वरत्न (१३) हस्तीरत्न ये दो तिर्यंच प चेन्द्रियरत्न है, वैताढ्य पर्वत की तलहटी में उत्पन्न होते हैं। (१४) स्त्रीरत्न विद्याधरों की उत्तरी श्रेणी में उत्पन्न होता है। ये १४ रत्न १०००-१००० देवों से सेवित होते हैं अर्थात् ये अपने पुण्य प्रभाव से देवाधिष्ठित होते हैं।

प्रश्न-२ : चक्रवर्ती ने चक्ररत्न का अभिन दन क्यों और किस प्रकार किया ?

उत्तर- १४ रत्नों में चक्ररत्न सर्वप्रधान रत्न है। उसी के निर्देशानुसार चक्रवर्ती दिग्विजय यात्रा करता है तथा इस रत्न की प्रमुखता से ही चक्रवर्ती का नाम होता है अर्थात् चक्ररत्न का स्वामी, अधिपति, उसे धारण करने वाला चक्रवर्ती कहा जाता है। सर्व प्रथम चक्ररत्न ही आयुधशाला में उत्पन्न होता है। सा सारिक लोग दुकान का बहीखातों का एव लक्ष्मी का भी सन्मान हेतु पूजन करते हैं उसी प्रकार भरतराजा भी सा सारिक विधि विधान का ज्ञान होने से देवाधिष्ठित चक्ररत्न का विशिष्ट अभिन दन करता है। यह उसका जीताचार है।

शस्त्रागारशाला में चक्ररत्न देखकर वहाँ का अधिकारी भरत राजा के पास जाकर खुशखबर देता है। भरत राजा ये समाचार सुनकर सि हासन से उतर कर, पादुका खोलकर, मुख पर उत्तरास ग करके (यह भी सम्मान का अ ग है), हाथ जोड़कर, आयुधशाला की तरफ मुख करके ७-८ कदम जाकर, बाया घुटना ऊँचा रखकर, दाहिने घुटने को जमीन पर रखकर चक्ररत्न को मस्तक झुकाकर प्रणाम किया । फिर आयुधशाला के अधिकारी को मुकुट छोड़कर सारे आभूषण तथा विपुल धन उसे प्रीतिदान में दिया।

फिर सि हासन पर पूर्वाभिमुख बैठ कर नगरी को सजाने का आदेश दिया एव खुद ने स्नानादि करके विभूषित होकर अपने प्रमुखजनों के साथ आयुधशाला तरफ प्रस्थान किया। आयुधशाला में प्रवेश करने पर चक्ररत्न दृष्टिगोचर होते ही उसे प्राणाम किया, नजदीक पहुँचकर प्रमार्जन, जलसि चन, च दन अनुलेपन किया। वस्त्र, पुष्पमाला आदि से सम्मान कर, चावलों से स्वस्तिक बनाकर, सुग धित पुष्पों को अर्पित किया। यों पूजनविधि पूर्णकर बाँया घुटना ऊँचा करके प्रणाम किया। उसके बाद वहाँ से लौटकर राजसभा में आया, अष्ट दिवसीय प्रमोद घोषित कर महामहोत्सव की व्यवस्था करवाई। इस प्रकार भरत राजा ने पुण्य से प्राप्त अमूल्य, विशिष्ट रत्न का अभिन दन किया ।

प्रश्न-३ : चक्रवर्ती की दिगविजय यात्रा किस क्रम से चलती है ? और कितना समय लगता है ?

उत्तर- सभी चक्रवर्तियों को दिगविजय यात्रा में एक सरीखा समय नहीं लगता है। भरत चक्रवर्ती को ६०००० वर्ष लगे। यों अपनी

अपनी उम्र प्रमाणे कम ज्यादा समय लगता है। देवसहाय से कम उम्र वाले थोड़े समय में भी विजय यात्रा पूर्ण कर सकते हैं। सभी साधन और रत्न तथा देवता भी (१६०००)साथ में होते ही है। चक्ररत्न का अष्टान्हिका महोत्सव पूर्ण होने पर चक्ररत्न आयुधशाला से स्वतः निकल कर आकाश में मागधतीर्थ की दिशा में(पूर्व में) चलने लगा ।

चक्रवर्ती भी पूर्ण तैयारी के साथ सैन्यबल आदि लेकर चक्ररत्न निर्दिष्ट दिशा में प्रस्थान कर देता है। मार्ग में विजय पताका फहराते हुए, राजाओं को अपनी आज्ञा में करते हुए, पूर्व में ग गा नदी जहाँ समुद्र में मिलती है वहाँ स्थित मागधतीर्थ के निकट पहुँचने पर चक्र आकाश में रूक जाता है। फिर बढ़ई रत्न के द्वारा पड़ाव के रहने की सारी व्यवस्था कर देने पर चक्ररत्न आयुधशाला में पहुँच जाता है। चक्रवर्ती पौषधशाला में पहुँचकर तेला करके फिर मागध तीर्थ में बाण फेंक कर उसके अधिष्ठायक देव "मागध तीर्थ कुमार" को अपनी आज्ञा में करता है।

इस प्रकार यह विजय यात्रा क्रमशः आगे बढ़ती है जिसमें चक्र निर्दिष्ट मार्ग से चलते दक्षिण में वरदामतीर्थ और फिर पश्चिम में प्रभासतीर्थ के मालिक देव को अपनी आज्ञा में करके आगे सि धु नदी की अधिष्ठायका सि धु देवी को आज्ञा मनाते हैं। तेला और तीर फेंकने का क्रम चक्रवर्ती का वही रहता है। कि तु तीर केवल ४ जगह फेंका जाता है शेष तेले की आराधना से स्वतः आकर आज्ञा स्वीकार करते हैं। तीन तीर्थ और चुल्लहिमव त पर्वत पर यों ४ जगह तीर फेंकने की विधि होती है।

सि धुदेवी के बाद वैताढ्य पर्वत की ल बाई के मध्यस्थान में पहुँच कर चक्रवर्ती ने "वैताढ्य गिरि कुमार" देव को और फिर तिमिस्रा गुफा के पास पहुँचकर उसके मालिक देव "कृतमाली" को आज्ञा में किया। फिर वहीं ठहरकर सेनापति को पश्चिमी निष्कु ट अनार्य क्षेत्र में विजय फहराने भेजा। सि धु नदी को सेनापति ने चर्मरत्न के माध्यम से जाते समय और आते समय दोनों बार पार किया। फिर गुफा के पास पड़ाव में पहुँचकर चक्रवर्ती को आज्ञानुसार कार्य पूर्ण कर लेने का निवेदन किया।

कुछ समय वहाँ विश्राम के बाद चक्रवर्ती के आदेश से गुफा का द्वार सेनापति ने तेले की आराधना कर द ड़रत्न से विधिपूर्वक खोला। स पूर्ण सेना सहित चक्रवर्ती ने हाथी के मस्तक पर मणि रखकर उसके प्रकाश से गुफा में प्रयाण किया। चलते चलते प्रत्येक योजन पर चक्रवर्ती ने का गणीरत्न से गुफा की भित्ति पर ५०० धनुष ल बे चौड़े गोलाकार मा ड़ले बनाये जो स्थाई प्रकाश करने वाले होते है एव चक्रवर्ती के शासनकाल तक रहते है फिर धीरे-धीरे विनष्ट हो जाते है और गुफा के द्वार भी ब ध हो जाते है।

गुफा के मध्य में दो नदियाँ है- उमगजला, निमगजला । उन्हें पार करने के लिये बढ़ईरत्न स्थाई पुल बनाता है। ये नदियाँ ३-३ योजन चौड़ी और उनके बीच में दो योजन की दूरी होती है। यों आठ योजन का कुल मार्ग स्थाई बना दिया जाता है। इन आठ योजन में स भवतः पुल की भित्तियों पर मा ड़ले बनाये जाते हैं।

कुल ५० योजन ल बी गुफा में ४९ मा ड़ले बनाये जाते हैं। ५० योजन जाने पर गुफा का दूसरा दरवाजा, उत्तर दिशा का स्वतः खुल जाता है। गुफा से बाहर निकल कर सि धु नदी के पास पड़ाव रहता है और सेनापति पश्चिमी निष्कु ट को साधने के लिये जाता है और पूर्ववत् चर्मरत्न के माध्यम से नदी पार कर विजय पताका फहरा कर वापिस आ जाता है। उसके बाद चक्ररत्न चुल्लहिमव त पर्वत की तरफ प्रयाण करता है। चक्रवर्ती भी उसी निर्दिष्ट मार्ग से बीच के क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करते हुए चुल्लहिमव त पर्वत की ल बाई के मध्यस्थान में पहुँचता है। फिर वहाँ तेला करके एक लाख योजन का वैक्रिय रूप बनाकर पर्वत के शिखर पर "चुल्ल हिमव तगिरि कुमार" देव के भवन में ७२ योजन दूर नामा कित तीर फेंकता है। ज्ञान से समझकर वह देव भी चक्रवर्ती की आधीनता स्वीकार करता है।

यहाँ पर ही निकट में ऋषभकूट(पर्वत) है वहाँ आकर चक्रवर्ती अपना नाम लिखता है। फिर अपने पड़ाव पर आकर पारणा करता है। इसके बाद चक्र निर्दिष्ट मार्ग से दक्षिण में चलते हुए वैताढ्य पर्वत के पास आकर नमि-विनमि नाम के विद्याधरों को स्मरण करते तेला किया। विद्याधरों की श्रेणी के दोनों प्रमुख राजा मतिज्ञान के

उपयोग से स्वतः जानकर आते है यहाँ पर चक्रवर्ती को स्त्रीरत्न की प्राप्ति विनमि राजा के द्वारा होती है। यहाँ से उत्तर पूर्व में चक्ररत्न ग गादेवी के भवन तरफ प्रयाण करता है। सि धुदेवी के समान ग गादेवी तेले के प्रभाव से स्वतः उपस्थित होकर आज्ञा स्वीकार करती है। यहाँ से विजय यात्रा ख ड़प्रपात गुफा तरफ चलती है। गुफा के पास पड़ाव रखा जाता है जहाँ से सेनापति ग गानदी पार कर उत्तरी ग गा निष्कु ट की विजय यात्रा करता है। वापिस आने के बाद उस गुफा के द्वार सेनापति तेले की आराधना करके खोलता है। गुफा का वर्णन पहली गुफा के समान है जिसमें ४९ मा ड़ले बनाना और दो नदियों पर पुल बनाना समझ लेना। ५० योजन गुफा में चलने पर गुफा का दक्षिणी दरवाजा स्वतः खुल जाता है। बाहर आकर गगा नदी के किनारे सैन्य शिबिर स्थापित किया जाता है।

यहाँ पर चक्रवर्ती तेला करके ९ निधियों को अपने वशवर्ती बनाता है। ये निधियाँ ग गा नदी के समुद्र प्रवेश के स्थान पर भूमि में होती है और भूमिगत मार्ग से ही चलती हुई चक्रवर्ती के राजधानी में लक्ष्मीभ ड़ार(श्रीघर) में उनका मुख हो जाता है। निधियों की साधना के बाद सेनापति सुषेण छट्ठे ख ड़ को साधने के लिये ग गानदी को चर्मरत्न से पार करके जाता है। पुनः आने के बाद यथा समय चक्ररत्न विनिता राजधानी की तरफ प्रयाण करता है। चक्रवर्ती तेला कर के राजधानी में प्रवेश करते है और सभी का यथा योग्य सम्मान करता है। कुछ दिन बाद राज्याभिषेक महोत्सव रखा जाता है उस समय भी चक्रवर्ती तेला करता है और सभी मिलकर भरत चक्रवर्ती का राज्याभिषेक करते हैं। फिर राजभवन में पहुँच कर पारणा करते हैं। उसके बाद १२ वर्ष का प्रमोद घोषित किया। उसके पूर्ण होने पर सभी राजाओं को सन्मानित कर विदा करते हैं। फिर चक्रवर्ती अपना सुखपूर्वक राज्य स चालन करते है।

प्रश्न–४ : चक्रवर्ती की स पदा का स पूर्ण वर्णन किस प्रकार समझना?

उत्तर– १४ रत्न, नवनिधान, ६४००० राणियाँ, ३६० रसोइये, १६००० देव, ३२ हजार राजा, १८ श्रेणी प्रश्रेणी(विशिष्ट राजा), बत्तीस विधियों से युक्त ३२००० नाटक(म ड़ल), ८४ लाख अश्व, ८४ लाख हाथी,

८४ लाख रथ, ९६ करोड़ पैदल सेना, ७२००० नगर, ३२००० देश, ९६ करोड़ गाँव, ९९००० द्रोणमुख, ४८००० पाटण, २४००० कस्बे, २४००० म ड़ब, २०००० खाने, १६००० खेड़े, १४००० स बाह, ५६ जलनगर, ४९ ज गली प्रदेश वाले राजा, छ ख ड़ युक्त स पूर्ण भरत क्षेत्र, ग गा-सि धु नदी, चुल्लहिमव त पर्वत, ऋृषभकूट, वैताढ्य पर्वत एव उसकी दोनों गुफाएँ, दो विद्याधरों की श्रेणियाँ, मागध वरदाम प्रभासतीर्थ ये सभी ऋद्धि चक्रवर्ती के पुण्य प्रभाव से स्वाधीन एव विषयभूत होती है। यह स पूर्ण ऋद्धि कुछ व्यक्तिगत विनीता राजधानी में एव कुछ छ ख ड़ में समझना।

प्रश्न–५ : भरत चक्रवर्ती ने १३ तेले किस प्रकार किये और सेनापति ने तेले कहाँ कहाँ किये ?

उत्तर– सेनापति केवल दो तेले दोनों गुफा के द्वार खोलने के समय करता है। चक्रवर्ती के १३ तेले इस प्रकार है– (१) मागधतीर्थ का (२) वरदामतीर्थ का (३) प्रभासतीर्थ का (४) सि धुदेवी का (५) वैताढ्यगिरिकुमार देव का (६) गुफा के देव का (७) चुल्लहिमव त कुमार देव का (८) विद्याधरों का (९) ग गादेवी का (१०) दूसरी गुफा के देव का (११) नौ निधि का (१२) विनीता प्रवेश का (१३) राज्याधिषेक का। ऋषभकूट पर नाम लिखने का तेला नहीं होता है। चुल्लहिमव त पर्वत के तेले का पारणा किये बिना ही यहाँ नाम लिखा जाता है। फिर पड़ाव में आकर पारणा किया जाता है।

प्रश्न–६ : भरत चक्रवर्ती के सेना ने कहीं पर हार खाई थी क्या ?

उत्तर– चक्रवर्ती के अग्र विभाग की सेना गुफा से बाहर निकलने लगी। तब उस क्षेत्र के म्लेच्छ अनार्य आपात किरात जाति के मनुष्यों ने युद्ध करके सामना किया और चक्रवर्ती की अग्रिम भाग की सेना को परास्त कर दिया। फिर सुषेण सेनापति अश्वरत्न पर आरूढ़ होकर असिरत्न लेकर युद्ध भूमि में उतरा। आपात किरातों की हार हुई। वे अनेक योजन दूर भाग गये और जाकर आपस में इकट्ठे होकर उन्होंने सिन्धु नदी की बालू रेत में मेघमुख नामक नागकुमार जाति के कुलदेवता का स्मरण करते हुए निर्वस्त्र होकर तेले की आराधना की। देव का आसन चलायमान हुआ, देव आया एव उनके आग्रह से ७ दिन की

घोर वृष्टि चक्रवर्ती की सेना पर की। चक्रवर्ती ने स्वाभाविक वर्षा समझकर चर्मरत्न से नावा एव छत्ररत्न से छत्र करके सम्पूर्ण सैन्य की सुरक्षा की।

सात दिन बाद भरतराजा को उपद्रव की आश का हुई तब उनके चिंतन से १६००० देव सावधान हुए और जानकारी कर उन मेघमुख नाग कुमार देवों को वहाँ से भगा दिया। उपद्रव समाप्त हुआ। अपने कुल देवता मेघमुख नागकुमारों के कहने से उन किरातों ने भरत चक्रवर्ती का आधिपत्य स्वीकार किया। सत्कार सन्मान किया, क्षमा मा गी।

प्रश्न–७ : तेले करने से और तीर फेंकने से देव-देवी आदि कैसे क्या समझ जाते हैं ?

उत्तर– तेले से देव-देवी का आसन क पायमान होता है अर्थात् अ गस्फुरण होता है जिससे वे अपने अवधिज्ञान में उपयोग लगाकर जान लेते हैं कि चक्रवर्ती राजा भरत क्षेत्र में उत्पन्न हुआ है और हमारा जीताचार है कि उसकी आज्ञा स्वीकारना एव सत्कार सन्मान कर उत्तम वस्तु समर्पण करना। चार जगह तेले से नहीं मालुम होता है, तीर जाने पर तीर पर लेखन को पढ़कर समझ जाते है और पहले तीर देखकर गुस्सा करते है फिर लेखन पढ़ने पर विनम्र बन जाते है जीताचार होने से। बाण पर क्या लिखा होता है इसका स्पष्टीकरण नहीं है किन्तु भाव यह है कि चक्रवर्ती का स क्षिप्त परिचय एव नाम लिखा होता है जिसे पढ़ते ही देव को अपना जीताचार ध्यान में आ जाता है।

तीनों तीर्थों में बाण १२ योजन(शाश्वत) जाता है और देव के भवन में गिरता है। १२ योजन=१,४४,००० कि.मी. करीब समझना चाहिये। पुण्य प्रभाव से जो देवनामी शस्त्र आदि होते है वे चक्रवर्ती के इच्छित स्थान पर पहुँच जाते है। चुल्लहिमव त पर्वत पर ७२ योजन =८,६४,००० कि.मी. बाण जाकर भवन में पड़ता है।

तात्पर्य यह है कि वर्तमान में समुद्रों में खोजने पर भी ये तीर्थ मिल नहीं सकते। क्यों कि इतने कि.मी. की गिनती वैज्ञानिकों के कल्पना से बाहर की बात हो जाती है।

प्रश्न–८ : १४ रत्नों का खुलासा पूर्वक वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– (१) चक्ररत्न–चक्रवर्ती का यह सबसे प्रधान रत्न है, इसका

नाम सुदर्शन चक्र रत्न है। यह १२ प्रकार के वाद्यों के घोष से युक्त होता है। मणियों एव छोटो छोटी घ टियों के समूह से व्याप्त होता है। आरे लाल रत्नों से युक्त होते हैं। आरों का जोड़ वज्रमय होता है। नेमि पीले स्वर्णमय होती है। मध्यान्ह काल के सूर्य के समान तेजयुक्त होता है। एक हजार यक्षों से(व्य तर देवों से) परिवृत होता है। आकाश में गमन करता है एव ठहर जाता है। चक्रवर्ती की शस्त्रागार शाला में उत्पन्न होता है एव उसी में रहता है। ख ड़ साधन विजय यात्रा में कृत्रिम शस्त्रागार शाला म अर्थात् त बू से बनाई गई शाला में रहता है। इसी चक्र की प्रमुखता से ही वह राजा चक्रवर्ती कहा जाता है। वह रत्न विजय यात्रा में महान घोष नाद के साथ आकाश में चल कर ६ ख ड़ साधन का मार्ग प्रदर्शित करता है। सर्व ऋतुओं के फूलों की मालाओं से वह चक्ररत्न परिवेष्टित रहता है।

(२) द ड़रत्न–गुफा का द्वार खोलने में इसका उपयोग होता है। यह एक धनुष प्रमाण होता है। विषम पथरीली भूमि को सम करने के काम आता है। यह वज्रसार का बना होता है। शत्रु सेना का विनाशक, मनोरथ पूरक, शा तिकर शुभ कर होता है।

(३) असिरत्न–५० अ गुल लम्बी, १६ अ गुल चौड़ी, आधा अ गुल जाड़ी एव चमकीली तीक्ष्ण धार वाली तलवार होती है। यह स्वर्णमय मूठ एव रत्नों से निर्मित होती है। विविध प्रकार के मणियों से चित्रित बेलों आदि के चित्रों से युक्त होती है। शत्रुओं का विनाश करने वाली दुर्भेद्य वस्तुओं का भी भेदन करने वाली होती है। इसे असिरत्न कहा गया है।

(४) छत्ररत्न–यह चक्रवर्ती के धनुष प्रमाण जितना स्वाभाविक लम्बाचौड़ा होता है। ९९ हजार स्वर्णमय ताड़ियों से युक्त होता है। ये शलाकाएँ द ड़ से जुड़ी हुई होती है। इनके कारण फैलाया हुआ छत्र पींजरे से सदृश प्रतीत होता है। छिद्र रहित होता है। स्वर्णमय सुदृढ़ द ड़ मध्य में होता है। विविध चित्रकारी से मणिरत्नों से अ कित होता है। चक्रवर्ती की सम्पूर्ण सेना की धूप आँधी वर्षा आदि से सुरक्षा कर सकता है। उसकी पीठ भाग अर्जुन नामक सफेद सोने से आच्छादित होता है। सर्व ऋतुओं में सुखप्रद होता है।

(५) चर्मरत्न–चर्म निर्मित वस्तुओं में यह सर्वोत्कृष्ट होता है। चक्रवर्ती के एक धनुष प्रमाण स्वाभाविक होता है। फैलाये जाने पर चर्मरत्न और छत्ररत्न १२ योजन लम्बे एव ९ योजन चौड़े विस्तृत हो जाते हैं। यह जल के ऊपर तैरता है। सम्पूर्ण चक्रवर्ती की सेना परिवार इसमें बैठकर नदी आदि पार कर सकता है। ये दोनों चर्म और छत्ररत्न चक्रवर्ती के स्पर्श करते ही विस्तृत हो जाते हैं। यह कवच की तरह अभेद्य होता है। १७ प्रकार के धान्य की खेती इसमें तत्काल होती है। हिलस्टेशन (आबू पर्वत आदि)पर अभी भी मामूली वर्षा में चूने की भित्तियों पर एव टीण कवेलु के तिरछे छतों पर कितने ही प्रकार की लम्बी वनस्पतियाँ स्वतः उग जाती है। उसी प्रकार इस चर्मरत्न में कुशल गाथापति रत्न एक दिन में धान्य निपजा सकता है। यह अचल अक प होता है स्वस्तिक जैसा इसका स्वाभाविक आकार होता है। यह अनेक प्रकार के चित्रों से युक्त मनोहर होता है। छत्ररत्न को इसके साथ जोड़कर ड़िब्बी रूप बनाने योग्य इसके किनारो पर जोड़ स्थान होते हैं।

(६) मणिरत्न–यह मणिरत्न अमूल्य(मूल्य नहीं किया जा सके ऐसा) होता है। चार अ गुल प्रमाण, त्रिकोण, छ किनारों वाला होता है एव यह पाँचतला होता है। मणिरत्नों में श्रेष्ठतम एव वैडूर्यमणि की जाति का होता है। सर्व कष्टनिवारक, आरोग्यप्रद, उपसर्ग व विघ्नहारक होता है। इसको धारण करने वाला स ग्राम में शस्त्र से नहीं मारा जाता है यौवन सदा स्थिर रहता एव नख बाल नहीं बढ़ते। द्युतियुक्त एव प्रकाश करने वाला, मन को लुभावित करने वाला, अनुपम मनोहर होता है। इसे हस्तीरत्न के मस्तक के दाहिनी ओर बाँध कर चक्रवर्ती गुफा में प्रवेश करता है जिससे आगे का एव आसपास का मार्ग प्रकाशित होता है।

(७) काकणीरत्न–इस रत्न का स स्थान अधिकरणी और समचतुरस्र दोनों विशेषणों वाला होता है अर्थात् यह एक तरफ कम चौड़ा और दूसरी तरफ अधिक चौड़ा होता है। ६ तले ८ कोने(कर्णिका) १२ किनारे वाला होता है। चार अ गुल प्रमाण, आठ तोले के वजन वाला विष नाशक होता है। मानोन्मान की प्रामाणिकता का ज्ञान कराने वाला गुफा के अ धकार को सूर्य से भी अधिक नाश करने वाला होता है। इसके द्वारा भित्ति पर चित्रित ५०० धनुष के ४९ म ड़लों चक्रों से ही वह सम्पूर्ण

गुफा सूर्य के प्रकाश के समान दिवस भूत हो जाती है। चक्रवर्ती की छावनी में रखा हुआ यह रत्न रात्रि में दिवस जैसा प्रकाश कर देता है। ये सात एकेन्द्रिय रत्न है।

(८) सेनापतिरत्न–चक्रवर्ती के समान शरीर प्रमाण वाला, अत्यन्त बलशाली, पराक्रमी, ग भीर, ओजस्वी, तेजस्वी, यशस्वी, म्लेच्छ भाषा विशारद, मधुरभाषी, दुष्प्रवेश्य, दुर्गम स्थानों का एव उसे पार करने का ज्ञाता, चक्रवर्ती की विशाल सेना का वह अधिनायक होता है। सदा अजेय होता है। अर्थशास्त्र-नीतिशास्त्र आदि में कुशल होता है। चक्रवर्ती की आज्ञाओं का यथेष्ट पालन करने वाला, भरतक्षेत्र के ६ ख ड़ में से चार ख ड़ को साधने वाला होता है। चक्रवर्ती के अनेक रत्नों का(अश्व, चर्म, छत्र द ड़ आदि का)उपयोग करने वाला होता है।

(९) गाथापतिरत्न–यह भी चक्रवर्ती के बराबर अवगाहना वाला होता है। यह चक्रवर्ती के सेठ, भ ड़ारी, कोठारी आदि का कार्य करने वाला होता है। ग्रन्थों में इसे खेती करने में कुशल भी बताया गया है। जो कि एक दिन में चर्मरत्न पर खेती कर सकता है। मूलपाठ में गाथापति रत्न का परिचय अनुपलब्ध है।

(१०) बढ़ईरत्न–ग्राम, नगर, द्रोणमुख, सैन्यशिविर, गृह आदि के निर्माण करने में कुशल होता है। ८१ प्रकार की वास्तुकला का अच्छा जानकार होता है। भवन निर्माण के सभी कार्य का पूर्ण अनुभवी होता है। काष्ट कार्य करने में कुशल होता है। शिल्प शास्त्र निरूपित ४५ देवताओं के स्थानादिक का विशेष ज्ञाता होता है। जलगत, स्थलगत, सुर गों, खाइयों, घटिका य त्र, हजारों ख भों से युक्त पुल आदि के निर्माण ज्ञान में प्रवीण होता है। व्याकरण ज्ञान में, शुद्ध नामादि चयन लेखन अ कन में, देव पूजागृह, भोजनगृह, विश्रामगृह आदि के स योजन में प्रवीण होता है। यान वाहन आदि के निर्माण में समर्थ होता है। चक्रवर्ती के छ ख ड़ साधन विजय यात्रा के समय प्रत्येक योजन पर यह बढ़ई रत्न ही शैन्य शिविर तम्बू एव पोषधशाला आदि बनाता है। शरीर का मान चक्रवर्ती के समान होता है।

(११) पुरोहितरत्न–ज्योतिष विषय का ज्ञाता तिथिज्ञ मुहूर्त, हवन-विधि, शा त कर्म आदि का ज्ञाता होता है। अनेक धर्मशास्त्रों का ज्ञाता

होता है। स स्कृत आदि अनेक भाषाओं का जानकार होता है। शरीर प्रमाण चक्रवर्ती के समान होता है।

(१२) गजरत्न–यह चक्रवर्ती का प्रधान हस्ति होता है। चक्रवर्ती प्रायः हाथी पर बैठकर ही विजय विहारयात्रा एव भ्रमण आदि करता है।

(१३) अश्वरत्न–यह ८० अ गुल ऊँचा, ९९ अ गुल मध्य परिधि वाला, १०८ अ गुल लम्बा, ३२ अ गुल के मस्तक वाला, चार अ गुल कान वाला होता है। सुर–वरेन्द्र के वाहन के योग्य, विशुद्ध जाति कुल वाला, अनेक उच्च लक्षणों से युक्त, मेधावी, भद्र विनीत होता है। अग्नि, पाषाण, पर्वत, खाई, विषम स्थान, नदियों, गुफाओं को अनायास ही ला घने वाला एव स केत के अनुसार चलने वाला होता है। कष्टों में नहीं धबराने वाला, मलमूत्र आदि योग्य स्थान देख कर करने वाला, सहिष्णु होता है। तोते के प ख के समान वर्ण वाला होता है। युद्धभूमि में निड़रता से एव कुशलता से चलने वाला होता है।

(१४) स्त्रीरत्न–यह चक्रवर्ती की प्रमुख राणी होती है। वैताढ्य पर्वत के उत्तरी विद्याधर श्रेणी में प्रमुख राजा विनमि के यहाँ उत्पन्न होती है। स्त्री गुणों, सुलक्षणों से युक्त होती है। चक्रवर्ती के सदृश रूप लावण्यवान, ऊँचाई में कुछ कम, सदा सुखकर स्पर्श वाली, सर्व रोगों का नाश करने वाली होती है। इसे **श्री देवी** भी कहा जाता है। भरत चक्रवर्ती की श्री देवी स्त्री रत्न का नाम सुभद्रा था।

ये सात(८ से १४) प चेन्द्रिय रत्न हैं। इन १४ रत्नों के एक-एक हजार देव सेवक होते हैं अर्थात् ये १४ ही रत्न देवाधिष्ठित होते हैं।

प्रश्न–९ : नव निधियों स ब धी स्पष्टता किस प्रकार है ?

उत्तर– नौ निधियाँ– नौ निधियाँ श्री घर में लक्ष्मी भण्ड़ार में उत्पन्न होती है। छ ख ड़ साधन के बाद निधियों का मुख लक्ष्मी भ ड़ार में हो जाता है। वह मुख सुर ग के समान होता है जो निधियों और लक्ष्मी भ ड़ार का मिलान करता है। ये निधियाँ शाश्वत है। पेटी के आकार की है। इनकी लम्बाई १२ योजन, चौड़ाई ९ योजन एव ऊँचाई आठ योजन की है। यह माप प्रत्येक निधि का है। ये निधियाँ चक्रवर्ती द्वारा तेले की आराधना करने पर अपने अधिष्ठाता देवों के साथ वहाँ चक्रवर्ती की सेवा में उपस्थित हो जाती है। इन शाश्वत निधियों का स्थान

ग गामुख समुद्री किनारे पर है। निधियों के नाम अनुसार ही इनके मालिक देवों के नाम होते हैं और वे एक पल्योपम की उम्र वाले होते हैं। ये निधियाँ बाहर से भी अर्थात् इनकी बाह्य भित्तियाँ भी विविध वर्णों के रत्नों से जड़ित है।

(१) नैसर्प निधि–ग्राम नगर आदि के बसाने की विधियों एव सामग्री युक्त होती है।

(२) पा डुक निधि– नारियल आदि, धान्य आदि, शक्कर गुड़ आदि उत्तम शालि आदि के उत्पादन की विधियों, सामग्रियों एव बीजों से युक्त होती है। इन पदार्थों का इसमें स ग्रह एव स रक्षण भी हो सकता है।

(३) पिंगलक निधि– पुरुषों, स्त्रियों, हाथी, घोड़ों आदि के विविध आभूषणों के भ ड़ार युक्त एव इनके बनाने, उपयोग लेने की विधियों से युक्त होती है।

(४) सर्वरत्न निधि– सभी प्रकार के रत्नों का भ ड़ार रूप यह निधि है।

(५) महापद्म निधि–सभी प्रकार के वस्त्रों का भ ड़ार रूप एव उनको उत्पन्न करने की, र गने, धोने, उपयोग में लेने की विधियों से युक्त होती है एव तत्स ब धी अनेक प्रकार के साधन सामग्री से युक्त होती है।

(६) काल निधि–ज्योतिषशास्त्र ज्ञान, व शों की उत्पत्ति आदि ऐतिहासिक ज्ञान, सौ प्रकार के शिल्प का ज्ञान एव विविध कर्मों का ज्ञान देने वाली एव इनके स ब धी विविध साधनों, चित्रों आदि से युक्त होती है।

(७) महाकाल निधि–लोहा, सोना, चा दी, मणि, मुक्ता आदि के खानों की जानकारी से युक्त एव इन पदार्थों के भ ड़ार रूप होती है।

(८) माणवक निधि– युद्ध नीतियों के, राजनीतियों के, ज्ञान को देने वाली एव विविध शस्त्रास्त्र कवच आदि के भ ड़ार रूप यह निधि है।

(९) श ख निधि– नाटक, नृत्य आदि कलाओं का भ ड़ार रूप एव अनेक उपयोगी सामग्री आदि से युक्त यह निधि होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रतिपादक काव्यों एव अन्य अनेक काव्यों, स गीतों, वाद्यों को देने वाली और इन कलाओं का ज्ञान कराने वाली, विविध भाषाओं, श्रृ गारों का ज्ञान कराने वाली यह निधि है।

ये सभी निधियाँ स्वर्णमय भित्तियों वाली एव रत्नों जड़ित

होती है, वे भित्तियाँ भी अनेक चित्रों आकारों से परिम ड़ित होती है। ये निधियाँ आठ चक्रों पर-पहियों पर अवस्थित रहती है।

प्रश्न-१० : भरत बाहुबलि के युद्ध के स ब ध में सही क्या है?

उत्तर- इस स ब धी स्पष्टीकरण यहाँ सूत्र में नहीं है। तीर्थंकर चारित्र एव कथाग्र थों में भिन्न-भिन्न तरह से वर्णन मिलता है। यहाँ आगम में भरत राजा का वर्णन ही विस्तार से हैं। चक्रवर्ती का पुण्य सवाया होने से भाइयों के विरोध की कोई बात उठ नहीं सकती। फिर भी कथाग्र थों में ९८ भाइयों का और बाहुबलि का अन्य तरह से वर्णन मिलता है। उसे आगम से कहीं से भी सिद्ध नहीं किया जा सकता है। कथाओं की रचना में कई प्रकार की अतिशयोक्ति होना स्वाभाविक होता है। मनोर जक होने से पर परा में श्रद्धा से, बिना तर्क के स्वीकार कर ली जाती है। तर्क खड़ा करने पर १ वर्ष का काउस्सग, बेलें लिपटना, पक्षी घोंसले कर देना आदि बातें विचारणीय बन जाती है। ऐसे तर्कों का समाधान नहीं हो पाता किन्तु मात्र श्रद्धापूर्वक स्वीकार करना ही होता है ।

प्रश्न-११ : भरत चक्रवर्ती को का च घर में केवलज्ञान होने की बात सत्य है ?

उत्तर- इस स ब ध में यहाँ आगम वर्णन इस प्रकार है-एक बार भरत चक्रवर्ती स्नान करके एव विविध श्रृ गार करके सुसज्जित अल कृत विभूषित होकर अपने काच महल में पहुँचा और सि हासन पर बैठ कर अपने शरीर को देखते हुए विचारों में लीन बन गया। का च महल हो या कला म दिर हो, व्यक्ति के विचारों का प्रवाह सदा स्वत त्र है वह किधर भी मोड़ ले सकता है। भरत चक्रवर्ती अपने विभूषित शरीर को देखते हुए चिंतनक्रम में बढ़ते बढ़ते वैराग्यभावों में पहुँच गये। शुभ एव प्रशस्त अध्यवसायों की अभिवृद्धि होते होते, लेश्याओं के विशुद्ध विशुद्धतर होने से, उनके मोह कर्म एव क्रमशः घातिकर्मों का क्षय हो गया । वहीं उन्हें केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हो गया।

भरत चक्रवर्ती का चमहल में ही भरत केवली बन गये। एक तरफ विचारों का वेग ध्यान में खड़े हुए मुनि को सातवीं नरक में जाने योग्य बना देते हैं तो दूसरी तरफ ये ही विचार प्रवाह व्यक्ति

को राजभवन और का चमहल में ही भावों से केवली सर्वज्ञ सर्वदर्शी बना सकते हैं। ऐसा भी वर्णन मिलता है कि भरत चक्रवर्ती की दादी भगवान ऋषभदेव की माता को तो हाथी पर बैठे हुए ही केवलज्ञान उत्पन्न हो गया था।

भरत केवली ने अपने आभूषण आदि उतारे, प चमुष्टि लोच किया और का च महल से निकले। अतःपुर में होते हुए विनीता नगरी से बाहर निकले और १० हजार राजाओं को अपने साथ दीक्षित कर उस मध्यखड़ में विचरण करने लगे। अ त में अष्टापद पर्वत पर स लेखना स थारा पादपोपगमन प ड़ित मरण स्वीकार किया।

इस प्रकार भरत चक्रवर्ती ७७ लाख पूर्व कुमारावस्था में रहे एक हजार वर्ष मा ड़लिक राजा रूप में, ६ लाख पूर्व में हजार वर्ष कम चक्रवर्ती रूप में रहे। कुल ८३ लाख पूर्व गृहस्थ जीवन में रहे। एक लाख पूर्व देशोन केवली पर्याय में रहे। एक महिने के स थारे से कुल ८४ लाख पूर्व की आयुष्य पूर्ण कर सम्पूर्ण कर्मों को क्षय किया एव सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए, सब दुःखों का अ त किया ।

प्रश्न-१२ : ४९ म ड़लों का स्पष्टीकरण किस प्रकार है ?

उत्तर- दक्षिणी द्वार से प्रवेश करके १ योजन चलने के बाद प्रथम म ड़ल, द्वार पर किया जाता है क्यों कि द्वार का एक दरवाजा दो योजन का होता है। दूसरा योजन पार करने पर दूसरा म ड़ल द्वार की आल बन भित्ति पर । तीसरा भी आल बन भित्ति पर। चौथा योजन पार करने पर दरवाजे की आल बनभित्ति समाप्त हो जाने से, चौथा म ड़ल गुफा की एक भित्ति पर । पाँचवाँ दूसरी भित्ति पर। यों क्रमशः छट्ठा प्रथम भित्ति पर, सातवाँ दूसरी भित्ति पर। यों ८वाँ, १०,१२, १४,१६,१८,२० प्रथम भित्ति पर ९,११,१३,१५,१७,१९, दूसरी भित्ति पर। २१ से २८ पुल की भित्ति पर, फिर २९,३१,३३,३५,३७,३९,४१ ४२,४५,४७,४९ वाँ म ड़ल दूसरी भित्ति पर तथा ३०,३२,३४,३६,३८, ४०,४२,४४,४६,४८ वाँ म ड़ल पहली भित्ति पर किया जाता है। ये एकी म ड़ल बाँई तरफ और बेकी म ड़ल दाहिनी भित्ति पर किये जाते हैं। अतः ४९ वाँ म ड़ल भी बाँई तरफ दरवाजे पर होता है। पुल मार्ग भी गुफा के बाँई तरफ नदी पर बनता है। ५० योजन पार करने पर

गुफा के बाहर आ जाते हैं। अतः ५०वाँ म ड़ल नहीं होता है। ४९ ही होते हैं। इस तरह ४९ में से २४ दाहिनी तरफ और २५ बाँई तरफ मा ड़ले समझना।

इस प्रकार पहला, ४९वाँ बाँई तरफ दरवाजे पर दूसरा दाहिने तोड़क पर(आल बन पर)। तीसरा बायें आल बन पर, चौथे से ४६ वें तक गुफा के भित्ति पर, ४७,४८ वाँ तोड़क पर(आल बन पर) होते हैं। बीच में २१ से २८ वें म ड़ल पर एक एक दिशा में क्रम से होते हैं। जिसमें एकी स ख्या वाले पुल के बाँये और बेकी स ख्या वाले पुल के दाहिने तरफ होते है। यह ४९ म ड़लों का स्पष्टीकरण है। ये मा ड़ले ५०० धनुष के प्रतिपूर्ण च द्र के जैसे होते है, चूड़ी जैसे नहीं होते। ये आठ योजन ऊपर प्रकाश करते है। सामने १२ योजन और आजु-बाजु आधा-आधा योजन कुल १ योजन प्रकाश प्रत्येक म ड़ल का होता है।

वक्षस्कार-४

प्रश्न-१ : इस वक्षस्कार का परिचय क्या है ? और इसमें विषय क्रम किस प्रकार है ?

उत्तर- इस शास्त्र में जम्बूद्वीप के वर्णन की मुख्यता है। इसका एक विभाग भरतक्षेत्र है। जिसका सा गोपा ग वर्णन तीन वक्षस्कार में पूर्ण किया गया है। उसमें भरतक्षेत्र का क्षेत्रीय वर्णन, छ आरों का वर्णन तथा प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती भरत राजा का वर्णन विस्तार से किया गया है। चौथे वक्षस्कार में अवशेष ज बूद्वीप के वर्षधर पर्वत और क्षेत्रों का वर्णन उनके अ तरगत आये पर्वत, नदी, क्षेत्र विभागों के साथ किया गया है।

इस वक्षस्कार का विषयक्रम :- (१) सर्व प्रथम भरतक्षेत्र के अन तर आने वाले चुल्लहिमव त पर्वत का वर्णन तीन नदी, द्रह एव कूटों के साथ है। (२) हेमव त युगलिक क्षेत्र (३) महाहिमव त पर्वत (४) हरिवर्ष युगलिक क्षेत्र (५) निषध पर्वत (६) महाविदेह क्षेत्र, जिसमें- उत्तर कुरु क्षेत्र एव उसके वृक्ष, पर्वत, द्रह, गजद ता वक्षस्कार आदि (७) पहली विजय से आठवीं विजय, बीच के पर्वत और अ तर नदी युक्त

(८) दोनों सीतामुख वन (९) नौवीं से १६वीं विजय पर्वत नदी युक्त (१०) देवकुरु क्षेत्र एव उसके वृक्ष, द्रह, पर्वत, नदी, गजद ता युक्त (११) १७वीं से २४वीं विजय, पर्वत, नदी युक्त (१२) दोनों सीतोदामुख वन (१३) पच्चीसवीं से बत्तीसवीं विजय, पर्वत, नदी युक्त (१४) मेरुपर्वत, उसके चार वन और अभिषेक शिलाएँ आदि (१५) नील वर्षधर पर्वत (१६) रम्यक्वास युगलिक क्षेत्र (१७) रुक्मी वर्षधर पर्वत (१८) हेरण्यवय युगलिक क्षेत्र (१९) शिखरी वर्षधर पर्वत (२०) ऐरवत क्षेत्र के वर्णन के साथ वक्षस्कार पूर्ण होता है। प्रस्तुत में प्रश्न उत्तर भी इसी क्रम पूर्वक लिये हैं।

प्रश्न-२ : चुल्लहिमव त वर्षधर पर्वत का एव उस पर "श्री देवी" के पद्मद्रह का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- दक्षिण दिशा में भरत क्षेत्र की सीमा करने वाला, उत्तर दिशा में हेमव त क्षेत्र की सीमा करने वाला, पूर्व पश्चिम में लवण समुद्र के सीमा त प्रदेशों को स्पर्श करने वाला स्वर्णमय चुल्ल हिमव त नाम का लघु पर्वत है। यह पूर्व पश्चिम समुद्र पर्यंत लम्बा, उत्तर दक्षिण भरत क्षेत्र से दुगुना १०५२-१२/१९ योजन का चौड़ा एव १०० योजन ऊँचा है। समभूमि पर दोनों बाजू एक-एक पद्मवर वेदिका एव वनख ड़ से सुशोभित है।

पद्मद्रह- इस पर्वत का शिखरतल मृद गतल के समान चिकना समतल रमणीय भूमि भाग वाला है। बहुत से वाणव्य तर देवी देवताओं के आमोद प्रमोद के योग्य है। इस शिखरतल के लम्बाई चौड़ाई के ठीक मध्य में एक पद्मद्रह है, जो १००० योजन लम्बा, ५०० योजन चौड़ा एव १० योजन ऊँड़ा है। इसमें चारों दिशाओं में सीढ़ियाँ(पगथिये) है। उसकी भित्तियाँ रजतमय(अथवा तो रत्नमय)है। द्रह के ऊपरी किनारे पर पद्मवर वेदिका एव वनख ड़ है। इसमें दस योजन गहरा पानी भरा रहता है। तीन नदियों से पानी निकलते हुए भी इस द्रह में नये अप्काय जीवों की एव पानी के योग्य पुद्गलों की उत्पत्ति होती रहती है। जिससे १० योजन पानी की गहराई में कोई खास अ तर नहीं पड़ता है।

पद्मकमल- द्रह के ठीक बीचो बीच एक योजन लम्बा चौड़ा जल से

बाहर और १० योजन जल में रहा हुआ एक प्रमुख पद्म है। जो पृथ्वीकाय मय है अर्थात् उसका मूल क द, नाल, बाह्य, आभ्य तर पत्र, केसरा, पुष्करास्थि भाग, विविध रत्न-मणिमय है। उसकी कर्णिका-बीजकोश, ऊपरी शिखरस्त सघन विभाग स्वर्णमय है। जिसका भूमि भाग समतल चिकना स्वच्छ उज्जवल सर्वथा स्वर्णमय है। यह भूमि भाग आधा योजन(२ कोश)लम्बा चौड़ा गोलाकार है। इस पर ठीक बीच में एक कोश लम्बा आधाकोश चौड़ा कुछ कम एक कोस ऊँचा, एक सु दर विशाल सैकड़ों स्त भों पर स्थित भवन है जिसके तीन दिशाओं में पाँच सौ धनुष ऊँचे २५० धनुष चौड़े द्वार है। भवन के अ दर मध्य में ५०० धनुष लम्बा चौड़ा २५० धनुष ठोस ऊँचा चबूतरा है, उस पर विशाल देव शय्या है। इत्यादि वर्णन भवनों के समान है। यह भवन **श्री देवी** का है। उसकी स्थिति एक पल्योपम की है ।

प्रश्न-३ : इस पद्मद्रह में पृथ्वीकाय के पद्मकमल कितनी स ख्या में है और किन-किनके है ?

उत्तर- मुख्य पद्म से कुछ दूर चौतरफ गोलाकार परिधि रूप १०८ पद्म प क्ति से आये हुए है। उनके बाहर मुख्य पद्म से (१) पश्चिमोतर में उत्तर में और उत्तरपूर्व में चार हजार सामानिक देवों के पद्म है। (२) पूर्व में-चार महत्तरिकाओं के ४ पद्म है। (३) दक्षिण-पूर्व में आभ्य तर परिषद के देवों के ८००० पद्म है। (४) दक्षिण में-मध्यम परिषद के १०००० पद्म है। (५) पश्चिम दक्षिण में- बाह्य परिषद के १२००० पद्म है। (६) पश्चिम में- सात अनिकाधिपतियों के सात पद्म है। (७) फिर इन सभी पद्मों को घेरे हुए चौतरफ परिधि रूप गोलाई में आत्मरक्षक देवों के १६००० पद्म है। ये ५० हजार एक सौ उन्नीस पद्म और इनके स्वामी देव देवी भी श्री देवी के परिवार रूप है। इन पद्मों की कर्णिका पर सभी के भवन है। श्रीदेवी का मुख्य पद्म मिलाकर ५०१२० कुल पद्म होते हैं। इन सभी पद्मों को घेरे हुए तीन वेदिका-परकोटे रूप पद्म हैं जो एक वेदिका परकोटे में अ दर से बाहर क्रमशः ३२+४०+४८ लाख हैं। तीनों मिलकर एक करोड़ २० लाख हैं। इसमें ऊपरोक्त स ख्या मिलाने से १,२०,५०,१२० कुल पद्म होते हैं। ये सभी १० योजन पानी में हैं। पानी के बाहर का सम्पूर्ण परिमाण मुख्य कमल का जो ऊपर

बताया गया है उसे परिवेष्टित करने वाले १०८ पद्म लम्बाई चौड़ाई में मुख्य पद्म से आधे परिमाण के है। शेष पद्मों का मान भलावण पाठ में छूट जाने से स्पष्ट नहीं है ।

सभी पद्मों के कर्णिका विभाग समतल है, उस पर भवन हैं और कर्णिका के किनारे अर्थात् पद्म के ऊपरी भाग पर पद्मवर वेदिका एव वन ख ड़ है।

प्रश्न-४ : पद्मद्रह से निकलने वाली तीन नदियाँ किस प्रकार है और इस चुल्लहिमव त पर्वत के शिखरतल पर कूट कितने है ?

उत्तर- इस द्रह के पूर्व से ग गा, पश्चिम से सिन्धु नदी और उत्तर से रोहिता शा नदी निकलती है। रोहिता शा नदी चुल्लहिमव त पर्वत के उत्तरी शिखर तल को पूर्ण पार कर हेमव त क्षेत्र में रोहिता श कु ड़ में गिरती है और उस कु ड़ के उत्तरी तोरण से निकल कर उत्तर दिशा में जाती है। हेमव त क्षेत्र के बीचोबीच में स्थित वृत वैताढ्य पर्वत को दो योजन की दूरी रखती हुई पश्चिम में मुड़ जाती है। जो हेमव त के चौड़ाई के बीचोबीच चलती हुई जगती को भेद कर लवण समुद्र में गिरती है अर्थात् वहाँ जगती में नदी के जल प्रवेश जितना स्थाई मार्ग स्वाभाविक शाश्वत है ।

शेष दोनों ग गा सिन्धु नदियाँ ५००-५०० योजन पर्वत पर चलकर दक्षिण में मुड़ती है फिर पर्वत के दक्षिण किनारे तक चलकर दक्षिण में रहे भरत क्षेत्र में ग गा और सिन्धु नामक कु ड़ों में गिरती है। जिसका वर्णन भरत क्षेत्र के वर्णन में कर दिया गया है। इन पर्वत एव नदियों के माप, परिवार आदि आगे चौथे वक्षस्कार में तालिका (चार्ट) में देखें। नदियों के दोनों किनारे पर पद्मवर वेदिका एव वनख ड़ है।

कूट-इस पर्वत के शिखरतल पर चौड़ाई से बीच में क्रमशः पूर्व से पश्चिम तक ११ कूट हैं, उनके नाम इस प्रकार है- (१) सिद्धायतन कूट (२) चुल्लहिमव त कूट (३) भरत कूट (४) इलादेवी कूट (५) ग गादेवी कूट (६) श्रीदेवी कूट (७) रोहिता श कूट (८) सि धुदेवी कूट (९) सुरा देवी कूट (१०) हेमव त कूट (११) वेश्रमण कूट।

सिद्धायतन कूट के अतिरिक्त सभी कूट पर उन नामों के देव या देवी के भवन है। पूर्व में पहला कूट सभी पर्वतों पर सिद्धायतन

कूट है। इसका कोई स्वामी देव नहीं है। पश्चिम में अ तिम कूट वैश्रमण देव का है शेष कूट उस पर्वत के दोनों तरफ आए क्षेत्र, पर्वत, नदी, गुफा आदि के मालिक अधिष्ठाता देव देवी के हैं। इनके मालिक देव देवी की उम्र एक पल्योपम की होती है। कूटों की लम्बाई चौड़ाई आदि चार्ट से जाने।

महाहिमव त वर्षधर पर्वत की अपेक्षा यह पर्वत छोटा है। अतः चुल्ल(छोटा) हिमव त पर्वत यह शाश्वत नाम है। चौकोन लम्बा होने से इस पर्वत का रुचक स स्थान कहा गया है। क्यों कि रुचक नामक गले का आभूषण इसी प्रकार का होता है।

प्रश्न–५ : हेमव त युगलिक क्षेत्र कहाँ, किस प्रकार आया है ?

उत्तर– इस क्षेत्र के दक्षिण में चुल्लहिमव त पर्वत है और उत्तर में महा हिमव त पर्वत है। पूर्व पश्चिम में लवण समुद्री सीमा त प्रदेशों को स्पर्श किया हुआ, यह चौकोन लम्बा पल्य क स स्थान वाला क्षेत्र है। इस क्षेत्र के लम्बाई चौड़ाई से मध्य में शब्दापाती वृत वैताढ़्य पर्वत है। जो एक हजार योजन ऊँचा और एक हजार योजन लम्बा-चौड़ा गोल है। उसके समभूमि भाग पर चौ तरफ पद्मवर वेदिका और वनख ड़ है। शिखर तल पर भी चौतरफ किनारे पर पद्मवर वेदिका और वनख ड़ है। शिखर तल के मध्य में श्रेष्ठ प्राषाद है, जो ६२–१/२(साड़े बासठ)योजन ऊँचा ३१–१/४(सवा इकतीस)योजन लम्बा-चौड़ा है। शब्दापाती देव यहाँ सपरिवार रहता है।

रोहिता और रोहिता शा दो नदियों एव वृत्त(गोल)वैताढ़्य पर्वत से इस क्षेत्र के चार विभाग–ख ड़ होते हैं। इस क्षेत्र की चौड़ाई चुल्ल हिमव त पर्वत की चौड़ाई से दुगुनी २१०५–५/१९ योजन की है इस क्षेत्र में अकर्मभूमिज मनुष्य रहते हैं। यहाँ अवसर्पिणी के तीसरे आरे के प्रारम्भ के समान भाव वर्तते हैं। मनुष्यों की उम्र एक पल्योपम की होती है। दस प्रकार के विशिष्ट वृक्षों(प्रचलन में कल्पवृक्ष) से इन मनुष्यों का जीवन निर्वाह होता है, इत्यादि वर्णन तीसरे आरे के वर्णन के समान समझना।

इस क्षेत्र के दोनों तरफ स्वर्णमय पर्वत है। वे स्वर्णमय पुद्गल एव स्वर्णिम प्रकाश इस क्षेत्र को देते रहते हैं। इस क्षेत्र के अधिपति

देव का नाम हेमव त है। इसलिए इस क्षेत्र का **हेमव त** यह अनादि शाश्वत नाम है।

प्रश्न–६ : महाहिमव त वर्षधर पर्वत का वर्णन किस प्रकार है?

उत्तर– यह पर्वत दक्षिण में हेमव त क्षेत्र की और उत्तर में हरिवर्ष क्षेत्र की सीमा करता है। पूर्व पश्चिम लवण समुद्री चरमा त प्रदेशों को स्पर्शित करता है। पूर्व पश्चिम लम्बा और उत्तर दक्षिण हेमव त क्षेत्र से दुगुना ४२१०–१०/१९ योजन चौड़ा एव २०० योजन ऊँचा रूचक स स्थानमय है। सम्पूर्ण स्वर्णमय है। शेष वर्णन वेदिका, द्रह, कूट आदि का चुल्ल हिमव त पर्वत के वर्णन के समान है।

यहाँ महापद्म द्रह है जो पद्मद्रह से दुगुना लम्बा-चौड़ा है। जल की गहराई पद्मद्रह के समान है। इसमें मुख्य पद्म आदि की लम्बाई चौड़ाई एव भवन की लम्बाई चौड़ाई पद्मद्रह के वर्णन से दुगुनी है। लम्बाई चौड़ाई के अतिरिक्त सम्पूर्ण वर्णन पद्मद्रह के समान है। यहाँ **ह्री** नामक देवी रहती है, उसी का सारा परिवार पद्मों पर रहता है।

इस द्रह में पूर्व-पश्चिम से नदी नहीं निकली है किन्तु उत्तर दक्षिण से नदी निकली है। दक्षिणी तोरण से रोहिता नदी निकली है जो स पूर्ण पर्वत पर दक्षिण दिशा में चलती हुई किनारे पर पहुँच कर २०० योजन नीचे हेमव त क्षेत्र में रहे रोहितप्रपात कु ड़ में गिरती है और फिर उस कु ड़ के दक्षिणी तोरण से निकल कर दक्षिण दिशा में हेमव त क्षेत्र में चलती हुई शब्दापाती वृत वैताढ़्य के दो योजन दूर रहते हुए पूर्व की और मुड़ जाती है। जो हेमव त क्षेत्र की लम्बाई में दो विभाग करती हुई पूर्वी समुद्र में जाकर मिलती है। समुद्र में जाने के लिये जगती में इन नदियों के शाश्वत मार्ग होते हैं। इन्हीं मार्गों से जगती के नीचे से होकर समुद्र में मिल जाती है। ये द्रह से निकलने वाली सभी महानदियाँ अन्य हजारों छोटी नदियों को अपने में समाविष्ट करती हुई आगे समुद्र तक बढ़ती है।

महापद्म द्रह के उत्तरी तोरण से हरिक ता महानदी निकलती है जो उत्तर दिशा में शिखर तल पर चलते हुए पर्वत के किनारे पहुँचती है। वहाँ जीव्हाकार बने मार्ग(मोखी)से २०० योजन नीचे हरिवर्ष क्षेत्र में हरिक त प्रपात कु ड़ में गिरती है और फिर उस कु ड़ के उत्तरी तोरण

से निकल कर हरिवर्ष क्षेत्र में उत्तर दिशा में चलती है। वहाँ बीचोंबीच रहे विकटापाती वृत वैताढ्य के पास होते हुए पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। आगे पश्चिम में चलते हुए हरिवर्ष क्षेत्र के लम्बाई में दो विभाग करती हुई किनारे तक जाती है और वहाँ पश्चिमी लवण समुद्र में समाविष्ट हो जाती है।

इस महा हिमव त पर्वत पर आठ कूट है। यथा- (१) सिद्धायतन कूट (२) महाहिमव त कूट (३) हेमव त कूट (४) रोहित कूट (५) ह्री कूट (६) हरिक त कूट (७) हरिवास कूट (८) वैडूर्य कूट।

चुल्ल हिमव त पर्वत से यह पर्वत सभी अपेक्षाओं से विशाल है एव महाहिमव त इसका अधिपति देव यहाँ रहता है इसलिये इसका महाहिमव त पर्वत यह शाश्वत नाम है।

प्रश्न-७ : हरिवर्ष युगलिक क्षेत्र किस प्रकार आया है ?

उत्तर- हेमव त क्षेत्र के समान ही यह क्षेत्र दो नदियों एव वृत वैताढ्य पर्वत से चार भागों में विभाजित है। पूर्व पश्चिम लम्बा, उत्तर-दक्षिण महाहिमव त पर्वत से दुगुणा(८४२१-१/१९ योजन)चौड़ा है। पल्य क (पर्यंक) स स्थान स स्थित है। इसके उत्तर में निषध महा पर्वत है दक्षिण में महाहिमव त पर्वत है। पूर्व पश्चिम में लवण समुद्र है। इसमें अकर्म-भूमिज युगलिक मनुष्य रहते हैं। १० प्रकार के विशिष्ट वृक्ष होते है, इत्यादि अवसर्पिणी के दूसरे आरे के प्रारम्भकाल का वर्णन जानना।

लम्बाई-चौड़ाई से बीचोबीच में विकटपाती वृत वैताढ्य पर्वत है जिसका वर्णन शब्दापाती वृत वैताढ्य के समान है इस वृत वैताढ्य पर भवन में अरुण नामक स्वामी देव रहता है।

इस क्षेत्र का हरिवर्ष नामक स्वामी देव है जो महर्द्धिक एव एक पल्योपम की स्थिति वाला है। इस कारण इस क्षेत्र का शाश्वत नाम **हरिवर्ष क्षेत्र** है। हरी-हरिक ता नामक दो नदियाँ इस क्षेत्र में है। हेमवय क्षेत्र के समान ही इसके भी ४ विभाग आदि अवशेष वर्णन है।

प्रश्न-८ : निषध पर्वत का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- यह पर्वत उत्तर में महाविदेह क्षेत्र की एव दक्षिण में हरिवर्ष क्षेत्र की सीमा करता है। पूर्व पश्चिम में लवण समुद्री चरमा त प्रदेशों का स्पर्श करता है अर्थात् सभी पर्वत जगती को भेद कर समुद्र तक पहुँचे

हुए है। यह पूर्व पश्चिम लम्बा और उत्तर दक्षिण हरिवर्ष क्षेत्र से दुगुना (१६८४२-२/१९ योजन)चौड़ा एव ४०० योजन ऊँचा रुचक स स्थान स स्थित है। शेष वर्णन महाहिमव त पर्वत के समान है। इसके शिखरतल पर तिगिच्छ नामक द्रह है। जो महापद्मद्रह से दुगुना है और अ दर के पद्म और भवन भी दुगुनी लम्बाई चौड़ाई वाले है। पद्मों का शेष वर्णन महापद्म द्रह के समान है। यहाँ **धृति** नामक देवी सपरिवार निवास करती है।

इस द्रह के उत्तर दक्षिण से महापद्म द्रह के समान दो नदियाँ निकलती है। दक्षिण से हरि नदी निकलती है जो हरिवर्ष क्षेत्र में हरि-प्रपात कु ड़ में गिरती है और वहाँ से विकटापाती वृत वैताढ्य तक दक्षिण में चल कर फिर पूर्व दिशा में मुड़ जाती है। वह नदी पूर्वी हरिवर्ष क्षेत्र के लम्बाई में दो विभाजन करती हुई पूर्वी लवण समुद्र में प्रविष्ट होती है।

इस द्रह के उत्तर से सितोदा महानदी निकलती है जो उतरी शिखरतल पर चलती हुई किनारे पर आकर ४०० योजन नीचे देवकुरु क्षेत्र में रहे सीतोदाप्रपात कु ड़ में गिरती है, फिर कु ड़ के उत्तरी तोरण से निकल कर देवकुरु क्षेत्र को दो भागों में विभाजित करती हुई आगे बढ़ती है। चित्रकूट पर्वत और विचित्रकूट पर्वतों के बीच में से निकल कर पाँच द्रहों को दो भागों में विभाजित करती है।

फिर २५०-२५० योजन भद्रशाल वन में चल कर उसके भी पूर्व पश्चिम दो विभाग करती है। फिर मेरु पर्वत से दो योजन दूर रहते हुए विद्युत्प्रभ गजद ता पर्वत के नीचे से निकल कर पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। उधर भी पश्चिमी भद्रशाल वन में २२००० योजन चलती हुई उसके उत्तरी दक्षिणी दो विभाग करती हुई आगे बढ़ती है।

इसके बाद पश्चिमी महाविदेह को दो भागों में विभाजित करती हुई, उधर की १६ विजयों से आने वाली नदियों को अपने समाविष्ट करती हुई आगे बढ़ती है। अ त में जगती के जय त द्वार के नीचे (१००० योजन नीचे) से जाकर लवण समुद्र की सीमा में प्रवेश करती है। क्योंकि पश्चिमी महाविदेह आगे से आगे नीचे उतार रूप में रहा हुआ है। जिससे २४वीं २५वीं विजय नीचा लोक में है अर्थात् समभूमि

से १००० योजन नीचे है। पूर्वी महाविदेह इस तरह नहीं है।

निषध पर्वत पर ९ कूट है- (१) सिद्धायतन कूट (२) निषध कूट (३) हरिवर्ष कूट (४) पूर्वीविदेह कूट (५) हरिकूट (६) धृति कूट (७) सीतोदा कूट (८) पश्चिम विदेह कूट (९) रूचक कूट। यह निषध पर्वत सर्व तपनीय स्वर्णमय है, इस पर्वत पर निषध नामक महर्द्धिक देव रहता है, इसलिये इस पर्वत का **निषध** शाश्वत नाम है।

प्रश्न-९ : महाविदेह क्षेत्र का स क्षिप्त परिचय क्या है?

उत्तर- जम्बूद्वीप के सभी क्षेत्रों और पर्वतों से यह विशाल क्षेत्र है। पूर्व-पश्चिम एक लाख योजन लम्बा और तेतीस हजार छसों चौरासी योजन चार कला का चौड़ा है।(कला=१ योजन का १९वाँ भाग)।

इसके उत्तर में नीलव त पर्वत और दक्षिण में निषध पर्वत है तथा पूर्व पश्चिम में लवणसमुद्र है। इसके बीचोबीच में मेरु पर्वत है। जो सभी पर्वतों में श्रेष्ठ एव ऊँचाई में सर्वाधिक एक लाख योजन का है। इस क्षेत्र में कर्मभूमिज मनुष्यों के रहने के ३२ क्षेत्र विभाग हैं। जिन्हें ३२ विजय कहा गया है। अकर्मभूमिज युगलिक मनुष्यों के दो क्षेत्र विभाग है- देवकुरु क्षेत्र और उत्तरकुरु क्षेत्र। जम्बूद्वीप का मालिक देव भी वहाँ उत्तरकुरु क्षेत्र में पृथ्वीकाय के जम्बू वृक्ष पर रहता है। ज बूद्वीप की सभी नदियों से सबसे बड़ी दो नदियाँ यहाँ है- सीता और सीतोदा। इन सभी श्रेष्ठताओं के साथ एक विशेषता महाविदेह क्षेत्र की यह है कि यहाँ तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि महापुरुष सदा मिलते है और साधु-साध्वी केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जाते रहते हैं अर्थात् मुक्ति का मार्ग यहाँ सदा चालू रहता है। इस महाविदेह क्षेत्र का वर्णन शास्त्रकार ने मेरु पर्वत के उत्तर से प्रार भ किया है अर्थात् उत्तर कुरुक्षेत्र से प्रार भ करके अ त में मेरु पर्वत के वर्णन में पूर्ण किया है।

प्रश्न-१० : उत्तरकुरु क्षेत्र में मुख्य क्या क्या वर्णन है ?

उत्तर- इस क्षेत्र का सीमा विष्क भ आदि परिचय दर्शाकर दोनों किनारे के दो वक्षस्कार पर्वत, बीच में दो यमक पर्वत, पाँच द्रह, १०० क चनक पर्वत, जम्बू सुदर्शन वृक्ष, अ त में माल्यव त वक्षस्कार का वर्णन है। ये वर्णन क्रमशः इस प्रकार है -

यह युगलिक क्षेत्र उत्तर में नीलव त महापर्वत से एव पूर्व,

पश्चिम, दक्षिण तीन दिशाओं में अर्द्ध गोलाकार में रहे हुए दो गजद ता वक्षस्कार पर्वतों से, यों चौतरफ पर्वतों से घिरा हुआ क्षेत्र है। यह पूर्व-पश्चिम ५३००० योजन लम्बा, उत्तर-दक्षिण ११८४२-२/१९ योजन चौड़ा एव अर्द्ध च द्राकार स स्थान वाला है। जिसकी धनुपृष्ट ६०४१८-१२/१९ योजन की है। इसके बीच में नीलव त पर्वत के शिखर तल से कु ड़ में गिर कर दक्षिणी तोरण से निकलने वाली सीता नदी है। जो सीधी मेरू पर्वत के उत्तरी किनारे तक (दो योजन पूर्व) अर्थात् इस क्षेत्र के दक्षिणी किनारे तक गई है। उसके कारण यह क्षेत्र बराबर दो विभागों में विभाजित है- (१) पश्चिमी विभाग (२) पूर्वी विभाग।

ग धमादन वक्षस्कार पर्वत- उत्तर कुरु क्षेत्र के पश्चिमी विभाग के पश्चिमी किनारे ग धमादन गजद ताकार वक्षस्कार पर्वत है। जो नीलव त पर्वत के पास ५०० योजन चौड़ा और ४०० योजन ऊँचा है। मेरु पर्वत के पास अ गुल के अस ख्यातवें भाग चौड़ा और ५०० योजन ऊँचा है। इस प्रकार यह पर्वत मेरु पर्वत तक क्रमशः ऊँचाई में बढ़ता गया है और चौड़ाई में घटता गया है। समभूमि पर इसके दोनों तरफ पद्मवर वेदिका एव वनख ड़ है।

कूट-इस पर्वत पर सात कूट है। यथा- (१) सिद्धायतन कूट (२) ग धमादन कूट (३) ग धिलावती कूट (४) उत्तरकुरु कूट (५) स्फटिक कूट (६) रोहिताक्ष कूट (७) आन द कूट। पहला सिद्धायतन कूट मेरु के निकट है, सातवाँ आन द कूट नीलव त पर्वत के पास है। यों क्रमशः पाँचवें, छट्ठे स्फटिक रोहिताक्ष कूट पर भोगकरा और भोगवती दो देवियाँ रहती है शेष ४ पर सदृश नाम वाले अधिष्ठाता देव उत्तम प्रासादों में रहते हैं। शेष कूट का वर्णन चुल्लहिमव त पर्वत के कूटों की ऊँचाई आदि वर्णन के समान है।

नीलव त पर्वत से चार कूट दक्षिण दिशा में है और उसके बाद के तीन कूट गोलाई वाले भाग में नीलव त से दक्षिण पूर्व में और मेरु से उत्तर पश्चिम में है। इन पर निवास करने वाले देव देवियों की राजधानियाँ विदिशा में अन्य जम्बूद्वीप में है।

सुग धी पदार्थ से जैसे मनोज्ञ सुग ध निकलती एव विखरती रहती है, उसी तरह इस पर्वत से सदा ईष्ट सुग ध फैलती रहती है, ग धमादन

नामक परम ऋद्धि सम्पन्न देव इस पर निवास करता है, इसलिये इस पर्वत का अनादि शाश्वत नाम **ग धमादन वक्षस्कार** सीमा करने वाला पर्वत है। उत्तरकुरु क्षेत्र में ३ पल्योपम की उम्र वाले, ३ कोस की अवगाहना वाले युगलिक मनुष्य रहते हैं। इस क्षेत्र का एव मनुष्यों का सम्पूर्ण वर्णन अवसर्पिणी के प्रथम आरे के प्रारम्भ काल के समान है।

यमक पर्वत– नीलव त वर्षधर पर्वत से ८३४-४/७ योजन दक्षिण में सीता नदी के दोनों बाजू हजार योजन ऊँचे, हजार योजन मूल में चौड़े, ७५० योजन बीच में और ५०० योजन ऊपर चौड़े दो पर्वत है दोनों का नाम यमक पर्वत है। ये गोपुच्छ स स्थान स स्थित है। स्वर्णमय है। दोनों पर ६२॥ योजन ऊँचे ३१। योजन लम्बे चौड़े एक-एक प्रासादावत सक है। जिसमें यमक नामक देव अपने परिवार सहित रहता है। उत्तर दिशा में इनकी यमिका राजधानी अन्य जम्बूद्वीप में है।

पाँच द्रह एव १०० क चनक पर्वत– इन दोनों पर्वतों से ८३४-४/७ योजन दूर दक्षिण में सीता नदी के मध्य नीलव त द्रह है। पूर्व पश्चिम ५०० योजन चौड़ा उत्तर दक्षिण १००० योजन लम्बा है। लम्बाई के १००० योजन के पास १०-१० योजन के अ तर १०-१० क चनक पर्वत है अर्थात् द्रह के पूर्वी किनारे १० और पश्चिमी किनारे १० यों कुल २० क चनक पर्वत एक द्रह के दोनों तटों पर है। ये पर्वत १०० योजन ऊँचे और मूल में सौ योजन एव शिखर पर ५० योजन विष्क भ वाले है। गोपुच्छ स स्थान में है। इन दस दस पर्वतों ने १० योजन का अ तर और १०० योजन अवगाहन मिलाकर कुल १०९० योजन क्षेत्र अवगाहन किया है जिसमें पहला और अ तिम क चनक पर्वत नीलव त पद्मद्रह की लम्बाई की सीमा से ४५-४५ योजन बाहर निकले हुए होने से १०९० योजन क्षेत्र होता है। (१) नीलव त द्रह के समान ही (२) उत्तरकुरु द्रह (३) चन्द्र द्रह (४) ऐरवत द्रह (५) माल्यव त द्रह का वर्णन समझना एव दोनों तरफ मिलाकर २०-२० क चनक पर्वत का वर्णन भी जानना। इस तरह कुल ५ द्रह और १०० क चनक पर्वत है। इन सभी के स्वामी देव पल्योपम की स्थिति वाले हैं।

जम्बू सुदर्शन नामक शाश्वत वृक्ष– उत्तरकुरु क्षेत्र में सीता महानदी के पूर्वी किनारे जम्बूपीठ है जो बीच में १० योजन जाड़ा है, किनारों

पर दो कोश जाड़ा है। ५०० योजन लम्बा चौड़ा गोलाकार है। पद्मवर वेदिका एव वनख ड़ से घिरा हुआ है। सर्व जम्बूनद जातीय स्वर्णमय है। चारों दिशा में सोपान-सीढ़ियाँ है।

इस जम्बूपीठ के बीच में ८ योजन लम्बा चौड़ा ४ योजन जाड़ा चबूतरा है। उस चबूतरे पर जम्बू सुदर्शन नामक वृक्ष है। जो आठ योजन ऊँचा आधा योजन ऊँड़ा है। स्क ध दो योजन ऊँचा आधा योजन जाड़ा है। मुख्य शाखा ६ योजन लम्बी है। यह वृक्ष मध्य भाग में ८ योजन के विस्तार वाला है एव ऊँचाई में सर्वाग्र ८-१/२ योजन का है। इस वृक्ष के विभाग विविध प्रकार के रत्नों एव सोने चा दी के हैं।

इसकी चार शाखाएँ हैं उनके मूल स्थान में मध्य में सिद्धायतन है। देशोन एक कोश ऊँचा एक कोश लम्बा आधा कोस चौड़ा है। अनेक स्त भो पर स्थित है। ५०० धनुष प्रमाण ऊँचे द्वार है। चारों दिशा में शाखाओं पर भवन प्रासाद है। पूर्व दिशा में भवन एक कोस चौड़ा और एक कोस ऊँचा है। इसमें केवल देव शय्या है। शेष तीन दिशाओं में प्रासादावत सक है जिसमें सपरिवार सि हासन है।

यह जम्बू वृक्ष १२ पद्मवर वेदिकाओं से घिरा हुआ है। उसके बाहर १०८ जम्बू वृक्षों का एक घेरा है जो मुख्य वृक्ष के आधे प्रमाण वाले हैं। इनके पद्मवर वेदिका भी ६-६ है।

जिस तरह पद्मद्रह में श्री देवी के परिवार के ५०१२० पद्म कहे हैं उस प्रकार यहाँ भी आठों दिशाओं में जम्बू सुदर्शन वृक्ष के स्वामी अनादृत देव के परिवार के ५०१२० जम्बूवृक्ष है।

इनके बाहर १०० योजन चौड़ाई वाले तीन वन ख ड़ घिरे हुए है। जिसमें ५० योजन अ दर(जम्बू वृक्ष से) जाने पर चारों दिशाओं में शय्या युक्त भवन है और चारों विदिशाओं में चार-चार बावड़ियाँ है, जिनके बीच में प्रासादावत सक सि हासन सपरिवार युक्त है।

इन चार दिशा और विदिशाओं में आये भवन और प्रासादा-वत सक के बीच के क्षेत्र में १-१ कूट है यों कुल आठ कूट है। जो आठ योजन ऊँचे दो योजन ऊँड़े, भूमि पर आठ योजन विष्क भ वाले गोपुच्छ स स्थान है। गोपुच्छ स स्थान वाले पर्वत या कूटों के मूल की चौड़ाई से मध्य में ३/४ चौड़ाई होती है और ऊपर १/२ चौड़ाई होती

है। सर्वत्र गोलाकार होते हैं। ये सभी स्वर्णमय है। वेदिका और वनख ड़ से घिरे हुए हैं।

मुख्य देवी के ४ महत्तरिकाएँ होती है और देव के ४ अग्रमहिषियाँ होती है। मुख्य देवी से पूर्व में इनका आवास स्थान पद्म या जम्बू आदि पर होता है अर्थात् उस पर भवन या प्रासादावत सक होता है। जिन देव देवी के केवल भवन होते हैं उनके शय्या सि हासन आदि उसी में होते हैं और जिनके भवन प्रासादावत सक दोनों होते है उनके भवन में देव शय्या–शयनीय होता है और प्रासादावत सक में सि हासन सपरिवार बैठने आदि की व्यवस्था होती है। राजधानियाँ सभी मुखिया देव देवियों की मेरु से जिस दिशा में उनका आवास है, उसी दिशा में अगले जम्बूद्वीप में १२००० योजन जाने पर आती है।

विशेष–राजधानी, वेदिका, वनख ड़, भवन आदि वर्णन जब जहाँ पहली बार आये हैं वहाँ उनका आवश्यक परिचय दे दिया है। फिर बार बार इनका प्रस ग आने पर वह वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिये।

जम्बू सुदर्शन का यह नाम शाश्वत है। अनादृत देव जम्बू द्वीप का अधिपति देव इस पर रहता है। उसकी एक पल्योपम की स्थिति है। इसके १२ पर्याय नाम है।

उत्तर कुरु क्षेत्र में उत्तर कुरु नामक इस क्षेत्र का अधिपति देव यहाँ रहता है। यह उत्तरकुरु क्षेत्र नाम भी शाश्वत है। यह अकर्मभूमि रूप युगलिक क्षेत्र है। अवसर्पिणी के प्रारम्भ जैसा यहाँ का क्षेत्र एव मानव स्वभाव तथा अन्य व्यवहार है।

माल्यवान वक्षस्कार–ग धमादन गजद ताकार वक्षस्कार पर्वत के समान ही इस पर्वत का वर्णन है। ग धमादन उत्तरकुरु क्षेत्र के पश्चिमी किनारे है और यह माल्यवान वक्षस्कार पूर्वी किनारे है। यह दोनों वक्षस्कार बत्तीसवीं और पहेली विजय की सीमा करने वाले भी है अर्थात् लम्बाई में आधी विजय तक अर्थात् वैताढ़्य तक ये सीमा करते हैं। उसके आगे ये मेरू की तरफ मुड़े होने से विजय की सीमा से दूर हो जाते हैं।

माल्यवान पर्वत पर ९ कूट है(ग धमादन पर ७ कूट है) उनके नाम इस प्रकार है– (१) सिद्धायतन (२) माल्यवान (३) उत्तरकुरु (४) कच्छ (५) सागर (६) रजत (७) सीता (८) पूर्णभद्र (९) हरिस्सह। ये

क्रमशः मेरू की तरफ से नीलव त तक है। सिद्धायतन कूट मेरू के पास है इन कूटों का माप पूर्ववत् है। किन्तु नौवाँ हरिस्सह कूट जो नीलव त पर्वत के निकट है, वह १००० योजन ऊँचा है। यमक पर्वत के जैसा इसका सम्पूर्ण परिमाण है। पाँच कूट नीलव त पर्वत से दक्षिण दिशा में है एव शेष ४ मोड़ वाले स्थान में अर्थात् विदिशा में है। इस पर्वत पर बहुत से गुल्म जगह जगह पर है, जो फूल बिखेरते रहते हैं। ऋद्धिवान माल्यव त देव यहाँ रहता है,अतः माल्यव त वक्षस्कार यह इसका शाश्वत नाम है।

इस प्रकार इस उत्तरकुरु क्षेत्र के वर्णन में– दो वक्षस्कार, दो यमक पर्वत, ५ द्रह, २०० क चनक पर्वत, जम्बू–सुदर्शन वृक्ष, उसके १०० योजन वाले प्रथम वनख ड़ में भवन पुष्करणियाँ, ८ कूट, माल्यवान वक्षस्कार एव उस पर १००० योजन वाले हरिस्सह कूट इत्यादि वर्णन किये गये हैं।

प्रश्न–११ : पूर्व महाविदेह क्षेत्र की १ से ८ विजय और उनके विभाजन करने वाले पर्वत एव नदियों का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– माल्यवान पर्वत से अर्थात् उत्तर कुरु क्षेत्र से पूर्व में पहली कच्छ विजय है। इसके उत्तर में नीलव त पर्वत, दक्षिण में सीता नदी, पश्चिम में आधी दूरी तक माल्यव त पर्वत और आधी दूरी तक भद्रशाल वन की वेदिका वन ख ड़ है, पूर्व में चित्रकूट वक्षस्कार पर्वत है। यह विजय पूर्व-पश्चिम २२१३ योजन कुछ कम चौड़ी उत्तर दक्षिण १६५९२–२/१९ योजन लम्बी चौकोन है। बीच में ५० योजन चौड़ा वैताढ़्य पर्वत है, जिससे उत्तरी कच्छ ख ड़ और दक्षिणी कच्छ ख ड़ ८२७१–१/१९ योजन के दो विभाग बनते हैं। नीलव त पर्वत के पास के ग गाकु ड़ और सि धुकु ड़ में से ग गा सिन्धु नदी निकल कर कच्छ विजय के उत्तरी ख ड़ से होती हुई वैताढ़्य पर्वत के नीचे से गुफाओं के किनारे से होती हुई दक्षिण ख ड़ में प्रवेश करती है आगे बढ़ते हुए विदिशा में चलती हुई एक नदी चित्रकूट पर्वत और दूसरी नदी भद्रशालवन के पास विजय के किनारों पर सीता नदी में मिलती है।

इस प्रकार भरत क्षेत्र के समान इस विजय के भी वैताढ़्य और ग गा सिन्धु नदी के द्वारा ६ ख ड़ होते हैं। शेष चक्रवर्ती आदि

के सभी वर्णन भरत क्षेत्र के समान है। विशेषता यह है कि ६ आरों का वर्णन और भरत के केवली होने का वर्णन यहाँ नहीं है। यहाँ सदा चौथे आरे के प्रार भ जैसा भाव वर्तता है। वह वर्णन अवसर्पिणी के चौथे आरे के समान है।

वैताढ्य पर्वत पूर्व-पश्चिम दोनों दिशाओं मे वक्षस्कार पर्वत को स्पर्श किये हुए है (१)माल्यव त को (२) चित्रकूट को ।

भरत के समान यहाँ क्षेमा राजधानी में कच्छ नामक राजा उत्पन्न होता है। कच्छ नामक देव इस विजय का अधिपति देव है, इ सलिये इस विजय का **कच्छ** यह शाश्वत नाम है।

दूसरी से आठवीं विजय का वर्णन भी इसी प्रकार है वे क्रमशः पूर्व दिशा की तरफ है। आठवीं विजय सीता मुख वन के पास है। इन आठों विजयों के सात मध्यस्थान है, जिनमें ३ नदियाँ एव ४ वक्षस्कार पर्वत है। सातों विजयों के नाम और राजधानी के नाम अलग-अलग है। चक्रवर्ती का नाम विजय के नाम के समान है।

क्रमा क	८ विजय	८ राजधानी
१	कच्छ	क्षेमा
२	सुकच्छ	क्षेमपुरा
३	महाकच्छ	अरिष्टा
४	कच्छावती	अरिष्टपुरा
५	आवर्त	खड़्गी
६	म गलावर्त	म जूषा
७	पुष्कलावर्त	औषधि
८	पुष्कलावती	पु ड़रीकिणी

चार वक्षस्कार तीन नदियाँ :- (१) चित्रकूट पर्वत (२) ग्राहावती नदी (३) पद्मकूट पर्वत (४) द्रहावती नदी (५) नलिन कूट पर्वत (६) प कावती नदी (७) एक शैलपर्वत।

चित्रकूट पहली दूसरी विजय के बीच में है। ग्राहावती नदी दूसरी तीसरी विजय के बीच में है । इसी प्रकार यावत् एक शैल पर्वत ७वीं ८वीं विजय के बीच में है।

ये चारों पर्वत उत्तर-दक्षिण विजय प्रमाण लम्बे, पूर्व पश्चिम चौड़े, नीलव त पर्वत के पास ५०० योजन है और सीता नदी के पास ४०० योजन चौड़े हैं। ऊँचाई नीलव त पर्वत के पास ४०० योजन और सीता नदी के पास ५०० योजन है। ये सर्व रत्नमय एव अश्वस्क ध के आकार ऊपरी भाग वाले हैं। दोनों तरफ पद्मवर वेदिका और वनख ड़ से सुशोभित है। इन पर्वतों पर ४-४ कूट है । सीता नदी की तरफ पहला सिद्धायतन कूट है, दूसरा पर्वत के नाम का ही कूट है, उसके बाद दो आसपास की विजयों के नाम वाले कूट है। इस प्रकार सभी के ४-४ कूटों का नाम आगे भी समझ लेना। सदृश नाम वाला इन पर्वतों का मालिक देव इन पर रहता है और पर्वत के ये नाम शाश्वत है।

ये तीनों अ तर नदियाँ नीलव त पर्वत के नित ब से सदृश नाम वाले कु ड़ में से निकलती है एव सीधी दक्षिण में जाते हुए सीता नदी में मिल जाती है। ये १२५ योजन चौड़ी २-१/२ गहरी सर्वत्र समान है । सीता नदी में प्रवेश करने के स्थान पर ये दोनों बाजू की ग गा सिन्धु के साथ ही सीता नदी में मिलती है अर्थात् वहाँ तीनों नदियों का सीता नदी में प्रवेश स्थान स लग्न है। इसलिये इस अपेक्षा से अ तर नदियों का परिवार ग गा नदी से दुगुना कहा गया है वास्तव में यह सर्वत्र समान चौड़ाई से ही सम्पूर्ण विजय के किनारे चलती है । इनमें बीच में कोई नदियें नहीं मिलती है ।

बीच की विजयों के एक किनारे उक्त अ तर नदी है और दूसरे किनारे उक्त वक्षस्कार पर्वत है। अ तिम आठवीं विजय के एक किनारे वक्षस्कार पर्वत है और दूसरे किनारे उत्तरी सीतामुख वन है।

प्रश्न-१२ : दो सीतामुख वन कहाँ किस प्रकार आये है ?

उत्तर- इस वन के बीच में सीता नदी होने से इसके दो विभाग है- (१) उत्तरी सीतामुख वन (२) दक्षिणी सीतामुख वन। ये दोनों वन उत्तर-दक्षिण लम्बे(विजय प्रमाण) है। पूर्व पश्चिम चौड़े २९२२ योजन है। ये सीता नदी के पास इतने चौड़े है और निषध नील वर्षधर पर्वत के पास १/१९ योजन मात्र चौड़े है। इनके पूर्व दिशा में जगती है और पश्चिम में विजय है। एक दिशा में सीता नदी और एक दिशा में वर्षधर पर्वत है। दो तरफ पद्मवर वेदिका और वनख ड़ है। उत्तर दक्षिण में नहीं है।

उक्त आठों विजय के वैताढ़्य पर्वत पर जो १६ आभियोगिक श्रेणियाँ है, उन पर उत्तरी लोकाधिपति ईशानेन्द्र के आभियोगिक देव है। क्यों कि ये आठ विजय जम्बूद्वीप के उत्तरी-दक्षिणी दो विभाग में से उत्तरी विभाग में समाविष्ट है। उत्तरी सीतामुख वन नीलव त पर्वत के पास १/१९ योजन चौड़ा है और दक्षिणी सीतामुख वन निषध पर्वत के पास १/१९ योजन चौड़ा है। सीता नदी के पास दोनों २९२२ योजन चौड़े हैं। अतः इनका शाश्वत नाम दक्षिणी उत्तरी सीता मुख वन है ।

प्रश्न-१३ : नौवीं से १६वीं विजय तक का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- ये आठ विजय निषध पर्वत के उत्तर में सीता नदी के दक्षिण में है। इनके बीच में तीन नदियें ४ वक्षस्कार पर्वत है। जिनका वर्णन ऊपरोक्त आठ विजयों के वर्णन के समान है। पूर्वोक्त आठ विजय सीता नदी के उत्तर में एव जम्बूद्वीप के उत्तरार्द्ध भाग में है और ये आठ विजय ४ पर्वत एव ३ नदियें सीता नदी के दक्षिण में एव दक्षिणी जम्बू विभाग में हैं। अतः इन विजयों के वैताढ़्य पर्वत की आभियोगिकश्रेणी के देव दक्षिण लोक के अधिपति शक्रेन्द्र के आज्ञाधीन है। इस विभाग की विजय, राजधानी, पर्वत एव नदी के नामों मे भिन्नता है।

क्रम	विजय नाम	राजधानी नाम	अ तरनदी एव पर्वत
९	वत्स	सुसीमा	त्रिकूट
१०	सुवत्स	कु ड़ला	तप्तजला
११	महावत्स	अपराजिता	वैश्रमण कूट
१२	वत्सकावती	प्रभ करा	मत्तजला
१३	रम्य	अ कावती	अ जनकूट
१४	रम्यक	पद्मावती	उन्मत्तजला
१५	रमणीय	शुभा	मात जनकूट
१६	म गलावती	रत्नस चया	सौमनस गजद ता वक्षस्कार

नोट-अ तर नदी और पर्वत जो जिस विजय के सामने सूचित किये गये हैं वे उस विजय के बाद पश्चिम में है। यह उक्त सारा क्रम पूर्व से पश्चिम है, सीतामुख वन के पास से लेकर सौमनस(गजद ता) वक्षस्कार तक है। सीतामुख वन के पास नौवीं विजय है फिर क्रम से १० वीं आदि है। १६ वीं गजदन्ता सौमनस के पास पूर्व में स्थित है।

प्रश्न-१४ : देवकुरु क्षेत्र और उसमें रहे द्रह, पर्वत, वृक्ष आदि का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- उत्तरकुरु के सदृश एव उसके सीधो-सीध सामने दक्षिण में देवकुरु क्षेत्र है। १६वीं विजय के पास सोमनस वक्षस्कार पर्वत है। जिसका वर्णन ग धमादन वक्षस्कार के समान है। सात कूट इस प्रकार है- (१) सिद्धायतन (२) सोमनस (३) म गलावती (४) देवकुरु (५) विमल (६) क चन (७) वशिष्ट । विमल और क चन कूट पर सुवत्सा और वत्समित्रा देवी का निवास है। शेष ४ पर सदृश नाम के देवों का निवास है। शेष वर्णन गन्धमादन वक्षस्कार के समान है।

चित्रविचित्र कूट पर्वत- निषध पर्वत से ८३४-४/७ योजन दूर, उत्तर में सीतोदा नदी के पास, दोनों तरफ दोनों यमक पर्वतों के समान चित्र विचित्र कूट नामक पर्वत है। इनसे ८३४-४/७ योजन दूर उत्तर में सीतोदा नदी के बीच में पहला निषध द्रह, उसके बाद उतनी दूरी पर क्रमशः देवकुरु, सुर, सुलस, विद्युतप्रभ ये चार द्रह है एव १०० क चनक पर्वत है। इनका वर्णन उत्तरकुरु के समान है।

कूटशाल्मली पीठ- सीतोदा महानदी के द्वारा उत्तरकुरु क्षेत्र दो विभागों में विभाजित है- पूर्वी देवकुरु और पश्चिमी देवकुरु। पश्चिमी देवकुरु क्षेत्र के बीचोबीच कूट शाल्मली पीठ है, उस पर चबूतरा है और उस चबूतरे पर कूट शाल्मली वृक्ष है। सम्पूर्ण वर्णन जम्बू सुदर्शन वृक्ष के समान है। इसका अधिपति गरूड़ देव है। युगलिक क्षेत्र सम्बन्धी एव अन्य अवशेष वर्णन उत्तरकुरु के समान है।

विद्युत्प्रभ वक्षस्कार पर्वत- यह गजद ताकार वक्षस्कार पर्वत १७वीं विजय के पूर्व में एव देवकुरु क्षेत्र के पश्चिमी किनारे पर है। इसका स पूर्ण वर्णन माल्यव त वक्षस्कार पर्वत के समान है। इस पर ९ कूट है यथा- (१) सिद्धायतन (२) विद्युत्प्रभ (३) देवकुरु (४) पद्म (५) कनक (६) स्वस्तिक (७) सीतोदा (८) शत ज्वल (९) हरि कूट। नव में हरिकूट का वर्णन हरिस्सह कूट के समान है, जो कि १००० योजन ऊँचा है। शेष वर्णन पूर्ववत् है। आठ कूटों का वर्णन अन्य कूटों से सदृश है। यह देवकुरु युगलिक क्षेत्र का वर्णन अधिका शतः उत्तरकुरु क्षेत्र के समान पूर्ण हुआ।

प्रश्न-१५ : सीतोदा मुखवन और पश्चिम महाविदेह की १६ विजय (१७ से ३२)का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- विद्युत्प्रभ वक्षस्कार के पास पश्चिम में, निषध पर्वत से उत्तर में, सीतोदा नदी के दक्षिण में १७वीं पक्ष्म विजय है। उसके बाद क्रमशः १८ से २४ तक विजय है। उनके बीच में ३ नदियाँ और चार पर्वत पूर्व वर्णन के समान है। इनके नाम इस प्रकार है-

विजय-१७ पक्ष्म, १८ सुपक्ष्म, १९ महापक्ष्म, २० पक्ष्मकावती, २१ श ख, २२ कुमुद, २३ नलिन, २४ नलिनावती(सलिलावती)

इनकी राजधानियाँ- (१) अश्वपुरी (२) सि हपुरी (३) महापुरी (४) विजयपुरी (५) अपराजिता (६) अरजा (७) अशोका (८) वीतशोका।

वक्षस्कार पर्वत-अ कावती, पक्ष्मावती, आशीविष, सुखावह।

नदियाँ- क्षीरोदा, शीतस्त्रोता, अ तरवाहिनी।

सीतोदा मुखवन- सीतोदा नदी का जहाँ लवण समुद्र में प्रवेश स्थान है उसके दोनों तरफ २४वीं २५ वीं विजय की लम्बाई के बराबरी में उत्तरी और दक्षिणी सीतोदा मुख वन है। इनका वर्णन सीता मुख वन के समान है। अन्यत्र आये वर्णनों के अनुसार ये दोनों वन और २४वीं २५वीं विजय नीचालोक में है अर्थात् १००० योजन नीचे है ।

विजय-२५ से ३२ तक- उत्तरी सीतोदा मुख वन के पास पूर्व में २५ वीं विजय है। उस विजय के उत्तर में नीलव त पर्वत है। फिर क्रमशः २६ से ३२ वीं विजय भी पूर्व-पूर्व में है। इनके बीच में चार पर्वत और ३ नदियाँ पूर्ववत् है। उनके नाम इस प्रकार है-

विजय-२५ वप्रा, २६ सुवप्रा, २७ महावप्रा, २८ वप्रावती, २९ वल्गू, ३० सुवल्गू, ३१ ग धिल, ३२ गन्धिलावती।

राजधानी- (१) विजय (२) वेजय ती (३) जय ति (४) अपराजिता (५) चक्रपुरी (६) खड्गपुरी (७) अवध्या (८) अयोध्या।

पर्वत- चन्द्र, सूर्य, नाग, देव पर्वत।

नदियाँ- उर्मिमालिनी, फेणमालिनी, ग भीरमालिनी।

प्रश्न-१६ : मेरु पर्वत का ४ वन सहित वर्णन किस प्रकार है?

उत्तर- इस पर्वत का नाम **म दर** है। मेरु का अर्थ है केन्द्रस्थान, मध्य

स्थान। यह पर्वत जम्बूद्वीप के सभी दिशाओं से मध्य में है, ढ़ाई द्वीप के मध्य में है, तिर्छा लोक के मध्य में है और इस महाविदेह क्षेत्र के भी लम्बाई और चौड़ाई दोनों ही अपेक्षा से मध्य में है। अर्थात् इस पर्वत से उत्तर में और दक्षिण में महाविदेह क्षेत्र ११८४२-२/१९ योजन है, पूर्व में और पश्चिम में ४५००० योजन है । बीच में यह पर्वत १०,००० योजन का भूमि पर लम्बा चौड़ा गोलाकार है, तीन गुणी साधिक परिधि है। ९९ हजार योजन भूमि से ऊँचा है। १००० योजन भूमि में गहरा है। शिखरतल पर १००० योजन लम्बा चौड़ा गोलाकार समतल है। बीच में क्रमशः विष्क भ कम होता गया है जो १०००० से घटते घटते शिखर तक १००० योजन होता है। समभूमि पर यह पर्वत वनख ड़ और पद्मवर वेदिका से घिरा हुआ है। इस पर्वत पर चार श्रेष्ठ वन है- भद्रशाल वन, न दन वन, सौमनस वन, प ड़क वन।

भद्रशाल वन- यह वन समभूमि पर मेरु के चौतरफ घिरा हुआ है। उत्तर दक्षिण में मेरू से २५०-२५० योजन प्रमाण है। मेरु से पूर्व में २२००० योजन प्रमाण है। इतना ही पश्चिम में है। इस भद्रशाल वन में चारों वक्षस्कार(गजद ता)पर्वत भी मेरु को स्पर्श कर रहे हैं। सीता सीतोदा दोनों नदियाँ भी मेरु के दो योजन पास से निकल रही है। इस प्रकार चार पर्वतों से चार विभाग होते हैं और इन चारों विभागों में एक एक नदी दो दो विभागों में जाने से चारों विभागों के दो दो ख ड़ करती है। अतः इन चार पर्वत एव दो नदी से इस भद्रशाल वन के ८ विभाग हो गये है। इन आठों विभागों के एक दिशा में नदी और एक दिशा में वक्षस्कार पर्वत है और एक दिशा में मेरु पर्वत है। चौथी दिशा विस्तृत है जिसमें आगे जाकर विजयें हैं अथवा निषध-नील पर्वत है।

इस वन में मेरु से आठ दिशाओं में (४ दिशा ४ विदिशा में) सिद्धायतन एव पुष्करणियाँ है। वे इस प्रकार है-पूर्वादि चार दिशाओं में ५० योजन दूर एक-एक सिद्धायतन है। और विदिशाओं में ५०-५०योजन दूर चार चार पुष्करणियाँ है उन चारों के बीच में एक-एक प्रासादावत सक(महल) है। चार प्रासादों में से दो शक्रेन्द्र के और दो ईशानेन्द्र के हैं। महाविदेह की मध्यरेखा से उत्तर वाले दोनों ईशानेन्द्र के है और दक्षिण वाले दोनों शक्रेन्द्र के हैं।

इस वन में रहे आठों विभागों में विदिशा में एक-एक हस्तिकूट है। जो कि अपने अपने ख ड़ के मध्य में होना स भव है। इनके नाम इस प्रकार है- (१) पद्मोतर (२) नीलव त (३) सुहस्ती (४) अ जनगिरि (५) कुमुद (६) पलास (७) अवत स (८) रोचनगिरि। चुल्लहिमव त पर्वत के कूटों जैसी इनकी ऊँचाई आदि है। यह वन चारों दिशा में किनारे पर पद्मवर वेदिका एव वन ख ड़ में घिरा हुआ है। उत्तर दक्षिण का भद्रशाल वन देवकुरु, उत्तरकुरु क्षेत्र में अवस्थित है पूर्व पश्चिम में पहली एव १६वीं विजय तक एव १७वीं तथा ३२वीं विजय तक विस्तृत है।

न दन वन- समभूमि से ५०० योजन ऊपर न दन वन है। जो ५०० योजन चौड़ा वलयाकार मेरु के चौतरफ है। यहाँ पर आभ्य तर पर्वत का ८९५४-६/११योजन विष्क भ है और न दनवन के बाहर की अपेक्षा पर्वत का विष्क भ ९९५४-६/११ योजन है। इस वन के चौतरफ पद्मवर वेदिका और वन ख ड़ है। भद्रशाल वन के समान इसमें भी चार दिशाओं में सिद्धायतन, विदिशाओं में वावड़ियाँ, प्रासाद तथा ८ कूट है। कूटों के नाम-न दनवन, म दर, निषध, हिमवत, रजत, रुचक, सागर, वज्रकूट। इनके अतिरिक्त एक बल नामक नवमा कूट उत्तर पूर्व में विशेष है जो एक हजार योजन ऊँचा है अर्थात् हरि, हरिस्सह कूट के सदृश परिमाण वाला है। आठ कूटों के स्वामी देवियाँ है। नवमें **बल** कूट का स्वामी बल नामक देव है। स्वामी देव देवी के नाम भी कूट के सदृश नहीं है, प्रायः भिन्न नाम है। जब कि भद्रशाल वन के हस्ति कूटों के नाम और स्वामी देवों के नाम पूर्ण सदृश है और सभी देव है, देवी नहीं है।

सौमनस वन-न दन वन की सम भूमि से ६२५०० योजन ऊपर ५०० योजन का विस्तार वाला वलयाकार यह वन है। पद्मवर वेदिका एव वनख ड़ से घिरा हुआ है। यहाँ पर कूट नहीं है शेष प्रासाद आदि न दनवन के समान है। इस वन में मेरु पर्वत का आभ्य तर विष्क भ ३२७२-८/११ योजन एव बाह्य विष्क भ ४२७२-८/११ योजन है।

प ड़ग वन- सौमनस वन की समभूमि से ३६००० योजन ऊपर म दर मेरु का शिखरतल है। वहाँ ४९४ योजन के विस्तार वाला वलयाकार

यह वन है। इसके मध्य में म दरचूलिका नामक मेरु की चूलिका है। वह ४० योजन ऊँची मूल में १२ मध्य में ८ एव ऊपर ४ योजन विस्तार वाली है। गोपुच्छ स स्थान स स्थित है। वैडूर्यमय है। पद्मवर वेदिका और वनख ड़ से घिरी हुई है। चूलिका के ऊपर सिद्धायतन है। इस वन में भवनों पुष्करणियों प्रासादों का वर्णन भद्रसाल वन के समान है।

अभिषेक शिलाएँ– प ड़ग वन में चारों दिशाओं में किनारों पर चार अभिषेक शिलाएँ है यथा– पा डुशिला, पा डुकम्बल शिला, रक्तशिला, रक्तकम्बल शिला।

पहली पा डुशिला पूर्व में है। ५०० योजन उत्तर दक्षिण में लम्बी २५० योजन पूर्व पश्चिम में चौड़ी अर्द्ध च द्राकार है। वह ४ योजन मोटी जाड़ी है। स्वर्णमय है। पद्मवर वेदिका और वनखण्ड़ से घिरी हुई है। उसके चारों दिशाओं में सीढ़ियाँ है। उसके रमणीय समभूमि के बीच में उत्तर तथा दक्षिण में दो सि हासन है। उत्तरी सि हासन पर १ से ८ तक की विजय के तीर्थंकरों का जन्म महोत्सव जन्माभिषेक होता है जो देव देवी एव ६४ इन्द्र मिलकर करते हैं। दक्षिणी सि हासन पर ९ से १६ तक की विजयों के तीर्थंकरों का अभिषेक किया जाता है।

तीसरी रक्तशिला प ड़ग वन के पश्चिमी किनारे पर है। शेष वर्णन प्रथम शिला के समान है यहाँ १७ से २४ एव २५ से ३२ विजयों के तीर्थंकरों का जन्माभिषेक किया जाता है।

दूसरी, चौथी अभिषेक शिलाएँ क्रमशः दक्षिणी उत्तरी किनारे पर हैं इनमें सि हासन एक एक ही है दो नहीं है। दूसरी पा डु कम्बल शिला के सि हासन पर भरतक्षेत्र के तीर्थंकर का जन्माभिषेक किया जाता है एव चौथी रक्त क बल शिला के सि हासन पर ऐरवत के तीर्थंकर का जन्माभिषेक किया जाता है।

क्रमा क	शिलानाम	दिशा	सि हासन	तीर्थंकर विजय
१	पा डुशिला	पूर्व में	२	१ से ८ और ९ से १६
२	पा डुक बलशिला	दक्षिण में	१	भरतक्षेत्र
३	रक्त शिला	पश्चिम में	२	१७ से २४ और २५ से ३२
४	रक्तक बलशिला	उत्तर में	१	ऐरवत क्षेत्र

दो शिलाएँ सफेद स्वर्णमय हैं और दो लाल स्वर्णमय है।

सि हासन ५०० धनुष लम्बे चौड़े एव २५० धनुष ऊँचे है। वे देवदूष्य वस्त्र रहित है।

मेरुपर्वत के का ड़–बनावट विशेष के विभागों अर्थात् पुद्गल विशेष के विभागों को का ड़ कहा जाता है। म दर मेरु पर्वत के तीन विभाग है–नीचे का, मध्य का, ऊपर का।

नीचे का विभाग चार प्रकार का है– (१) पृथ्वीमय–मिट्टीमय (२) पाषाण मय (३) वज्रमय–हीरकमय (४) शर्करा–क करमय।

मध्यम विभाग चार प्रकार का है– (१) अ करत्नमय (२) स्फटिकमय (३) स्वर्णमय (४) रजत(चा दी)मय।

ऊपरी विभाग एक प्रकार का सर्वजम्बूनद स्वर्णमय है।

नीचे का का ड़ १००० योजन का है, मध्यम का ड़ ६३००० योजन का है और ऊपरी का ड़ ३६००० योजन का है यों कुल एक लाख योजन का म दर मेरु पर्वत का सर्वाग्र है।

म दर मेरूपर्वत के नाम– मेरु पर्वत के १६ नाम कहे गये है– (१) म दर (२) मेरु (३) मणोरम (४) सुदर्शन (५) सय प्रभ (६) गिरिराज (७) रत्नोच्चय (८) शिलोच्चय (९) लोकमध्य (१०) लोकनाभि (११) अच्छ (१२) सूर्यावर्त (१३) सूर्यावरण (१४) उत्तम (१५) दिशादि (दिशाओं का आदि स्थल) (१६) अवत सक।

मन्दर नामक स्वामी देव इस पर्वत पर निवास करता है इसलिये म दर मेरु पर्वत यह इसका अनादि शाश्वत नाम है।

(स्वामी देव के रहने का स्थान नहीं बताया गया है देखे परिशिष्ट)

प्रश्न–१७ : महाविदेह क्षेत्र से उत्तर दिशा में आये पर्वत एव क्षेत्रों का वर्णन किस प्रकार है?

उत्तर– नीलव त पर्वत दक्षिण में महाविदेह क्षेत्र की एव उत्तर में रम्यक वास युगलिक क्षेत्र की सीमा करने वाला हैं। मेरु पर्वत से उत्तर दिशा में है। शेष सम्पूर्ण वर्णन निषध पर्वत के समान है। नामों में अ तर है यथा– केशरीद्रह, सीता नदी, नारिक ता नदी। कूटों के नाम–(१) सिद्ध (२) शिल (३) पूर्व विदेह (४) सीता (५) कीर्ति (६) नारी (७) अपरविदेह (८) रम्यक कूट (९) उपदर्शन कूट।

सीता नदी का सम्पूर्ण वर्णन सीतोदा नदी के समान है किन्तु यह केशरी द्रह में से निकल कर दक्षिण में जाती है। सीता कु ड़ से निकल कर दक्षिणाभिमुख जाकर मेरु के पास पूर्वाभिमुख होकर पूर्वी महाविदेह क्षेत्र के बीच में से जाती है एव दोनों तरफ स्थित १ से ८ एव ९ से १६ विजयों की हजारों नदियों को अपने में मिलाती हुई जम्बूद्वीप की जगती के पूर्वी विजय द्वार के नीचे से होकर लवण समुद्र में मिलती है।

नारीक ता नदी का वर्णन हरिक ता नदी के समान है। विशेष यह है नारीक ता उत्तराभिमुख होकर रम्यग्वास क्षेत्र में जाती है। ग धापाती वृत वैताढ्य के पास से पश्चिम में मुड़ जाती है, रम्यकवास क्षेत्र के बीचोबीच होकर आगे जगती के नीचे से पश्चिमी लवण समुद्र में मिल जाती है।

यह पर्वत नीले र ग का नीली प्रभा वाला है, नीलव त नामक महर्द्धिक स्वामी देव इस पर निवास करता है, यह वेडूर्यमय है, इसका अनादि शाश्वत नाम नीलव त है।

रम्यक वर्ष क्षेत्र– यह मेरु से उत्तर में है। दक्षिण उत्तर में नीलव त और रुक्मी पर्वत से घिरा हुआ है। शेष वर्णन हरिवर्ष क्षेत्र के समान है। नामों में अ तर है, यथा– गन्धापाती वृत वैताढ्य, नारीक ता, नरक ता नदी। रम्यक नामक इस क्षेत्र का मालिक देव है। एव रम्यक यह इस क्षेत्र का शाश्वत अनादि नाम है।

रुक्मी(रुप्पी) वर्षधर पर्वत–यह पर्वत उत्तर में हेरण्यवय क्षेत्र की एव दक्षिण में रम्यक वर्ष क्षेत्र की सीमा करने वाला है। इसका सम्पूर्ण वर्णन महाहिमवान पर्वत के समान है। इस पर्वत के शिखरतल पर महापु ड़रीक नामक द्रह है, उसमें से दक्षिण मे हरिक ता एव उत्तर में रुप्यकूला नदी निकलती है। इस पर्वत पर ८ कूट हैं–(१) सिद्ध (२) रुक्मी (३) रम्यग (४) नरक ता (५) बुद्धि (६) रुप्यकूला (७) हेरण्यवय (८) मणिक चन।

सर्वथा रजतमय यह **रुप्य** पर्वत है। इसे रुक्मी पर्वत कहने का प्रचलन है। रुप्य नामक अधिपति देव यहाँ निवास करता है। इसलिये इस पर्वत का रुप्य यह शाश्वत नाम है।

हेरण्यवय युगलिक क्षेत्र– यह मेरु से उत्तर दिशा में रुक्मी और शिखरी पर्वत के बीच में है। हेमव त युगलिक क्षेत्र के समान इसका सम्पूर्ण वर्णन है। इसमें माल्यव त पर्याय नामक वृत वैताढ्य है। सुवर्णकूला और रूप्यकूला नामक दो नदियाँ इस क्षेत्र को विभाजित करती है। इसके दोनों तरफ स्थित पर्वत सर्वत्र चा दी बिखेरते रहते है, देते रहते है। हेरण्यवय नामक स्वामी देव यहाँ निवास करता है।अतः इसका शाश्वत नाम हेरण्यवय क्षेत्र है।

शिखरी पर्वत–चुल्ल हिमव त पर्वत के समान वर्णन वाला यह पर्वत मेरु से उत्तर में ऐरवत और हेरण्यवय क्षेत्र की सीमा करने वाला है। इस पर पु ड़रीक नामक द्रह है। उसमें से सुवर्णकूला नदी दक्षिणी द्वार से निकल कर हैरण्यवत क्षेत्र में पूर्वी समुद्र में मिलती है। दो नदियाँ पूर्वी पश्चिमी तोरण से निकली है, जिनका वर्णन ग गा-सिन्धु नदी के समान है। इन दोनों नदियों के नाम रक्ता और रक्तवती है। इस पर्वत पर ११ कूट हैं–(१) सिद्धायतन (२) शिखरी (३) हेरण्यवय (४) सुवर्णकूला (५) सुरादेवी (६) रक्ता (७) लक्ष्मी (८) रक्तवती (९) इलादेवी (१०) ऐरवत (११) तिगिच्छ कूट।

यहाँ शिखरी नामक देव निवास करता है अतः **शिखरी** यह इसका शाश्वत अनादि नाम है। शिखर के आकार में यहाँ कई कूट है।

ऐरवत क्षेत्र– शिखरी पर्वत से उत्तर में एव मेरु से उत्तर दिशा में यह कर्मभूमि क्षेत्र है। इसका सम्पूर्ण वर्णन भरतक्षेत्र के समान है। क्षेत्र, स्वरूप, काल, आरा–परिवर्तन स्वरूप, तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि का वर्णन ६ ख ड़ साधन, मनुष्यों का वर्णन आदि। ग गा–सिन्धु के स्थान पर यहाँ रक्ता–रक्तवती नदियाँ है। दो नदी और वैताढ्य पर्वत से इस क्षेत्र के भी ६ ख ड़ है। ऐरवत नामक प्रथम चक्रवर्ती यहाँ उत्पन्न होता है। ऐरवत देव यहाँ इस क्षेत्र में आधिपत्य करते हुए निवास करता है। इसलिये **ऐरवत** यह इसका नाम अनादि शाश्वत है। इस प्रकार ऐरवत के वर्णन के साथ यह जम्बूद्वीप का क्षेत्रीय वर्णन वाला चौथा वक्षस्कार पूर्ण हुआ।

प्रश्न–१८ : इस वक्षस्कार में आये जीवा, बाहा, धनुःपृष्ट आदि शब्दों के तात्पर्यार्थ क्या है ?

उत्तर- धनुष्य की ड़ोरी को जीवा कहा जाता है और गोलाई को धनुष कहा जाता है। उसी प्रकार गोलाकार या अर्द्ध चन्द्राकार क्षेत्र की सीधी रेखा को यहाँ **जीवा** कहा गया है एव गोलाई के विभाग को **धनुःपृष्ट** (धनुष पीठिका) कहा गया है।

जिस प्रकार बनियान कुर्ता आदि में बाहा का मूल स्थान गोलाई वाला होता है उसी प्रकार वृत्ताकार जम्बूद्वीप के बीच जो आयत आकार के क्षेत्र या पर्वत है उनके गोलाई वाले किनारे के भाग को यहाँ **बाहा** कहा गया है। लम्बाई को **आयाम** और चौड़ाई को **विष्क भ** कहा गया है। गोलाकार पर्वत एव कूट तथा क्षेत्र आदि की ल बाई चौड़ाई समान होती है, उसे **आयाम विष्क भ** एक शब्द से कहा गया है।

जो पर्वत लम्बे और उँचे होते है उन्हें रुचक स स्थान कहा है। जो क्षेत्र लम्बे अधिक है चौड़े कम है, ऊँचे नहीं है किन्तु समभूमि भाग वाले होते है उन्हे पर्यंक के आकार का कहा गया है। जो गोल पर्वत समभूमि पर अधिक आयाम विष्क भ वाले हैं और ऊपर क्रमशः कम आयाम विष्क भ वाले हैं उन्हे गोपुच्छ स स्थान(गोपुच्छ के अग्र भाग के समान) वाला कहा गया है। जो गोल पर्वत आयाम विष्क भ और ऊँचाई में सर्वत्र समान होते हैं उन्हे पल्य(पल्लग) के स स्थान कहा गया है। पल्योपम की उपमा में ऐसा ही लम्बाई चौड़ाई ऊँचाई में समान पल्य लिया गया है।

समान आयाम विष्क भ वाले गोल पर्वत आदि स्थलों की परिधि उसके आयाम विष्कंभ से तीनगुणी साधिक होती है अर्थात् विष्क भ का वर्ग करके १० गुणन कर फिर उसका वर्गमूल निकालने पर यह तीनगुणी साधिक स ख्या प्राप्त होती है। अथवा आयाम विष्क भ को १० के वर्गमूल से गुणा करने पर तीनगुणी साधिक परिधि निकल जाती है। यह विधि ज्योतिषगण राज प्रज्ञप्ति(सूर्यप्रज्ञप्ति) सूत्र के परिशिष्ट में दी गई है वहाँ देखें। प्रत्येक पर्वत की समभूमि से जितनी ऊँचाई होती है उसका चौथाई भाग परिमाण वह भूमि में होता है (मेरु छोड कर)उसे उद्वेध (उव्वेह)कहा गया है।

प्रश्न-१९ : ज बूद्वीप के इस विशाल क्षेत्रीय वर्णन को स क्षिप्त में कैसे समझें ?

उत्तर- ज बूद्वीप के प्रमुख क्षेत्र तथा पर्वत :-

क्रम	नाम	विष्क भ यो॰/कला	ऊ चा॰	बाहा यो॰/कला	जीवा यो॰/कला	धनुःपृष्ट यो॰/कला
१	भरत क्षेत्र	५२६/६	–	×	१४४७१/६	१४५२८/११
२	चुलहिमव त	१०५२/१२	१००	५३५०/१५$\frac{१}{२}$	२४९३२/$\frac{१}{२}$	२५२३०/४
३	हेमवयक्षेत्र	२१०५/५	–	६७५५/३	३७६७४/१६	३८७४०/१०
४	महाहिमवंत	४२१०/१०	२००	९२७६/९$\frac{१}{२}$	५३९३१/६	५७२९३/१०
५	हरिविर्षक्षेत्र	८४२१/१	–	१३३६१/६$\frac{१}{२}$	७३९७१/१७	८४०१६/४
६	निषधपर्वत	१६८४२/२	४००	२०१६५/२$\frac{१}{२}$	९४१५६/२	१२४३४६/९
७	महाविदेहक्षेत्र	३३६८४/४	–	३३७६७/७	१,००,०००	१५८११३/१६
८	नीलवंतपर्वत	१६८४२/२	४००	२०१६५/२$\frac{१}{२}$	९४१५६/२	१२४३४६/९
९	रम्यकवर्ष क्षेत्र	८४२१/१	–	१३३६१/६$\frac{१}{२}$	७३९७१/१७	८४०१६/४
१०	रुक्मि पर्वत	४२१०/१०	२००	९२७६/९$\frac{१}{२}$	५३९३१/६	५७२९३/१०
११	हैरण्यवत क्षेत्र	२१०५/५	–	६७५५/१५$\frac{१}{२}$	३७६७४/१६	३८७४०/१०
१२	शिखरी पर्वत	१०५२/१२	१००	५३५०/१५$\frac{१}{२}$	२४९३२/$\frac{१}{२}$	२५२३०/४
१३	ऐरवत क्षेत्र	५२६/६	–	×	१४४७१/६	१४५२८/११
	कुल योग	१ लाख यो॰		**१४३५८५/३**	**×××**	**×××**

नोट :- चार्ट में यो॰=योजन. ऊ चा.=ऊँचाई, कला=$\frac{१}{१९}$ यो. , प॰=पर्वत।

विशेष :- बाहा की जोड को दुगुणा करके भरत ऐरवत की धनुष पीठिका जोडने से संपूर्ण जंबूद्वीप की परिधि निकलती है, यथा-

$$१४३५८५\frac{३}{१९} \times २ = २८७१७०\frac{६}{१९}$$

$$+१४५२८\frac{११}{१९} \times २ = २९०५७\frac{३}{१९}$$

= ज बूद्वीप की परिधि=३१६२२७ $\frac{९}{१९}$

उपर के चार्ट में समस्त विष्क भों की जोड से उत्तर-दक्षिण जम्बूद्वीप १ लाख योजन हो जाता है।

भरतक्षेत्र :-

क्रम	क्षेत्र नाम	विष्कंभ यो॰/कला	जीवा यो॰/कला	बाहा यो॰/कला	धनुःपृष्ट यो॰/कला	ऊँचाई	ऊँडाई
१	वैताढ्यपर्वत	५०	१०७२०/१२	४८८/१६$\frac{१}{२}$	१०७४३/१५	२५ यो॰	६$\frac{१}{४}$यो॰
२	वेदिका	५०० धनुष	–	–	–	$\frac{१}{२}$यो॰	–
३	वनखंड	१ यो॰देशोन	–	–	–	–	–
४	उत्तर भरत	२३८/३	१४४७१/६	१८९२/७$\frac{१}{२}$	१४५२८/११	–	–
५	दक्षिण भरत	२३८/३	९७४८/१२	–	९७६६/१	–	–
६	दो गुफाएँ	१२	५०	–	–	८	–

गोल पर्वतो एवं कूटों के परिमाण योजन में :-

नाम	ऊ चाई	भूमि पर विष्क भ	मध्य में वि॰	उपर वि॰
ऋषभकूट (३४)	८	८	६	४
वैताढ्यपर्वत के कूट	६ १/४	६ १/४	देशोन ५यो॰	३यो॰ १/२ गाउ
अन्यपर्वत के कूट	५००	५००	३७५	२५०
हरि,हरिस्सहकूट	१०००	१०००	७५०	५००
चित्रविचित्र पर्वत	१०००	१०००	७५०	५००
यमक पर्वत	१०००	१०००	७५०	५००
कंचन पर्वत	१००	१००	७५	५०
वृत वैताढ्य	१०००	१०००	१०००	१०००
भद्रशालवन के ८कूट	५००	५००	३७५	२५०
नंदनवन के ८कूट	५००	५००	३७५	२५०
नंदनवन का बलकूट	१०००	१०००	७५०	५००

महाविदेह क्षेत्र गत ल बे पर्वत :-

नाम	आयाम (ल बाई)	मूल में ऊँचा	किनारे ऊँचा	मूल में चौड़ा	किनारे चौड़ा
गजद ताकार पर्वत	३०२६९/६	४००	५००	५००	अ गुल का अस .भाग
विजय के बीच के पर्वत ।	१६५९२/२	४००	५००	५००	५००

नदियों का योजन परिमाण :- (कुल नदियाँ सपरिवार-१४५६०९०)

नाम	विस्तार		ऊ डाई		प्रत्येक नदी परिवार
	मूल में	मुख में	मूल में	मुख में	
ग गासिंधु	६ १/४	६२ १/२	१/२ कोस	१ १/४यो॰	१४-१४हजार
रक्ता रक्तवती	६ १/४	६२ १/२	१/२ कोस	१ १/४यो॰	१४-१४हजार
हेम॰हैरण्य॰नदी	१२ १/२	१२५	१ कोस	२ १/२यो॰	२८-२८हजार
हरि॰रम्यक॰नदी	२५	२५०	२ कोस	५ यो॰	५६-५६हजार
सीता	५०	५००	१ यो॰	१० यो॰	५३२०००
सीतोदा	५०	५००	१ यो॰	१० यो॰	५३२०००
अ तर नदियाँ	१२५	-	२ १/२यो॰	-	-
कुल नदियाँ					**१४५६०००**
मुख्य नदियाँ					**९०**

द्रहों के योजन परिमाण :- (कुल द्रह -१६)

नाम	ल बाई	चौड़ाई	ऊँड़ाई	देवी	पद्म
पद्मद्रह/ पु ड़रीक द्रह	१०००	५००	१०	श्री/कीर्ती	१२०५०१२०
महापद्मद्रह/ महापु ड़रीकद्रह	२०००	१०००	१०	ह्री/लक्ष्मी	२४१००२४०
तिगिच्छद्रह/ केसरी द्रह	४०००	२०००	१०	धृति/बुद्धि	४८२००४८०
१० द्रह भूमिपर	१०००	५००	१०	-	१२०५०१२००

पर्वत स ख्या (२६९) :- क चन गिरि २००, महाविदेह में १६+४ = २० वक्षस्कार, ४ यमक, चित्र विचित्र, ६ वर्षधर, ३४ वैताढ़य, ४ वृतवैताढ़य, १ मेरु पर्वत । इस प्रकार कुल पर्वत २००+२०+ ४+६+३४+४+१ = २६९।

कूट स ख्या-५२५ :- (४६७+५८+ = ५२५)

वर्षधर ६ पर्वतों पर ११ + ८ + ९ = २८ X २ =		५६
चौतीस वैताढ़यों पर - ३४ X ९ =		३०६
सोलह वक्षस्कार पर - १६ X ४ =		६४
४ गजद ता पर - ९ + ९ + ७ + ७ =		३२
मेरु के न दनवन में ९ =		९
पर्वतों पर कूट स ख्या	कुल	= ४६७
भद्रशाल वन में		८
ज बू वृक्ष के वन में		८
कूट शाल्मली वृक्ष के वन में		८
३४ चक्रवर्ती विजय में ऋषभ कूट		३४
भूमि पर कूट स ख्या	कुल =	५८

महाविदेह पूर्व पश्चिम का एक लाख योजन :-

मेरु		=१०,००० योजन
दो भद्रशालवन	२२०००+२२०००	= ४४,००० योजन
१६ विजय	२२१२ ३/४ × १६	= ३५,४०४ योजन
८ वक्षस्कार	५०० × ८	=४,००० योजन
६ अंतर नदी	१२५ × ६	=७५० योजन
२ मुखवन	२९२३ × २	=५,८४६ योजन
	कुल	**= १,००,००० योजन**

नोंध :- जगती मकान की भित्तियों के समान है अर्थात् मकान का जो भूमि क्षेत्र होता है उसी में ही एक फुट या दो फुट की दिवाल का क्षेत्र समाविष्ट होता है। उसी प्रकार जम्बूद्वीप की १२ योजन की चौड़ाई वाली जगती भी किनारे पर जम्बूद्वीप के एक लाख योजन क्षेत्र सीमा में ही समाविष्ट है जो सीतामुख वन, वर्षधर पर्वत, एव क्षेत्रों की सीमा में स लग्न समझना चाहिये।

प्रश्न-२० : ज बूद्वीप में सिद्धायतन कुल कितने कहे गये है और इस शब्द की सार्थकता कैसे हो सकती है अर्थात् ये सिद्धों के घर कैसे है क्यों कि सिद्धों का घर तो सिद्ध शिला है ?

उत्तर- ६ वर्षधर, १६ वक्षस्कार, ४ गजद ता, ३४ वैताढ्य, मेरु के चार वनों सें १६, मेरु चूला पर एक, दो वृक्षों पर, ये कुल ७९ सिद्धायतन कहे गये है ।

नोट-मेरु के प ड़क वन का पाठ देखने से ज्ञात होता है कि भवन को ही काला तर में सिद्धायतन कहने की सर्वत्र कोशिश की गयी है। क्यों कि सिद्धायतन किसका हो सकता है। कोई भी सिद्ध तो सादि अन त है और यह सिद्धायतन अनादि का है तो इसमें प्रतिमा किसकी हो सकती है ? प्रतिमा तो किसी सादि व्यक्ति की होती है। अतः अनादि प्रतिमाओं और सिद्धायतनों के होने की कुछ भी सार्थकता एव स गति नहीं हो सकती है। यदि किसी व्यक्ति की मनुष्य की आत्मा की प्रतिमा वहाँ नहीं है तब वह बिना व्यक्तित्व की प्रतिमा ही कैसी और किसकी ? वह बिना अस्तित्व की आकाश कुसुमवत होती है। इस प्रकार बिना व्यक्तित्व की प्रतिमा और जिनालय का होना निरर्थक होता है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि इन शास्वत स्थानों का उक्त जिनालयों और प्रतिमाओं से कोई भी प्रयोजन नहीं है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि मध्यकाल में किसी के द्वारा ऐसे पाठ कल्पित कर यत्र तत्र आगमों में जोड़े गये हैं।

इस प्रस ग में **णमोत्थुण** के पाठ के प्राचीन प्रतियों में भेद मिलना, उपासकदशा सूत्र एव व्यवहार सूत्र के चैत्य पाठ में प्रतिभेद मिलना, राजप्रश्नीय सूत्र में देवलोक गत सिद्धायतन में वर्तमान चौबीसी के प्रथम और अ तिम तीर्थंकर का नाम मिलना, प्रत्येक सामानिक आदि देवों के सुधर्मा सभाओं के निकट सिद्धायतन में १०८ प्रतिमाओं का

होना(ये १०८ व्यक्ति कौन है जिन्हें जिन कहा जाय और देव इनकी पूजा करे इनमें एक का भी नाम नहीं कहा गया है बिना नाम के ये जिन कब कैसे हुए थे) जम्बू वृक्ष और कूट शाल्मली वृक्ष की शाखाओं के बीच में सिद्धायतन और उसके चौतरफ मालिक देव के चार भवन होना, मेरुचूलिका के ऊपर सिद्धायतन कहना और उसी पाठ में कहीं भवन शब्द का भी उपलब्ध होना इत्यादि अनेक प्रमाण उक्त अनुमान के सहयोगी है। विशेष जानकारी के लिये सारा श पुष्प २१ ऐतिहासिक स वाद परिशिष्ट का अध्ययन करना चाहिये तथा इस पुस्तक में भी आगे परिशिष्ट-२ देखें।

दोनों वृक्ष के वनों में दिशाओं में भवन है और विदिशाओं में पुष्करणियाँ है। जब मेरु के चारों वन का वर्णन भी ऐसा ही भवन, पुष्करणियों और कूटों वाला है तो वहाँ सिद्धायतन कैसे हो सकता है। जो प ड़कवन के भलावण युक्त स क्षिप्त पाठ में भवन रूप में उपलब्ध है।

भवन सर्वत्र लम्बाई से आधे चौड़े कहे गये हैं अर्थात् लम्बे और चौकोन कहे गये है। जब कि सिद्धायतन अन्य सूत्रों में और इस सूत्र में वर्षधर पर्वत आदि सभी पर्वतों पर गोल कहे गये हैं। फिर भी भद्रशाल आदि चारों वनों में चौकोन है जम्बूवृक्ष के प्रकरण में भी चौकोन है। इससे भी स्पष्ट है कि वास्तव में ये भवन है इन्हें ही पाठ परिवर्तन कर सिद्धायतन कर दिया गया है। जब कि इनके लम्बाई चौड़ाई का वर्णन भवन होने के पाठ को सिद्ध करता है। जो प ड़क वन के स क्षिप्त पाठ से भी पुष्ट होता है।

इस प्रकार यह प्रामाणित होता है कि कहीं गोलाकार कूटों कों सिद्धायतन बना दिया गया है और कहीं लम्बे चौकोन भवनों को भी सिद्धायतन कर दिया गया है और कहीं बिना मालिकी के नये कूट कर दिये गये हैं। अतः सिद्धायतन सम्बन्धी ये सूत्रगत सारे पाठ प्रक्षिप्तिकरण की विकृतियों से सूत्रों में प्रविष्ट है ऐसा फलितार्थ निकलता है।

प्रश्न-२१ : ज बूद्वीप में पुष्करिणियाँ और देवों के भवन-प्रासाद कितने हैं ?

उत्तर- **भवन प्रासाद :-**

६ द्रहो में	=	७,०१,६८०
१० द्रहों में	=	५,०१,२००
३४x३ = १०२ तीर्थों में	=	१०२
३४x२=६८ नदियों के कु ड़ों के मध्य में	=	६८
१४ + १२ = २६ नदियों के कु ड़ों में	=	२६
४६७ पर्वतीय कूटों पर ४६७-६०	=	४०७
दो वृक्षों की शाखाओं पर ४ x २	=	८
दो वृक्षों के वनों में भवन ४ x २	=	८
दो वृक्षों के वनों में पुष्करणियों में ४x२	=	८
मेरु के चार वनों में पुष्करणियों में ४x४	=	१६
मेरु के दो वनों में १७ कूटों पर	=	१७
दो वृक्षों के आठ-आठ कूटों पर	=	१६
३४ ऋषभ कूटों पर	=	३४
	कुल =१२,०३,५९०	

पुष्करणियाँ-दो वृक्षों के वनों में	१६x२=३२
मेरु के चार वनों में	१६x४=६४
	कुल - ९६

नोट :- सिद्धायतनों के पाठों को प्रक्षिप्त मानने पर कूटों की स ख्या में और भवनों की स ख्या में भी हीनाधिकता होगी। क्यों कि सिद्धायतन नामक कूट का अस्तित्व ही नहीं रहेगा एव कई सिद्धायतन तो भवनों की गिनती में आयेंगे ।

वक्षस्कार-५

प्रश्न-१ : इस वक्षस्कार में किस विषय का वर्णन है ?

उत्तर- १५ कर्मभूमि क्षेत्र में कहीं भी कभी भी तीर्थंकर भगवान का जन्म होता है तो ५६ दिशाकुमारी देवियाँ और शक्रेन्द्र आदि ६४ इन्द्र भगवान के जन्म समय की विधियाँ और मेरु पर्वत पर जन्म महोत्सव करते है उस स पूर्ण वर्णन को इस वक्षस्कार में विस्तार पूर्वक कहा गया है।

प्रश्न-२ : छप्पन दिशाकुमारी देवियों द्वारा भगवान का जन्म स ब धी कार्यक्रम किस प्रकार किया जाता है ?

उत्तर- अधोलोकवासिनी आठ दिशाकुमारियाँ आसन चलायमान होने के स केत से मनुष्य लोक में तीर्थंकर के जन्म नगर में आती है। उसके साथ में ४ महत्तरिकाएँ, चार हजार सामानिक देव आदि अनेक देव देवी का परिवार सैकड़ों स्त भों वाले विकुर्वणा से तैयार किये विशाल विमान में आते हैं। आकाश में रहे विमान के द्वारा तीर्थंकर जन्म भवन की तीन बार प्रदक्षिणा लगाकर उत्तर पूर्व विभाग में यथास्थान विमान को भूमि पर उतारते हैं। यह विमान भूमि से चार अ गुल ऊपर ठहर जाता है।

विमान से उतर कर सभी देव देवी जुलुस के साथ तीर्थंकर के जन्म भवन के पास आते हैं। दिशाकुमारियाँ अ दर आकर तीर्थंकर की माता को मस्तक पर अ जलि करते हुए आवर्तन करके प्रणाम करती है। **रत्न कुक्षि धारिणी** आदि अच्छे स बोधन-विशेषणों से उसे सम्मानित कर धन्यवाद पुण्यवाद एव कृतार्थवाद देते हुए अपना परिचय और आने का कारण कहती है एव **भयभीत नहीं होना** ऐसा निवेदन करती है। फिर वे उस नगरी की एव उसके आसपास एक योजन प्रमाण के क्षेत्र की सफाई करती है। जो भी छोटा बड़ा कचरा ग दगी आदि हो उसे पूर्णतया साफ करके पुनः आकर तीर्थंकर की माता से योग्य दूरी पर ठहर कर गीत गाते हुए समय व्यतीत करती है।

ऊर्ध्वलोक में मेरु पर्वत के न दनवन में ८ कूटों पर रहने वाली ऊर्ध्व-लोकवासिनी दिशाकुमारियाँ भी आती है। आने स ब धी वर्णन पूर्वोक्त विधि से समझना। ये दिशाकुमारियाँ म द म द वृष्टि कर एव पुष्पवृष्टि कर उस नगरी को देवों के आने योग्य सुग धित बनाकर तीर्थंकर की माता के पास आकर गीत गाते हुए वहाँ खड़ी रहती है।

रुचक द्वीप के मध्यवर्ती रुचकपर्वत पर पूर्व दिशा में रहनेवाली ८ दिशा-कुमारियाँ पूर्ववत् आती है, तीर्थंकर की माता को नमस्कार आदि करके हाथ में **दर्पण** लेकर **पूर्व दिशा** में खड़ी रहती है। इसी प्रकार रुचकद्वीप के दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में रहने वाली ८-८ दिशाकुमारियाँ आती है और व दना नमस्कार कर क्रमशः झारी, प खा एव चामर हाथ में लेकर अपनी अपनी दिशा में खड़ी रहती है। **चार विदिशा** की एक-एक यों कुल चार देवियाँ रुचक पर्वत से आती है, उक्त विधि पूर्वक चारों विदिशा में दीपक लेकर खड़ी रहती है।

मध्य रुचक पर्वत वासिनी चार दिशाकुमारियाँ आती है एव उक्त विधि से शिष्टाचार करने के बाद तीर्थंकर के नाभिनाल को चार अ गुल छोड़कर काटती है और यथास्थान पर खड्डा खोद कर उसे गाड़ देती है (अवशेष खड्डे को रत्नों से आपूरित कर हड़ताल के द्वारा उस पर चबूतरा बनाती है) उसके तीन दिशाओं में कदली गृह की रचना कर उन तीनों में एक-एक चौसाल बनाती है। प्रत्येक चौसाल में सि हासन बनाती है।

फिर तीर्थंकर की माता के पास आकर तीर्थंकर को हथेलियों में ग्रहण करती है और तीर्थंकर की माता को भुजाओं से पकड़ कर उस **दक्षिणी** कदली गृह की चौसाल में लाती है, दोनों को सि हासन पर बिठाकर तैलादि से अभ्य गन करके उसके बाद उबटन करके **पूर्वी** कदली गृह की चौसाल में लाती है वहाँ स्नान विधि करा कर फिर **उत्तरी** कदली गृह की चौसाल में लाती है और चुल्लहिमव त पर्वत से म गाये गये चंदन से हवन करती है फिर उस राख से रक्षापोटली बनाकर तीर्थंकर के एव उनकी माता के ड़ाकन, शाकन, नजर आदि दोषों से बचाव हेतु बाँध देती है। फिर दो मणिरत्नमय पत्थरों के रगड़ने की आवाज भगवान के कान के पास करके उनको अपनी और आकर्षित कर दीर्घायु होने का आशीर्वचन देती है।

फिर यथा स्थान लाकर माता को सुला देती है और उसके पास तीर्थंकर भगवान को सुला देती है। इस सारे कार्यक्रम में वे सभी देव देवियाँ भाग लेते हैं, गाना बजाना आदि करते हैं। सुलाने के बाद वे ५६ ही दिशाकुमारियाँ मिलकर वहीं ठहर कर म गल गीत गाती है।

प्रश्न-३ : ६४ इन्द्रों का देवलोकों से आगमन और तीर्थंकर भगवान का जन्माभिषेक किस प्रकार होता है ?

उत्तर- शक्रेन्द्र का आसन चलायमान होने पर एव ज्ञान में उपयोग लगाने पर तीर्थंकर भगवान के जन्म होने की जानकारी होती है। सि हासन से उतर कर उत्तरास ग लगाकर बायाँ घुटना ऊँचा कर तीन बार मस्तक झुकाकर व दन करता है। फिर सिद्धों को णमोत्थुण देकर तीर्थंकर भगवान को णमोत्थुणं के पाठ से स्तुति करते हुए नमस्कार करता है। पुनः सि हासन पर आरूढ़ होकर पैदल सेना के अधिपति हरिणेगमेषी देव के द्वारा सुघोषा घ टा बजवाकर सभी देव देवी को सावधान कर तीर्थंकर

जन्म महोत्सव पर जाने की सूचना दिलवाता है। अविलम्ब सभी देव उपस्थित होते हैं। पालक विमान का अधिपति आभियोगिक देव शक्रेन्द्र का आदेश पाकर विमान को सुसज्जित एव तैयार करता है। इस प्रकार अविल ब प्रस्थान कर देते हैं। न दीश्वर द्वीप में दक्षिण-पूर्वी रतिकर पर्वत(उत्पात पर्वत) पर आकर विमान को स कुचित कर तीर्थंकर की जन्म नगरी में आते हैं। अधोलौकिक दिशाकुमारी के समान यावत् माता को भयभीत नहीं होने के लिये निवेदन करता है।

शक्रेन्द्र के पाँच रूप- तत्पश्चात माता को निद्राधीन कर देता है और तीर्थंकर भगवान के सदृश शिशु रूप की विकुवर्णा करके माता के पास रख देता है। शक्रेन्द्र स्वय के ५ रूप विकुर्वित करता है एक रूप से तीर्थंकर को अपनी हथेलियों में लेता है, एक रूप से छत्र, दो रूपों से दोनों बाजू में चामर एव एक रूप में वज्र हाथ में लिये आगे चलता है। इस प्रकार स पूर्ण देव देवियों के साथ वह शक्रेन्द्र मेरु पर्वत पर प ड़क वन में पहुँच कर दक्षिणी अभिषेक शिला पर स्थित सि हासन पर तीर्थंकर को लिए हुए ही आकर बैठ जाता है।

सभी इन्द्र मेरु पर- इसी क्रम से दूसरे देवलोक से १२वें देवलोक तक के इन्द्र एव भवनपति, व्य तर, ज्योतिषी के इन्द्र भी जन्म नगरी में न जाते हुए सीधे मेरु पर्वत पर ही पहुँच जाते है। तीर्थंकर भगवान को व दन नमस्कार कर पर्युपासना करते हैं।

अच्युतेन्द्र द्वारा अभिषेक प्रारम्भ- बारहवें देवलोक के अच्युतेन्द्र अपने आभियोगिक देवों को अभिषेक सामग्री लाने का आदेश देते हैं। वे देव कलश, कड़छे, छबड़ी, रत्न कर ड़क आदि हजारों विकुर्वित करके जाते हैं। क्षीरोद समुद्र, मागधादि तीर्थ, पर्वत, क्षेत्रों, नदी, द्रह आदि कहीं से जल, कहीं से जल एव पुष्प, कहीं से जल मिट्टी, आदि पवित्र अभिषेक सामग्री सम्पूर्ण ढ़ाईद्वीप के क्षेत्र, पर्वतों, नदियों, तीर्थों आदि में जाकर उपयुक्त सामग्री लेकर मेरु पर अच्युतेन्द्र के पास पहुँचते हैं। फिर अच्युतेन्द्र उन म गल पदार्थों से जल मिट्टी पुष्प आदि से तीर्थंकर भगवान का जन्माभिषेक करता है कई देव वादि त्र आदि की ध्वनियों को फैलाते है। अनेक कुतुहली देव अनेक प्रकार के हर्षातिरेक के कुतुहल कृत्य करते हैं। अच्युतेन्द्र जल आदि से अभिषेक कर मस्तक पर अ जली

करके नमन कर जय जय कार करता है। फिर मुलायम रोएँदार वस्त्र से भगवान के शरीर को पोंछ कर गोशीर्ष चन्दन आदि लगाकर वस्त्र युगल पहनाता है, अल कृत विभूषित करता है। फिर चावल से भगवान के समक्ष अष्ट म गल चिन्ह बनाता है। पुष्प एव रत्न आदि का भेंटणा चढ़ाता है, जिससे घुटने प्रमाण ढ़ेर बन जाता है। फिर १०८ श्लोकों के द्वारा भगवान की स्तुति करते हुए अनेक गुणों उपमाओं से सत्कारित सम्मानित कर, व दन नमस्कार कर यथास्थान ठहर कर पर्युपासना करता है ।

शेष इन्द्रों द्वारा अभिषेक– इसी प्रकार ६३ ही इन्द्र जन्माभिषेक करते हैं। अ त में ईशानेन्द्र ५ रूप बनाकर भगवान को हाथ में लेकर बैठता है तब शक्रेन्द्र उक्त विधि से तीर्थंकर भगवान का जन्माभिषेक करता है। विशेषता यह है कि वह चार सफेद बैल विकुर्वित करके उनके आठ सि गों से जल को ऊपर फैलाकर एक स्थान में मिलाकर भगवान के मस्तक पर गिराते हुए अभिषेक करता है।

समारोह समापन, शक्रेन्द्र जन्म नगरी में– इस तरह स पूर्ण अभिषेक विधि के समापन होने पर शक्रेन्द्र पूर्व विधि अनुसार भगवान को लेकर जन्म नगरी में आता है, भगवान को माता के पास सुलाकर विकुर्वित शिशु रूप को हटाकर माता की निद्रा खोल देता है। वस्त्रयुगल और कु ड़ल भगवान के सिरहाने के पास रख देता है। एक सु दर रत्नों का झूमका भगवान के दृष्टि पथ पर ऊपर छत में लटका देता है। वैश्रमण देव के द्वारा ३२ क्रोड़ सोनामहोर आदि भ ड़ार में रखवा देता है। अन्य भी अनेक वस्तुएँ ३२-३२ की स ख्या में रखवा देता है। फिर नगरी में घोषणा करवा देता है कि कोई भी देव दानव (मानव)तीर्थंकर भगवान एव उनकी माता के प्रति अशुभ अहितकर मन आदि करेगा तो उसके मस्तक के १०० टुकड़े कर दिये जायेंगे। फिर सभी देव न दीश्वर द्वीप में महोत्सव मनाते हुए अपने अपने देवस्थानों देवलोकों में पहुँच जाते हैं।

प्रश्न-४ : छप्पन दिशाकुमारी, ६४ इन्द्र, यान विमान आदि का स्पष्टीकरण किस प्रकार हे ?

उत्तर- ५६ दिशाकुमारियाँ–८ नीचे लोक में ८ मेरु के न दन वन में।

८x४=३२ रुचक पर्वत की चार दिशाओं में ।४ विदिशाओं में और चार मध्यभाग में इस प्रकार ८+८+३२+४+४=५६ दिशाकुमारियाँ भवनपति के दिशाकुमार जाति की ऋद्धिवान देवियाँ है ।

आठ नीचे लोक की कही गई देवियों के चार नाम गजद ताकार वक्षस्कार की कूट की देवियों के नाम से मिलते हैं और चार नाम नहीं मिलते हैं। उसकी अपेक्षा इन आठ देवियों को क्वचित गजद ता पर निवास करने वाली भी कहने में आता है। वास्तविक तथ्य यह है कि मूलपाठ में नीचेलोक की वासिनी कहा है और गजद ताकार वक्षस्कार के वर्णन में मूलपाठ में दिशाकुमारियाँ होने का कोई स केत नहीं है। केवल चार नाम सदृश होने मात्र से कि चित कल्पना की जाती है।

६४ इन्द्र– दश भवनपति के उत्तर दक्षिण की अपेक्षा २० इन्द्र है। भूत पिशाच आदि आठ और आणपन्नी आदि आठ यों १६ जाति के व्य तरों के उत्तर दक्षिण की अपेक्षा ३२ इन्द्र है। ज्योतिषी के दो इन्द्र है। और वैमानिक के आठ देवलोकों के आठ इन्द्र है। नवमें दसवें का एक और ग्यारहवें बारहवें का एक, यों कुल १० वैमानिक के इन्द्र है। इस प्रकार २०+३२+२+१०=६४ ।

इन्द्रों के घ टा–वैमानिक के पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें और नौवें इन्द्र के विमान में जो घ टा होती है उसका नाम सुघोषा है, हरिणेगमेषी उनके सेनाधिपति होते है, उनका नीचे आने का मार्ग विमान में उत्तर दिशा में होता है, तिर्छालोक में आकर ये पहले अपने रतिकर उत्पात पर्वत पर उतरते है । दूसरे, चौथे, छट्ठे, आठवें और दसवें इन्द्र के महा घोषा घ टा, लघु पराक्रम नामक सेनाधिपति, निर्याणमार्ग(देवलोक से निकलने का रास्ता)दक्षिण में एव उत्तर में रतिकर उत्पात पर्वत है।

विमान नाम–यान विमान और उसके अधिपति देव का नाम क्रमशः दस इन्द्रों के इस प्रकार है– (१) पालक (२) पुष्पक (३) सौमनस (४) श्रीवत्स (५) न दावर्त (६) कामगम (७) प्रीतिगम (८) मनोरम (९) विमल (१०) सर्वतोभद्र।

म गल– अष्ट म गल हैं– (१) दर्पण (२) भद्रासन (३) वर्द्धमानक (४) कलश (५) मत्स्य (६) श्रीवत्स (७) स्वस्तिक (८) न द्यावर्त ।ये विमान की सजावट में आगे रखे जाते हैं।

वक्षस्कार-६

प्रश्न-१ : इस वक्षस्कार में किन-किन विषयों का वर्णन है ?

उत्तर– प्रार भ में जम्बूद्वीप के ख ड़ और योजन दो तरह से कुल ख ड़ों की गिनती बताई है। उसके बाद पूर्व वक्षस्कारों में वर्णित क्षेत्रीय वर्णन में से क्षेत्र, पर्वत, कूट, तीर्थ, श्रेणिया, विजय, गुफा, द्रह, नदी आदि का स कलन करके कुल योग दर्शाया गया है । वे दस विषय इस प्रकार है–

(१) ख ड़–एक लाख योजन लम्बे चौड़े जम्बुद्वीप के भरत क्षेत्र प्रमाण चौड़ाई वाले १९० ख ड़ हो सकते हैं अर्थात् ५२६-६/१९ X १९० = एक लाख होते हैं।

(२) योजन– यदि जम्बूद्वीप क्षेत्र के एक योजन के लम्बे चौड़े ख ड़ कल्पित किये जाय तो ७९०५६९४१५० सात अरब, नब्बे करोड़, छप्पन लाख, चौरानवें हजार, एक सौ पच्चास, ख ड़ होते हैं।

(३) वर्ष क्षेत्र–सात है–भरत,ऐरवत, हेमवय, हैरण्यवय, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष एव महाविदेह।

(४) पर्वत–ये २६९ हैं, चार्ट देखें चौथे वक्षस्कार में। (प्रश्न-१७)

(५) कूट– ये ४६७ हैं। चार्ट देखें चौथे वक्षस्कार में ।(प्रश्न-१७)

(६) तीर्थ– मागध, वरदाम, प्रभास ये तीनों ही तीर्थ ३२ विजय में और भरत ऐरवत में है। अतः ३४X३=१०२ है।

(७) श्रेणियाँ–३२ विजयों में तथा भरत-एरवत में, दो विद्याधरों की और दो आभियोगिकों की श्रेणियाँ हैं अतः ३४X२X२=१३६ श्रेणियाँ है।

(८) विजय, गुफा, राजधानी आदि– ३४ विजय हैं, ३४ राजधानियाँ है, ३४ ऋषभ कूट हैं। ३४X२=६८ गुफाएँ हैं और ६८ ही इनके कृतमालक और नृतमालक कुल देव हैं।

(९) द्रह– १६ महाद्रह हैं। ५ देव कुरु में ५ उत्तर कुरु में ६ वर्षधर पर्वतों पर है। यों कुल-५+५+६=१६ है।

(१०) नदी– ६ वर्षधर पर्वतों से १४ महानदियाँ निकली है। ३२ विजयों में ६४ नदियाँ कु ड़ों में से निकली है और १२ अ तर नदियाँ भी कु ड़ों में से निकली है। ये कुल १४+६४+१२=९० महानदियाँ है।

चौदह महानदियों के नाम इस प्रकार– (१) ग गा (२) सि न्धु (३) रक्ता (४) रक्तवती (५) रोहिता (६) रोहिता शा (७) सुवर्णकूला (८) रूप्यकूला (९) हरिसलिला (१०) हरिका ता (११) नरकाता (१२) नारीका ता (१३) सीता (१४) सीतोदा। यों क्रमशः भरत ऐरवत, हेमवय, हैरण्यवय, हरिवास, रम्यकवास एव महाविदेह की नदियाँ है। ६४ नदियाँ ग गा, सि धु, रक्ता, रक्तवती ये चारों १६-१६ की स ख्या में महाविदेह में है। १२ अ तर नदियों के नाम पहली विजय से ३२ विजय तक क्रमशः इस प्रकार है– (१) ग्राहावती (२) द्रहावती (३) प कावती (४) तप्तजला (५) मत्तजला (६) उन्मतजला (७) क्षीरोदा (८) शीतस्रोता (९) अ तरवाहिनी (१०) उर्मिमालिनी (११) फेणमालिनी (१२) ग भीरमालिनी।

इन सभी नदियों का कुल परिवार १४,५६,०००(चौदह लाख छप्पन हजार) है। इनमें ७,२८,००० नदियाँ पूर्वी समुद्र में मिलती है और ७,२८,००० नदियाँ पश्चिमी लवण समुद्र में मिलती है।परिवार की अलग अलग नदियाँ चार्ट में–चौथे वक्षस्कार में देखें।

वक्षस्कार-७

प्रश्न-१ : इस वक्षस्कार में किस विषय का निरूपण किया है?

उत्तर– इसमें चन्द्र, सूर्य आदि ज्योतिष म ड़ल स ब धी कुछ विषयों का स क्षेप में कथन किया गया है। जम्बूद्वीप सूत्र होने से जम्बूद्वीप स ब धी विविध वर्णन किये गये है तो जम्बूद्वीप के ऊपर परिभ्रमण करने वाले सूर्य, चन्द्रादि स ब धी कुछ जानकारी दी गई है। विशेष जानकारी आगे के उपा गसूत्र में अर्थात् ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति शास्त्र में दी गई है। उस शास्त्र के प्रश्नोत्तर भी इसी पुस्तक में लिये गये हैं। तथापि इस अध्याय में स क्षिप्त पोइ ट रूप में जानकारी दी जा रही है– (विशेष जिज्ञाशा के लिये अगले शास्त्र में ध्यान से देखें)

(१) ज बूद्वीप की अ तिम सीमा के १८० योजन में सूर्य के ६५ म ड़ल है, आगे लवण समुद्र की सीमा के ३३० योजन में सूर्य के ११९

म ड़ल है। यों अपने जम्बूद्वीप के सूर्य के भ्रमण करने कुल १८४ म ड़ल है। सब द्वीप समुद्रों से अत्य त छोटा होने से एव इसी ज बूद्वीप के मेरु के सभी सूर्य आदि परिक्रमा लगाते होने से इस द्वीप के सूर्य के म ड़ल लवण समुद्र की सीमा के ऊपर आये हैं । आगे प्रत्येक द्वीपसमुद्र के सूर्यों के म ड़ल अपने अपने द्वीप या समुद्र की सीमा में ही ऊपर भ्रमण करते हैं या स्थिर रहते हैं।

(२) मेरु पर्वत से सूर्य का पहला म ड़ल ४४८२० योजन दूर है और अ तिम १८४वाँ म ड़ल ४५३३० योजन दूर है।

(३) च द्र के कुल १५ म ड़ल है जिसमें से ५ म ड़ल जम्बूद्वीप की सीमा के ऊपर है, शेष १० म ड़ल लवण समुद्र की सीमा के ऊपर है।

(४) चन्द्र म ड़लों का आयाम विष्क भ, मुहूर्तगति, चक्षुस्पर्श :

मंडल	आयाम विष्कंभ	परिधि	मुहूर्तगति	चक्षुस्पर्श
आभ्यंतर पहला	९९६४०	३१५०८९	५०७३ ७७४४/१३७२५	४७२६३ २१/६१
आभ्यंतर से दूसरा	९९७१२ ५१/६१, १/७	३१५३१९	५०७७ ३६७४/१३७२५	
आभ्यंतर से तीसरा	९९७८५ ४१/६१, २/७	३१५५४९	५०८० १३३१६/१३७२५	
बाह्य पहला	१००६६०	३१८३१५	५१५२ ६९९०/१३७२५	३१८३१
बाह्य से दूसरा	१००५८७ ९/६१, ६/७	३१८०८५	५१२१ ११६०/१३७२५	
बाह्य से तीसरा	१००५१४ १९/६१, ५/७	३१७८५५	५११८ १४०५/१३७२५	

नोट– एक चन्द्रम ड़ल का दूसरे चन्द्र म ड़ल से अ तर ३६-२५/६१,४/७ योजन है । इससे दुगुना ७२-५१/६१,१/७ विष्क भ बढ़ता है। इससे तीन गुणी साधिक परिधि अधिक अधिक होती है। मुहूर्त गति प्रति म ड़ल में बढ़ती है =३-९६५५/१३७२५। प्रतिम ड़ल में परिधि बढ़ती है=२३० योजन।

(५) नक्षत्र के आठ म ड़ल में से जम्बूद्वीप में-२, लवण समुद्र में-६।

(६) नक्षत्र की पहले म ड़ल में मुहुर्त गति ५२६५-१८२६३/२१९६० योजन है

नक्षत्र की अ तिम म ड़ल में मुहुर्त गति ५३१९-१६३६५/२१९६० योजन है

(७) चन्द्र एक मुहूर्त में म ड़ल पार करता है १७६८/१०९८०० भाग।

सूर्य एक मुहूर्त में म ड़ल पार करता है १८३०/१०९८०० भाग।

नक्षत्र एक मुहूर्त में म ड़ल पार करता है १८३५/१०९८०० भाग।

(८) बृहस्पति महाग्रह १२ वर्षों में सभी नक्षत्रों के साथ योग समापन करता है । शनिश्चरमहाग्रह ३० वर्षों में सभी नक्षत्रों के साथ योग समापन करता है ।

(९) करण११ होते हैं, यथा-(१) बव (२) बालव (३) कौलव (४) स्त्रीविलोचन (५) गरादि (६) वणिज (७) विष्टि (८) शकुनि (९) चतुष्पद (१०) नाग (११) कि स्तुघ्न ।

सुदी	दिन में	रात्रि में	वदी	दिन में	रात्रि में
१	कि स्तुघ्न	बव	१	बालव	कौलव
२	बालव	कौलव	२	स्त्रीविलोचन	गरादि
३	स्त्रीविलोचन	गरादि	३	वणिज	विष्टि
४	वणिज	विष्टि	४	बव	बालव
५	बव	बालव	५	कौलव	स्त्रीविलोचन
६	कौलव	स्त्रीविलोचन	६	गरादि	वणिज
७	गरादि	वणिज	७	विष्टि	बव
८	विष्टि	बव	८	बालव	कौलव
९	बालव	कौलव	९	स्त्रीविलोचन	गरादि
१०	स्त्रीविलोचन	गरादि	१०	वणिज	विष्टि
११	वणिज	विष्टि	११	बव	बालव
१२	बव	बालव	१२	कौलव	स्त्रीविलोचन
१३	कौलव	स्त्रीविलोचन	१३	गरादि	वणिज
१४	गरादि	वणिज	१४	विष्टि	शकुनि
१५	विष्टि	बव	१५	चतुष्पद	नाग

नोट-वदी चौदस रात में, अमावस को दिन में और रात्रि में तथा सुदी एकम को दिन में क्रमशः शकुनि, चतुष्पद, नाग और कि स्तुघ्न ये चार करण स्थिर रहते हैं। शेष सात क्रमशः चार्ट के अनुसार बदलते रहते हैं।

(१०) चन्द्र, चन्द्र, अभिवर्द्धित, चन्द्र, अभिवर्द्धित ये पाँच स वत्सर का युग होता है। ये स वत्सर चन्द्र से प्रारम्भ होने वाले है। अयन दो है दक्षिणायन उत्तरायन। इनमें प्रथम दक्षिणायन होता है। पक्ष दो होते हैं- कृष्ण और शुक्ल। इनमें कृष्ण पक्ष पहले होता है। इसी प्रकार करणों में बालव, नक्षत्रों में अभिजित, अहोरात्र में दिन और मुहूर्तों में रौद्र मुहुर्त ये सब पहले होते हैं।

(११) एक युग में १० अयन, ३० ऋतु, ६० महिने, १२० पक्ष, १८३० दिन, ५४९०० मुहूर्त होते हैं।

(१२) नक्षत्र स ब धी वर्णन यहाँ दस द्वारों से है- (१) प्रमर्द आदि योग (२) देवता (३) तारा (४) गौत्र (५) स स्थान (६) चन्द्र सूर्य योग (७) कुल (८) पूनम अमावस में कुल (९) पूनम अमावस के कुलों में महिनों का सम्बन्ध (१०) रात्रिवाहक। इन दसों द्वारों का वर्णन ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति सूत्र में देखें। अन्य भी सातवें वक्षस्कार का वर्णन वहीं देखना चाहिये।

(१३) आषाढ़ महिने के अ तिम दिन दो पाँव की पोरिषि छाया होती है अर्थात् पाँव के घुटने पर्यन्त की छाया दो पा व जितनी होती है। श्रावण महिने के अ तिम दिन दो पाँव और चार अ गुल छाया होती है, तब पोरिषी आती है। इस तरह प्रति मास ४ अ गुल बढ़ाते हुए पौष तक ६ महिनों में २४ अ गुल=२ पा व छाया बढ़ जाती है अर्थात् २+२=४ पाँव जितनी छाया होती है तब पोरिषी आती है। यह घुटने तक के पाँव की छाया के माप से पोरिसी जानने का माप बताया गया है।

(१४) सोलह द्वार इस प्रकार है-(१) तारा एव सूर्य चन्द्र की अल्प या समऋद्धि स्थिति (२) चन्द्र का परिवार (३) मेरु से दूरी (४) लोका त से दूरी (५) समभूमि से दूरी (६) सबसे ऊपर नीचे आदि (७) विमानों का स स्थान (८) ज्योतिषी देवों की स ख्या (९) वाहक देव (१०) शीघ्र म द गति (११) अल्पर्द्धिक महर्द्धिक (१२) ताराओं का परस्पर अ तर (१३) अग्रमहिषियाँ (१४) परिषद और भोग (१५) आयुष्य (१६) अल्पबहुत्व। इन सभी द्वारों का वर्णन ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति सूत्र में देखें।

प्रश्न-२ : पूरे जम्बूद्वीप में एक साथ तीर्थंकर आदि जघन्य या उत्कृष्ट कितने हो सकते हैं ?

उत्तर- जम्बूद्वीप में तीर्थंकर आदि की स ख्या :-

नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	नाम	जघन्य	उत्कृष्ट
तीर्थंकर	४	३४	निधि रत्न अस्तित्व	-	३०६
चक्रवर्ती	४	३०	निधि रत्न उपभोग	३६	२७०
बलदेव	४	३०	प चेन्द्रिय रत्न	२८	२१०
वासुदेव	४	३०	एकेन्द्रिय रत्न	२८	२१०

प्रश्न-३ : इस स पूर्ण शास्त्र का उपस हार वर्णन किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर- इस प्रकार यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन लम्बा चौड़ा गोल है। ३,१६,२२७ योजन ३ कोश १२८ धनुष १३-१/२ अ गुल साधिक परिधि है। एक हजार योजन यह ऊँड़ा है (२४वीं २५वीं विजय की अपेक्षा)। ९९००० योजन साधिक(मेरु की अपेक्षा)ऊँचा है। एक लाख योजन साधिक सर्वाग्र है।

वर्ण, गध, रस, स्पर्श आदि की पर्ययो की अपेक्षा अशाश्वत है और अस्तित्व की अपेक्षा सदा था और सदा रहेगा, अतः शास्वत है। यह जम्बूद्वीप पृथ्वी पानी जीव एव पुद्गल परिणाम रुप है। सभी जीव यहाँ पाँच स्थावर रुप में अन त बार अथवा अनेक बार उत्पन्न हो चुके हैं। इस द्वीप में अनेक जम्बू वृक्ष है, जम्बू वन है वनख ड़ है। जम्बू सुदर्शन नामक शाश्वत वृक्ष है। जिस पर ज बूद्वीप का स्वामी अनादृत देव रहता है, इस कारण इस द्वीप का ज बूद्वीप यह शाश्वत नाम है।

परिशिष्ट-१ :-

जैन सिद्धा त और वर्तमान ज्ञात दुनिया

ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में एव जीवाभिगम सूत्र में भूमि भाग स ब धी विस्तृत वर्णन है। ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में एक ही द्वीप का सरल एव परिपूर्ण वर्णन है। इसका उपयोग पूर्वक एव चिंतन युक्त अध्ययन कर लेने पर मस्तक में परिपूर्ण इस क्षेत्र का नक्शा साक्षात चित्रित सा हो जाता है।

दक्षिण से उत्तर अर्थात् भरत से ऐरवत तक, पूर्व से पश्चिम सम्पूर्ण महाविदेह क्षेत्र एव मध्य मेरु सुदर्शन म दर पर्वत आदि नदी, पर्वत, क्षेत्र, द्रह, कूट, भवन, पुष्करणियाँ, प्रासादावत सक आदि आँखों के सामने श्रुतज्ञान के रूप में प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

प्रश्न– इस श्रुतज्ञान के अन तर यह प्रश्न स्वाभाविक होता है कि वर्तमान प्रत्यक्षीभूत पृथ्वी और सैद्धा तिक ज्ञान का सुमेल किस तरह होता है ?

समाधान– इसके लिये सामाधान इस प्रकार समझना चाहिये। आज के वैज्ञानिक साधन एव वैज्ञानिक मन्तव्य कुछ सीमित ही है। अतः उसके अनुसार ही बोध एव गमनागमन हो सकता है। गमनागमन के अभाव में अवशेष सम्पूर्ण क्षेत्र अज्ञात ही रहते है।

विशाल क्षेत्रों का अप्रत्यक्षीकरण क्यों ? आज हम दक्षिण भरत क्षेत्र के प्रथम मध्य ख ड़ के किसी सीमित भूमि क्षेत्र में अवस्थित हैं। लवण समुद्रीय प्रविष्ट जल के किनारे हैं। यों भरत क्षेत्र तीन दिशाओं में लवण समुद्र से एव उसके प्रविष्ट जल से घिरा हुआ है। वह समुद्री जल सैकड़ों या हजारों माइल जाने पर आ ही जाता है। हमारी उत्तरी दिशा ही समुद्री जल से रहित हैं। इस दिशा में पर्वत या समभूमि है। किन्तु उत्तर में भी ९-१० लाख से कुछ अधिक माइल जाने पर वैताढ्य पर्वत २ लाख माइल का ऊँचा है। अतः इतना ऊँचा जाकर फिर उत्तर दिशा में आगे जाना आज की मानवीय याँत्रिक शक्ति से बाहर है और जम्बूद्वीप के वर्णित सारे क्षेत्र पर्वत आदि वैताढ्य पर्वत के बाद ही उत्तर में है। अतः उनकी जानकारी एव प्रत्यक्षीकरण चक्षुगम्य होना अस भव सा हो रहा है।

दक्षिण भरत का भी अप्रत्यक्षीकरण क्यों ? शाश्वत ग गा-सिन्धु नदियें, मागध, वरदाम, प्रभास तीर्थ, सि धु देवी का भवन आदि एव दोनों गुफा के द्वार तो इसी ख ड़ में हैं। फिर भी इन स्थलों का प्रत्यक्षीकरण आज के मानव को नहीं हो रहा है, इसका कारण भी यह है कि (१) उक्त स्थानों के आगमीय वर्णन को समझ कर सही क्षेत्रीय निर्णय नहीं किया जाता है। (२) इन स्थानों के और हमारे निवास क्षेत्र रूप ज्ञात दुनिया के बीच में यदि विकट पर्वत या जलीय भाग हो गया हो तो भी वहाँ पहुँच पाना कम स भव है। (३) हमारे निवास क्षेत्र से उक्त स्थलों की दूरी का क्षेत्र भी गमनशक्ति से अत्यधिक हो तो भी पहुँचा नहीं जा सकता है।

सम्भवतः तीन तीर्थ तो जलबाधकता से अगम्य हो जाने की स्थिति में है। इसके अतिरिक्त ये सभी स्थान हमारे इस निवास क्षेत्र से अति दूरस्थ है।

हमारी वर्तमान दुनियाँ आगमिक विनीता-अयोध्या, वाराणसी, हस्तिनापुर आदि के पास की भूमि है। अतः यह प्रथम ख ड़ का मध्य स्थानीय भूमि भाग है जो ३-४ योजन प्रमाण ही है। इस स्थान से शाश्वत योजन की अपेक्षा-मागध तीर्थ एव प्रभास तीर्थ ४८७४ योजन है। वरदाम तीर्थ ११४ योजन है। दोनों शाश्वत नदियों का एक निकटतम हिस्सा १००० योजन है। गुफाएँ १२५० योजन है। एक योजन ८००० माइल का होता है। इन योजनों के माइल एव कि.मी. पृष्ट-१६ में देखें।

वर्तमान ज्ञात दुनिया का क्षेत्रावबोध– हमारी वर्तमान ज्ञात भ्रमण स चरण शील दुनिया वैज्ञानिकों द्वारा २४,००० माइल साधिक की परिधि वाली मानी गई है। जो आगमिक योजन की अपेक्षा कुल अधिकतम ३ योजन परिमाण मात्र की है। अथवा जितने भी माइल की आँकी जा रही हो उस माइल में ८००० का भाग देने पर आगमिक क्षेत्रीय योजन निकल आवेंगे। अतः ३-४ या ५-१० योजन में घूम फिरकर, खोजकर के ही स तुष्ट रहने वाले वैज्ञानिक लोग ११४ या १००० और १२५० योजन की कल्पना एव पुरुषार्थ के लिये तत्पर नहीं हो सकते। साधन एव खोजने की शक्ति नहीं है।

यह पृथ्वी वास्तव में चन्द्र के समान या प्लेट के समान चपटी गोल है। न कि गेंद के समान। वैज्ञानिक लोगों ने गेंद के समान गोल होने की कल्पना कर रखी है। जो कि चर्म चक्षु के स्वभाव के कारण होने वाला एक भ्रम मात्र है।

वैज्ञानिक मानष की स्थिति– वैज्ञानिक लोगों के मानने का या खोजने का अभी कोई अ त नहीं हुआ है अर्थात् उन्हें भ्रमण करते हुए और भी पृथ्वी का हिस्सा मिल जाय तो वे उसे मान्य कर सकते हैं। उत्तर दिशा का अ त लेने का ये वैज्ञानिक लोग परिश्रम करना भी मूर्खता भरा प्रयास मानते है अर्थात् उत्तरी दिशा में इन्हें पहाड़ और बर्फ से युक्त विकट मार्ग आगे जाने में अवरोधक होता है और शेष तीन दिशाओं में समुद्री जल विभाग ही आगे जाने में हताशा या निराशा के भावों को उत्पन्न कर देता है। अतः वैज्ञानिक अपनी कल्पित २४००० माइल वाली पृथ्वी के घेरे में ही परिक्रमा करते हैं। क्यों कि लाखों करोड़ों माइल की दूरियाँ पैदल या वायुयान, विमान राकेट आदि से कैसे

पार की जा सकती है ? इसी कारण उक्त निर्दिष्ट लाखों करोड़ों माइल दूरस्थ तीर्थ आदि का पता लगाना या पाना अत्य त कठिन हो गया है।

इसलिये उन उक्त शाश्वत स्थानों के दक्षिण भरत ख ड़ में होते हुए भी हमारे लिये उन स्थानों का गमनागमन अवरुद्ध है। क्यों कि जितनी(५-१० योजन) ज्ञात पृथ्वी वर्तमान दुनिया है। उससे सैकड़ों गुणा क्षेत्र आगे जाने पर ही ये उक्त तीर्थ आदि शाश्वत स्थान आ सकते हैं।

परिणाम सार-इस प्रकार हमारा यह भरत क्षेत्र भी इतना विशाल है कि इसके एक ख ड़ में जिसमें कि हम रहते हैं, उसका भी पार हम नहीं पा सकते, तो एक लाख योजन के जम्बूद्वीप अथवा अन्य द्वीप समुद्रों के पार पाने की बात ही नहीं हो सकती। इसी कारण ज्ञात दुनिया का क्षेत्र और अज्ञात भरत क्षेत्र में भी कई गुणा अ तर है। तब अन्य द्वीप समुद्रों की अपेक्षा में तो यह हमारी ज्ञात दुनिया अत्य त ही छोटी मालुम पड़ेगी।

इस प्रकार ज्ञात दुनिया के सामने आगम निर्दिष्ट दुनियाँ का स्वरूप रखकर समझने की कोशिश करनी चाहिये।

प्रश्न-यह चर्म चक्षु का भ्रम क्या चीज है ?

उत्तर- मानव की आखों की कीकी(शक्ति सम्पन्न य त्र बिन्दु)गोल है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना स्वत त्र दृष्टि क्षेत्र सीमित होता है। उस अपने दृष्टि क्षेत्र से भी बड़ी वस्तु यदि उसके सामने आती है तो वह उसे अपने दृष्टि क्षेत्र जितने गोलाकार रूप में देखकर अवशेष उस पदार्थ के विभाग को नहीं देखता है। उसके स्थानों पर फिर केवल शून्य स्थल रूप आकाश ही देखेगा। जिस प्रकार यदि हम एक इ च के व्यास वाली और दो इ च लम्बी एक छोटी सी गोल नली आखों के पास रख कर देखेंगे तो उस नली की गोलाई से प्राप्त होने जितना ही क्षेत्र और उतनी ही वस्तु दिखेगी उस क्षेत्र से बड़ी वस्तु को वह अपनी सीमा जितनी गोल देखकर अवशेष को छोड़ देगी।

पहाड़ी पर खड़े व्यक्तियों का दृष्टा त- उसी तरह कुछ व्यक्ति एक पहाड़ी पर खड़े है। उनके चक्षुदृष्टि क्षेत्र अर्थात् चक्षु ज्ञान शक्ति क्रमशः ५,१०, १२, १५ माइल का है। तो उसमें पहला व्यक्ति चौ तरफ पाँच पाँच माइल क्षेत्र देख कर आगे केवल आकाश या खड्डा

भूमि रहित क्षेत्र होना ही देखता है। उसी समय वही खड्डा दूसरा व्यक्ति १० माइल चौतरफ क्षेत्र देख लेता है और तीसरा चौथा व्यक्ति १२ और १५ माइल गोलाकार चौतरफ क्षेत्र देखता है। वहीं उसी समय उनको दूर दर्शक य त्र दे दिया जाय तब वही ५ माइल का घेरा देखने और कहने वाला ५० माइल का घेरा भी देखने लग जाता है।

अतः वास्तव में पृथ्वी न तो ५ मील के घेरे जैसी थी, न १० माइल के घेरे जैसी और न १२-१५ माइल के घेरे जैसी थी। साथ ही ५० माइल की घेरे जितनी भी नहीं मानी जा सकती। क्यों कि ५ मील की दृष्टि वाले को य त्र से ५० माइल दिख रहा है तो १५ माइल के दृष्टि क्षेत्र वाले को १५० माइल क्षेत्र दिख सकेगा और वही एक वृद्ध म द दृष्टि वाला खड़ा हो तो वह एक माइल के बाद ही पृथ्वी का अ त देख लेगा।

इस प्रकार यह हमारी चर्म चक्षुओं का ध्रुव स्वभाव है कि वह अपने दृष्टि सीमा से बड़ी वस्तु को चौतरफ गोल देख कर समाप्त कर लेती है। इस भ्रम के वशीभूत होकर आज के मानव को पृथ्वी का अ त दिखता है और वह गेंद जैसी गोल पृथ्वी मानने पर उतारु हो जाता है, यही चर्म चक्षु का भ्रम कहा गया है।

अतः वैज्ञानिकों की खोज का मूल सिद्धा त भ्रम पूर्ण होने से वे आगे अधिक सफल होकर भूभाग का पता नहीं लगा सकते हैं। क्योंकि पहले लक्ष्य बिन्दु का सिद्धा त सही हो तो ही उसकी ओर गमन सही गति को प्राप्त कर सकता है। लक्ष्य बिन्दु का सही सिद्धा त स्वीकार कर लेने पर भी यदि सामर्थ्य का अभाव है तो भी सफल गमन नहीं हो सकता है। यथा किसी की चलने की शक्ति का सामर्थ्य दिन भर में दो मील चलने का है तो वह एक लाख माइल क्षेत्र पैदल जाने की हिम्मत सही मार्ग जानते हुए भी नहीं कर सकता है। और कोई ज्वर रोग से व्याप्त है, उस ज्वर से उसका सामर्थ्य अवरुद्ध हे तो वह जानते देखते क्षेत्र में भी ५-१५ कदम की म जिल भी पार नहीं कर सकता।

इसी कारण वैज्ञानिक लोग मूल मान्यता के भ्रम से एव पूर्ण सामर्थ्य के अभाव से जैन सिद्धा त कथित इन क्षेत्रों स्थलों को नहीं पा सकते हैं। एव जैन सिद्धा तो के अनुसार सही जानने मानने वाले

भी सामर्थ्य के अभाव में नहीं जा सकते। यदि किसी को तप स यम या जप म त्र से कोई अलौकिक शक्ति उत्पन्न हो तो वह जा सकता है अथवा देव स्मरण कर उसे बुलाकर उसके सहयोग से इन दूरस्थ अति दूरस्थ स्थलों पर भी मानव क्षणभर में जा सकता है।

प्रश्न-क्या वैज्ञानिक लोग इतने मूर्ख माने जा सकते है कि ऐसे भ्रम को भी नहीं समझ सकते ?

उत्तर- बड़े विद्वानों के भी म तव्य भिन्न भिन्न और विपरीत हो जाते हैं। उससे वे विद्वान सभी मूर्ख नहीं कहे जा सकते। यह अपनी-अपनी चिंतनदृष्टि होती है। आज अनेक धर्मशास्त्र पृथ्वी को प्लेट के समान गोल एव अति विस्तार वाली मानते हैं और वैज्ञानिक पृथ्वी को सीमित एव गेंद के समान गोल बता रहे हैं तो क्या उन धर्म शास्त्र प्रणेताओं को सब को मूर्ख कहा जायेगा ? नहीं। ऐसा कथन करना विवेकपूर्ण नहीं है। अतः इस दृष्टि भ्रम, चिंतन भ्रम को भ्रम शब्द से ही कहा जाना उपयुक्त है।

सार-यह हमारी पृथ्वी अत्य त विशाल अरबों खरबों अस ख्य माइल की लम्बी चौड़ी गोल प्लेट के आकार से है। मानव एव वैज्ञानिकों के पास साधन शक्ति अत्यल्प है। अतः उनको प्राप्त और ज्ञात क्षेत्र जो है वह पृथ्वी का अति अल्पतम क्षेत्र है और चक्षु सीमा भ्रम से ये पृथ्वी को आकार से गेंद जैसी गोल देख व मान रहे हैं। पहाड़ों से एव समुद्री जलों से बाधित एव अति दूरस्थ होने से वे जैनागमोक्त स्थलों को देख पाने एव वहाँ पहुँचने में अक्षम है।

परिशिष्ट-२ :-

सिद्धायतनों के प्रक्षेप प्रवृति का ज्वल त प्रमाण

किसी भी शाश्वत स्थानों के मालिक देव का उस क्षेत्र के योग्य स्थान में निवास होता है। सभी द्रहों के अधिपति देवी का उसके मध्य स्थानीय पद्म पर भवन होता है, वहाँ उनका मुख्य निवास स्थान होता है। कूटों के एव गोल पर्वतों के मालिक देव उनके शिखरस्थ स्थान पर रहते हैं। वहीं उनका भवन होता है। द्रहों के अनुसार शाश्वत वृक्षों के मालिक देव का भवन उसके मध्य स्थान में अर्थात् चारों

शाखाओं के बीच में होना चाहिये अर्थात् जम्बू सुदर्शन और पूरे जम्बूद्वीप के मालिक देव का निवास भी जम्बू सुदर्शन वृक्ष की चार शाखाओं का मध्य स्थान ही होना चाहिये। उसी प्रकार कूट शाल्मली वृक्ष के मालिक देव का भी निवास स्थान चार शाखाओं का मध्य स्थान होना चाहिये। गोल पर्वतों के अनुसार मेरु पर्वत के अधिपति देव का स्थान मेरु की चूलिका पर शीर्षस्थ स्थान पर होना चाहिये।

किन्तु सिद्धायतन के पाठ प्रक्षेप की धुन वालों ने अपने प्रक्षेप परिवर्तन के सर्व सत्ता के नशे में म दर मेरु पर्वत के मालिक देव का स्थान-निवास स्थान ही गायब कर दिया है। उपलब्ध मेरु पर्वत के विस्तृत वर्णन में कहीं भी मेरु पर्वत के स्वामी अधिपति देव का भवन अवशेष नहीं रहा है। कोई भी विद्वान खोज कर देखना चाहे तो देख सकता है।

मेरु के चारों वनों की पूर्व आदि चारों दिशाओं में १६ सिद्धायतन कह दिये है। विदिशाओं में इन्द्रों के प्रासादावत सक कहे हैं। भद्रशाल वन के आठ दिशा हस्ति कूटों पर आठ अन्य देव कहे हैं। न दनवन के आठ कूटों पर देवियें हैं। बलकूट पर बलदेव है। मेरु चूलिका पर सिद्धायतन कह दिया है। अब आप देखें कि बेचारे म दर मेरु के स्वामी देव म दर के लिये एक भी स्थान नहीं बचाया है। वास्तव में मेरु की चूलिका ही उसके मालिक देव का निवास स्थान आगम में था वहाँ हमारे कुछ प्रक्षेप नशे के महारथियों ने सिद्धायतन ला पटका है। यह प्रक्षेपकारों का स्पष्ट ही भ ड़ाफोड़ हो रहा है।

इस तरह इन महारथियों ने जम्बूद्वीप के मालिक देव एव जम्बू वृक्ष के अधिपति देव के भी वृक्ष के मध्य केन्द्र स्थान पर सिद्धायतन ला रखा है और समूचे जम्बूद्वीप के मालिक देव का भी निवास स्थान केन्द्र स्थल छुड़वा दिया है।

जैन सिद्धा त में इस प्रकार के प्रक्षेप करने वाले ऐसे महान धूर्त एव जिन शासन के महान आगम चोर भी मध्यकाल में हुए हैं । जिन्होंने सत्य आगमों को भी विकृतियों से भरने का प्रयत्न किया है।

यह जैन धर्म में मूर्तिपूजा मानने एव मनवाने का प्रयत्न करने वालों की मोहा ध दशा का प्रतिफल है। धर्मी बनकर भी ऐसे महापाप के कृत्य करने वाले लाख लाख धिक्कार के पात्र हैं। ऐसे कृत्य करने वाले वे स्वय डूबने वाले एव औरों को डुबाने वाले जिन शासन पाकर भी दुर्गति के भागी बने हो तो इसमें कोई स देह नहीं है।

सार– शाश्वत स्थानों में वर्णित सिद्धायतन अनावश्यक है एव कल्पित ही फलित होते हैं। अतः सिद्धायतन वर्णित वे कई स्थान तो रिक्त हैं एव कई स्थान मालिक देव के भवन से युक्त हैं। यथा दीर्घ वैताढ्य, वर्षधर, वक्षस्कार आदि पर्वत के वे सिद्धायतन के स्थान रिक्तता को प्राप्त होते हैं। स्वत त्र कूट, वृतपर्वत के शिखर, पुष्करणियों के मध्य स्थान, वृक्षों के मध्य स्थान, मेरु चूलिका आदि के स्थान, मालिक देव के निवास भवन को प्राप्त होते हैं।

शाश्वत स्थानों में किसी व्यक्ति या सिद्ध का स ब ध स्थापित हो ही नहीं सकता है। अतः शाश्वत स्थानों का सिद्धायतन जिनालय या मूर्ति–प्रतिमा से स ब ध जोड़ना व्यर्थ का प्रयत्न एव अरण्य प्रलाप के समान निरर्थक होता है।

॥ ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र स पूर्ण ॥

ज्योतिषगण-राज प्रज्ञप्ति सूत्र परिचय

प्रश्न–१ : इस सूत्र का नाम वास्तव में क्या है ? एव इस विषयक स्पष्टीकरण क्या है ?

उत्तर– काला तर से अ गबाह्य सूत्रों के रचना के क्रम में चौदह पूर्व शास्त्रों के आधार से इस "ज्योतिष गण राज प्रज्ञप्ति" सूत्र की स कलना बहुश्रुत आचार्यों द्वारा की गई है। इस सूत्र की प्रार भिक गाथाओं में नाम निर्देश पूर्वक कथन पृच्छा की गई है। इससे सुस्पष्ट है कि यह आगम **ज्योतिषगण–राज प्रज्ञप्ति सूत्र** अथवा **ज्योतिषराज प्रज्ञप्ति के नाम** से ही बनाया गया है।

ज्योतिषम ड़ल के राजा अर्थात् इन्द्र रूप में चन्द्र और सूर्य दोनों को ही स्वीकार किया गया है। इसलिये व्यवहार एव परिचय में कभी इसके लिये सूर्यप्रज्ञप्ति या चन्द्रप्रज्ञप्ति स ज्ञक नाम भी प्रयुक्त होने लगा है। क्यों कि इस ज्योतिष गणराज प्रज्ञप्ति में च द्र एव सूर्य दोनों से सम्बन्धी प्रायः सभी विषयों का स कलन है।

किसी व्यक्ति के एक या अनेक नाम होते हैं वे ही काला तर से भ्रम के कारण दो भिन्न व्यक्ति मान लिये जाते हैं और कभी दो समान नाम वाले भिन्न व्यक्तियों को भी काला तर से भ्रम के कारण एक मान लिया जाता है, ऐसा भ्रम होना स्वाभाविक है और कई ऐतिहासिक तत्वों में भी ऐसा हुआ है।

इसी प्रकार इस आगम सम्मत सुस्पष्ट नाम वाले **ज्योतिष–गण–राज–प्रज्ञप्ति सूत्र** के भी **सूर्यप्रज्ञप्ति** और **चन्द्र प्रज्ञप्ति** ऐसे नाम प्रचलित हुए हैं और इस प्रचलन के प्रवाह में इसी सूत्र में स्पष्ट उपलब्ध नाम को भुला दिया गया है और पर्याय रूप से प्रचलित नाम ने ही पूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। काला तर से सूर्य प्रज्ञप्ति और चन्द्र प्रज्ञप्ति दो सूत्र भी माने जाने लगे हैं यह सब पर परा, प्रवाह, लिपिकाल के दोषों का प्रभाव है। वास्तव में यह सूत्र अपनी प्रारम्भिक

गाथाओं में स्वय ही बता रहा है कि मेरा नाम **ज्योतिष गणराज प्रज्ञप्ति** है। न इसमें सूर्यप्रज्ञप्ति **लिखा है और न** चन्द्रप्रज्ञप्ति।

जब एक ही इस आगम में पूर्ण समन्वय के साथ सूर्य चन्द्र स ब धी दोनों प्रकार के विषयों का सा गोपा ग प्रस्तुतीकरण कर दिया गया है तो फिर इसे केवल सूर्यप्रज्ञप्ति मान कर, चन्द्रप्रज्ञप्ति का अलग अस्तित्व करना भी भ्रम मूलक है। जो भी आज अलग अस्तित्व १-२ पृष्ट का उपलब्ध है उसमें केवल विषय परिचायक गाथाएँ एव वैसा ही पाठ मात्र है और करीब सारा वह सूचित विषय इसी सूत्र में वर्णित ही है। अतः दो सूत्र की कल्पना एव अस्तित्व, पर्याय नाम एव उनके प्रचलन की पर परा से तथा काल व्यवधान से उत्पन्न भ्रम मात्र है। अतः यह ज्योतिषगणराजप्रज्ञप्ति एक ही सूत्र पूर्वाचार्य रचित है। इसे ही चाहे सूर्य प्रज्ञप्ति कहा जाय अथवा चन्द्र प्रज्ञप्ति। इस प्रकार ये तीनों नाम एक ही सूत्र के परिचायक है ।

प्रश्न-२ : इस सूत्र का सामान्य परिचय क्या है ?

उत्तर- इस सूत्र के पहले ५ उपा ग सूत्रों का परिचय भाग-६-७-८ में दिया गया है। उसी परिचय के सिलसिले में यह आगम भी अज्ञात नामा बहुश्रुत कृत है अर्थात् लेखनकाल में देवर्द्धिगणि के नेतृत्व में इसकी भी रचना की जाना स्वीकार लेना, वही सहज समाधान के योग्य है। तत्स ब धी स्पष्ट म तव्य उन ५ उपा गों के प्रारम्भिक प्रश्न में कर दिया गया है। न दी सूत्र की आगम सूचि में इसका एक मूल भूत नाम नहीं होकर पर परा में प्रसिद्ध दो नाम उपलब्ध है जिसमें भी एक नाम कालिक सूत्रों के साथ में है और दूसरा नाम उत्कालिक शास्त्रों के साथ है। न दी सूत्र की सूचि में ऐसे २-४ नाम न दी रचना के बाद काला तर से भी १००-२०० वर्ष बाद भी स पादित हुए हैं ऐसा, तटस्थ अनुप्रेक्षा करने पर सहज समझ में आ सकता है। कुछ भी हो मूलपाठ से एक स्पष्ट नाम वाला यह शास्त्र अपना स्पष्ट एक नाम गुमाकर दो नामों से अथवा दो आगमों के रूप में प्रचलित एव प्रसिद्ध इतना हो चुका है कि आगम प्रमाण होते हुए भी इस आगम के दो नामों को छोड़कर एक नाम स्वीकार कर पर परा को परिवर्तन करना प्रायः कोई भी नहीं चाहता है। क्यों कि इस पर परा की नींव इतनी गहरी हो चुकी है कि

स्थानकवासी के ३२ शास्त्र की गिनती में एव म दिरमार्गी के ४५ आगम की गिनती में इसको दो आगम रूप में गिना जा चुका है और ३२ और ४५ की गिनती अपनी अपनी प्रतिष्ठा की बात बन चुकी है। एव जहाँ प्रतिष्ठा की बात बन जाती है वहाँ आगम प्रमाण एक या अनेक भी उपस्थित कर दिये जाय तो भी उसका कोई परिणाम नहीं आ सकता।

आकार स्वरूप- यह सूत्र एक श्रुतस्क ध रूप है, इसके अध्ययन विभागों को "पाहुड़-प्राभृत" स ज्ञा से कहा गया है। इसके अध्ययनों के अवान्तर विभाग भी है, उन्हें प्राभृत-प्राभृत अर्थात् प्रति प्राभृत कहा गया है। यह शास्त्र पूर्ण रूप से प्रश्नोत्तर शैली में है। प्रश्न की एव उत्तर की भाषा शैली भी एक विलक्षण तरीके की, "तकार" प्रयोग पूर्वक है। भाषा एव शैली सदा रचनाकार के उस समय के मानस पर ही निर्भर करती है। अनेक प्रकार की भाषा, शैली एव पद्धतियों का ज्ञाता विद्धान भी अपने तात्कालिक मानस के अनुसार ही रचना तैयार करता है। अतः आगम भाषा शैली से किसी प्रकार की एकांतिक कल्पना नहीं करनी चाहिये ।

इस सूत्र में २० प्राभृत है। कुछेक प्राभृत में प्रति प्राभृत भी है। दसवें प्राभृत में २२ प्रति प्राभृत है उसके बाद ११ से २० तक में प्रति प्राभृत नहीं है।

गणित विषय स्वाभाविक ही अल्प व्यक्तियों को रूचिकर होता है। अतः इस आगम का अध्ययन प्रचलन कम ही रहा है। जिसमें इस सूत्र के अर्थ परमार्थ के ज्ञान में और भी कठिनता अनुभव होती है। साथ ही इसके विषय का परिचय अल्प होने के कारण तथा भाषा भी विचित्र होने के कारण लिपिकाल में कुछ स्खलनाएँ होना स्वाभाविक है। इसी कारण वर्तमान युग के स पादक इसे व्यवस्थित प्रकाशित करने का प्रयत्न करते हुए भी इसके पाठों के सम्बन्ध में अनेक स देहों को उपस्थित करने का प्रक्रम भी करते हैं। इतना होते हुए भी वे समस्त स्खलनाएँ सुसाध्य है और वे स देह भी समाधान स भावित है। जिसका अनुभव इस प्रश्नोत्तर पुस्तिका से भी बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है। जिस रूप में यह ज्योतिष गणराज प्रज्ञप्ति सूत्र आज उपलब्ध है इसका परिमाण २२०० श्लोक प्रमाण माना गया है।

सूत्र विषय– इस सूत्र का विषय सीमित है वह है ज्योतिष म ड़ल का गणित विषय एव उनका परिचय अर्थात् आचार एव धर्म कथा इसमें नहीं है। इस प्रस ग से इस सूत्र में सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा इन पाँच प्रकार के ज्योतिषी गण का वर्णन है। सूर्य चन्द्र की गति, भ्रमण म ड़ल, दिन रात्रि मान एव उनकी वृद्धि हानि, प्रकाश क्षेत्र, नक्षत्रों के योग, योग काल, पाँच प्रकार के स वत्सर सम्बन्धी विविध विचारणाएँ, चन्द्र की कला वृद्धि, हानि, राहु विमान इन पाँचों ज्योतिषी गण की स ख्या एव समभूमि से दूरी आदि विषयों का सा गोपा ग वर्णन किया गया है। विशेष जानकारी क्रमिक प्रश्नोत्तर के अध्ययन से ही हो सकेगी।

इस सूत्र में दसवें प्राभृत का सतरहवाँ प्रति प्राभृत जैन समाज में चर्चा का एव स दिग्धता का विषय बना हुआ है। जो आज से नहीं सैकड़ों वर्षों से एक प्रश्न चिन्ह लिये हुए है। जहाँ आकर प्रत्येक स पादक विवेचक या तो सहम जाते हैं या कल्पनाओं में उत्तर जाते हैं। इसी गति में प्रस्तुत स स्करण में भी नया चिंतन अनुभव प्रस्तुत किया गया है जिसे पाठक गण परिशिष्ट में देख सकते हैं। उसका तात्पर्य यह है कि मा स आदि अखाद्य पदार्थों के प्रेरक वाक्य वाले पाठों को सूत्रकार या गणधर बहुश्रुत रचनाकार नहीं रच सकते हैं। ये लिपिकाल में दूषित मति लोगों के द्वारा प्रक्षिप्त एव विकृत तत्त्व है। अन्य सूत्रों में भी ऐसे तत्त्व कई रूप से देखे जा सकते हैं। जैन शास्त्रों के निर्माण कर्ता ऐसे भ्रम कारक शब्दों के प्रयोग, प्रेरणात्मक वाक्यों के रूप में किसी भी अन्य अर्थ के लक्ष्य से भी नहीं कर सकते हैं। क्यों कि वैसा करना उन्हें योग्य भी नहीं है एव उनके स यमोचित भी नहीं होता है।

सूत्र स स्करण–इस सूत्र पर आचार्य मलयगिरि की टीका उपलब्ध है जो मुद्रित है। निर्युक्तिकार श्री द्वितीय भद्रबाहु स्वामी ने भी इस सूत्र पर निर्युक्ति व्याख्या की थी, ऐसे स केत प्राप्त होते हैं। आचार्य घासीलालजी म॰सा॰ ने अपनी समस्त आगमों की टीका करने की प्रतिज्ञा के अनुसार इस सूत्र की भी टीका लिखी है। जो मुद्रित हिन्दी स स्कृत गुजराती तीनों भाषा में उपलब्ध है। इसके पूर्व आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी म॰सा॰ ने ३२ आगमों का हिन्दी अनुवाद के साथ

मुद्रण करवाया था। उसमें भी अनुवाद सहित एव आवश्यक गणित विस्तार सहित यह सूत्र मुद्रित है।

वर्तमान युग की आधुनिक आकर्षक पद्धति के स स्करण आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से मुद्रित हुए हैं। जो सूत्रों के अर्थ विवेचन टिप्पणों आदि से सुसज्जित है। ३२ ही सूत्रों का ऐसा सर्वांगीण मुद्रण पूर्ण हो चुका है जो जैन समाज के लिये असा प्रदायिक रूप की अनुपम उपलब्धि है। उस श्रृ खला में इस सूत्र का स पादन पूज्य प ॰ रत्न श्री कन्हैयालालजी म॰सा॰ "कमल" ने अर्थ परमार्थ टिप्पणों के साथ अथक प्रयत्न से किया, किन्तु कुछ स कुचित स स्कारों की प्रमुखता से उस समिति ने इस शास्त्र को मूलपाठ के रूप में ही मुद्रित करवाया है। फिर भी उसमें टिप्पण एव परिशिष्टों के द्वारा सूत्र का अल्पा श स्पष्ट किया गया है।

प्रस्तुत स स्करण– इन सभी स स्करणों विचारों एव कल्पनाओं को समक्ष रखते हुए यथाप्रस ग आवश्यक समाधानों से स युक्त करके प्रश्नोत्तर तैयार किए गए है। जिसका मूल्याँकन पाठक गण सामान्य स्वाध्यायी एव विद्वान मनीषी स्वय ही कर सकेंगे।

प्राभृत-१ : प्रतिप्राभृत-१

प्रश्न-१ : इस शास्त्र के २० प्राभृतों के मुख्य विषय क्या है एव प्राभृत-१, २, १० के प्रति प्राभृतों के आद्य विषय क्या है ? तथा प्रथम पाहुड़ के प्रथम प्रतिपाहुड़ का प्रथम सूत्र और उसका आशय क्या है ?

उत्तर– यहाँ सूत्र के प्रार भ में उत्थानिका के बाद गौतम स्वामी की पृच्छा रूप में पाँच गाथाओं द्वारा २० प्रश्न किये गये हैं, वे ही २० पाहुड़ों के मुख्य विषय है।

तदन तर गाथा-६ से ८ में प्रथम पाहुड़ के प्रतिपाहुड़ों के आद्य या मुख्य विषय सूचित किये गये हैं। फिर गाथा ९ से ११ तक में दूसरे पाहुड़ के प्रति पाहुड़ों के विषय निर्दिष्ट है। उसके बाद गाथा-१२ से १५ तक में दसवें पाहुड़ के २२ प्रतिपाहुड़ों के विषय दर्शाये गये

हैं। फिर प्रथम पाहुड़ के प्रति पाहुड़ का विषय प्रार भ किया गया है।

तदनुसार प्रथम पाहुड़ का मुख्य विषय है–कितने म ड़लों में किस प्रकार सूर्य का गमनागमन। फिर उसके पहले प्रति प्राभृत का आद्य विषय है– मुहूर्तों की न्यूनाधिकता अर्थात् सूर्यमास, ऋतुमास, च द्रमास और नक्षत्र मास में मुहूर्त स ख्या हीनाधिक होती है। उसे दर्शाने वाला प्रथम सूत्र इस प्रकार है– मूलपाठ–

ता कह ते वुड्ढो वुड्ढी मुहुत्ताण आहिएत्ति वएज्जा ? ता एवामेव वुड्ढोवुड्ढी मुहुत्ताण आहिएत्ति वएज्जा, त जहा– ता सूर मासे णव पण्णरस्स मुहुत्तसए आहिएत्ति वएज्जा । ता उउ मासे नव मुहुत्त सए आहिएत्ति वएज्जा । ता च दमासे अट्ठ प चासीए मुहुत्त सए, तीस च बावट्ठी भागे मुहुत्तस्स आहिएत्ति वएज्जा । ता णक्खत्त मासे अट्ठ एगूणवीसे मुहुत्तसए सतावीस च सत्तट्ठि भागे मुहुत्तस्स आहिएत्ति वएज्जा ।

इस सूत्र का तात्पर्य :– एक युग में १८३० दिन x एक दिन में मुहूर्त ३०=एक युग में ५४९०० मुहूर्त। १ युग में– सूर्यमास–६०, नक्षत्रमास–६७, च द्रमास–६२ और ऋतुमास–६१ होते हैं। युग के मुहुर्तों में प्रत्येक के युगमासों का भाग देने पर एक-एक मास के मुहुर्त निकल जाते हैं। मूल प्रश्न यही है कि सूर्य आदि प्रत्येक के मास में मुहूर्त हीनाधिक कितने होते हैं ? उत्तर में नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र और ऋतुमास की मुहूर्त स ख्या दर्शाई है उसमें कुछ कुछ हीनाधिकता है वह स्पष्ट है। इस प्रश्न का आशय सब की मासिक मुहुर्त स ख्या दर्शाकर उसमें होने वाली हीनाधिका स्पष्ट करना है। सबसे अधिक सूर्यमास के मुहुर्त है, उससे ऋतुमास के कम, उससे च द्रमास के कम, उससे नक्षत्र मास के कम, यों सबसे कम नक्षत्रमास के मुहूर्त है। सूत्र में उसी का पाठ अवशेष है, शेष तीन का पाठ कभी लिपिदोष से छूट गया, जिससे सूत्र में प्रश्न का उत्तर अस्पष्ट लगता है। प्रस्तुत में हमने पूरा मूलपाठ दिया है। जिससे इस सूत्र के विषय में कोई स शय नहीं रहता है।

सूत्रानुसार एक सूर्य मास में मुहूर्त स ख्या–९१५ है। ऋतुमास में मुहूर्त स ख्या–९०० है। चन्द्र मास में मुहूर्त स ख्या–८८५ है और नक्षत्रमास में मुहूर्त स ख्या–८१९ है। यह सभी स ख्या परस्पर हीनाधिक

है किन्तु समान नहीं है। सूत्र में प्रश्न है– मुहूर्तों की हीनाधिकता किस प्रकार है ? उत्तर है सूर्य आदि ४ के मासों की मुहूर्त स ख्या इस प्रकार हीनाधिक है।

प्रश्न–२ : सूर्य के म ड़ल कितने हैं और वह उनमें किस प्रकार परिभ्रमण करता है ?

उत्तर– सूर्य के १८४ म ड़ल है। पहला म ड़ल मेरु पर्वत की तरफ अ दर में है और १८४वाँ म ड़ल बाहर की तरफ लवण समुद्र की सीमा के ऊपर है। एक वर्ष में २ अयन होते है वे ६–६ महीने के होते हैं। सूर्य बाहर जाते प्रथम दिन दूसरे म ड़ल से परिक्रमा प्रारम्भ कर १८४ वें म ड़ल के १८३ वें दिन एक अयन की परिक्रमा पूर्ण करता है। फिर वापिस अ दर तरफ आता है जिसमें पहले दिन १८३वें म ड़ल में चलता है और १८३वें दिन अ दर पहुँचकर प्रथम म ड़ल में चलता है तब एक वर्ष सूर्य का १८३+१८३=३६६ दिन का पूरा होता है।

इस तरह सूर्य एक वर्ष में प्रथम और १८४वें म ड़ल में एक बार चलता है और शेष २ से १८३वें म ड़ल में दो बार चलता है जिससे १+(१८२x२)+१=३६६ म ड़ल परिक्रमा एक वर्ष में पूर्ण करता है। १८४वें म ड़ल में वह एक बार १८३वें दिन चलता है और प्रथम म ड़ल में वह एक बार ३६६वें दिन चलता है।

पहले दिन सूर्य दूसरे म ड़ल में और १८२वें दिन १८३वें म ड़ल में प्रथमबार चलता है। फिर १८४वें दिन पुनः १८३ वें म ड़ल में चलता है (१८३वें दिन १८४वें म ड़ल में होने से)और ३६५ वें दिन पुनः दूसरे म ड़ल में चलता है। (३६६वें दिन प्रथम म ड़ल में होने से) इस प्रकार बीच के १८२ म ड़ल में जाते और आते दोनों बार चलता है। १८४वें म ड़ल में बाहर जाते समय अ तिम दिन एक बार चलता है और पहले म ड़ल में अ दर आते समय अ तिम दिन एक बार चलता है।

इस प्रकार सूर्य वर्ष का प्रारम्भ दूसरे म ड़ल से करके वर्ष का अ त ३६६ वें दिन प्रथम म ड़ल में पूर्ण करता है और प्रथम अयन को अर्थात् छट्ठे महीने को पूर्ण १८४वें म ड़ल में करता है।

सार–सूर्य प्रथम अयन दूसरे म ड़ल से प्रारम्भ करके १८४वें म ड़ल में पूर्ण करता है और दूसरा अयन १८३ वें म ड़ल में प्रारम्भ करके प्रथम

म ड़ल में पूर्ण करता है। इस तरह प्रत्येक अपेक्षा से स्पष्ट है कि सूर्य पहले और अ तिम म ड़ल में वर्ष में एक बार और शेष बीच के १८२ म ड़ल में आते और जाते यों दो बार एक वर्ष में चलता है।

प्रश्न-३ : अठारह मुहूर्त का दिन और १२ मुहूर्त की रात्रि आदि कब होती है ?

उत्तर- वर्ष के अ तिम दिन जब सूर्य प्रथम म ड़ल में रहता है उस दिन १८ मुहूर्त का सबसे बड़ा दिन और १२ मुहूर्त की सबसे छोटी रात्रि होती है। १८३वें दिन जब सूर्य १८४वें म ड़ल में चलता है तब १२ मुहूर्त का दिन और १८ मुहूर्त की रात्रि होती है। वर्ष के पहले दिन दूसरे म ड़ल में सूर्य चलता है उस दिन २/६१ मुहूर्त दिन कम होता है। २/६१ मुहूर्त रात्रि अधिक हो जाती है। १८३ दिन चलकर १८४ वें म ड़ल में सूर्य आता है तब २/६१x१८३=६ मुहूर्त दिन छोटा हो जाता है और रात्रि बड़ी हो जाती है। इसलिये १८४वें म ड़ल में रात्रि सबसे बड़ी और दिन सबसे छोटा होता है अर्थात् १८ मुहूर्त की रात्रि और १२ मुहूर्त का दिन होता है।

इस प्रकार सबसे बड़ा दिन एक बार प्रथम म ड़ल में वर्ष के अ तिम दिन आता है और सबसे छोटा दिन एक बार प्रथम अयन के अ तिम दिन १८४वें म ड़ल में होता है। शेष सभी छोटे बड़े दिन दूसरे म ड़ल से १८३वें म ड़ल में दो दो बार होते हैं।

१८४ का आधा ९२ होता है, ९२वें ९३वें म ड़ल में सूर्य जब चलता है तब १५ मुहूर्त का दिन और रात्रि होने का समय होता है किन्तु गणित योग से परिपूर्ण १५ मुहूर्त का दिन नहीं होकर १५-१/६१ मुहूर्त का स योग आ जाता है। अतः सूत्र में कहा गया है बराबर(एक्जेट) १५ मुहूर्त का दिन नहीं होता है। सूक्ष्म(अनुपातगति) से ९२वें म ड़ल के बीच अर्ध में सूर्य हो तब १५ मुहूर्त पूर्ण का स योग होता है। फिर भी वह ९२वाँ पूरा दिन तो १५ मुहूर्त से कुछ १/६१ मुहूर्त अधिक हो जाता है।

इस प्रकार-१ बार बड़ा दिन + १ बार छोटा दिन और १८२ मध्यम दिन दो बार, एक वर्षमें = ३६६ दिन में होते है। १+१+१८२ x २=३६६ दिन का सूर्य वर्ष होता है।

यह दिन रात्रि का घट-वध सूर्य के तापक्षेत्र की घट-वध से

होता है। बाहर जाते समय सूर्य का ताप(प्रकाश)क्षेत्र घटने से दिन छोटे होते है और बाहर से अ दर आते समय सूर्य का तापक्षेत्र बढ़ने से दिन क्रमशः बड़े होते जाते हैं।

प्राभृत-१ : प्रतिप्राभृत-२

प्रश्न-१ : जम्बूद्वीप में दो सूर्य है और म ड़ल १८४ ही है तो दोनों किस तरह चलते हैं ?

उत्तर- दोनों सूर्य हमेशा आधा-आधा म ड़ल चलते हैं तब दोनों मिलकर एक म ड़ल पूरा करते हैं। दूसरे दिन अगले म ड़ल को भी दोनों मिलकर पूरा करते हैं। वह इस प्रकार समझना-

वर्ष के अ तिम दिन दोनों सूर्य प्रथम म ड़ल में परिभ्रमण करके अ त में भारतीय सूर्य पूर्व में रहता है और ऐरवतीय सूर्य पश्चिम में रहता है। दूसरे वर्ष के प्रार भ में दोनों दूसरे म ड़ल पर भ्रमण करते है। भारतीय सूर्य पूर्व से प्रारम्भ होकर दक्षिण में भ्रमण कर अ त में पश्चिम में पहुँचता है और ऐरवतीय सूर्य पश्चिम से रवाना होकर उत्तर में भ्रमण करते हुए अ त में पूर्व में पहुँचता है। इस तरह वर्ष के प्रथम दिन ऐरवतीय सूर्य उत्तरीय अर्धम ड़ल पार करता है। भारतीय सूर्य दक्षिणी अर्धम ड़ल पार करता है। वर्ष के दूसरे दिन दोनों तीसरे म ड़ल में चलते है तब भारतीय सूर्य उत्तरार्ध में चलता है। ऐरवतीय दक्षिणार्ध में चलता है यों दोनों मिलकर दूसरे दिन तीसरा म ड़ल पूरा करते है।

इस तरह पहले दिन भारतीय सूर्य दक्षिणार्ध में चलता है तो १८३वें दिन १८४वें म ड़ल के भी दक्षिणार्ध में चलकर अ त में पश्चिम में पहुँचता है तब ऐरवतीय सूर्य १८४वें म ड़ल का उत्तरार्ध चलकर अ त में पूर्व में पहुँचता है। यहाँ ६ महीने का प्रथम अयन पूरा हुआ।

दूसरे अयन के प्रथम दिन दोनों सूर्य १८३वें म ड़ल में चलते है तब भारतीय सूर्य जो पश्चिम में पहुँचा हुआ होता है वह उत्तरार्ध में चलता है और ऐरवतीय सूर्य जो पूर्व में पहुँचा हुआ है वह दक्षिणार्ध म ड़ल में चलता है। १८३वाँ जो उत्तरार्ध में चलता है वह अ त में पहला म ड़ल भी उत्तरार्ध में चलेगा और १८३वाँ जो दक्षिणार्ध में चलता है वह

पहले म ड़ल का भी दक्षिणार्ध पार करता है। अतः एरावतीय सूर्य पहले म ड़ल को दक्षिण में चल कर उस दिन के अ त में पश्चिम में पहुँचता है और भारतीय सूर्य उत्तरार्ध में चलकर दिन के अ त में पूर्व में पहुँचता है। इस प्रकार दोनों सूर्य वर्ष के अ त में पहले जहाँ थे वहीं पहुँचते हैं और दूसरे वर्ष में पुनः पहला वर्ष का प्रारम्भ दिन जिधर चले थे उधर ही प्रथम दिन चलते है अर्थात् भारतीय सूर्य पहले दिन दक्षिण में दूसरे म ड़ल में चलता है और ऐरवतीय सूर्य उत्तर में दूसरे म ड़ल में चलता है। इस प्रकार प्रतिवर्ष का प्रारम्भ और अ त तथा दूसरे अयन का प्रारम्भ-अ त यथास्थान ही करते है।

यों आधा आधा म ड़ल दोनों ३०-३० मुहूर्त में पार करते है जिससे ३० मुहूर्त में एक म ड़ल पूरा हो जाता है फिर दूसरे ३०-३० मुहूर्त में अर्थात् अगले दिन दोनों अगले म ड़ल में चलते है। इस प्रकार १८४ म ड़ल होते हुए दोनों सूर्य उनकी परिक्रमा करते रहते हैं।

तात्पर्य यह है कि भारतीय सूर्य वर्ष के प्रथम दिन दूसरा म ड़ल आधा दक्षिणार्ध पार करता है, दूसरे दिन वह तीसरा म ड़ल आधा उत्तरार्ध को पार करता है। यों एक सूर्य एक पूरा चक्कर दो दिन दो आधे म ड़लों से मिलकर पूरा करता है। इस अपेक्षा से ३६६ दिन में एक एक सूर्य १८३-१८३ पूरे चक्कर पार करता है अर्थात् प्रत्येक सूर्य मेरु की प्रदक्षिणा एक वर्ष में १८३ बार करते हुए ३६६ दिन रात बनाते है। प्रत्येक सूर्य १८३ दिनरात उत्तरार्ध क्षेत्र में और १८३ दिन रात दक्षिणार्ध क्षेत्र में बनाता है। उत्तरार्धक्षेत्र=पश्चिम महाविदेह के उत्तरी किनारे से चलता है और पूर्वी महाविदेह के दक्षिणी किनारे तक पार करता है। दक्षिणार्ध क्षेत्र=पूर्व महाविदेह के अ तिम दक्षिणी किनारे से प्रारम्भ कर पश्चिमी महाविदेह पार कर उसके उत्तरी किनारे पहुँचता है अर्थात् उत्तरार्ध में चलने वाला सूर्य ऐरवत क्षेत्र और पूर्व महाविदेह में चलता है और दक्षिणार्ध में चलने वाला भरत क्षेत्र में होते हुए पश्चिमी महाविदेह को पार कर लेता है।

यह दो सूर्य की १८४ म ड़ल चलने की विधि व्यवस्थित चलती रहती है। वर्ष के अ तिम दिन के अ त में अपने ध्रुव स्थान में पहुँच जाते हैं। भारतीय सूर्य का ध्रुव स्थान, पूर्व में है और ऐरवतीय सूर्य का ध्रुव

स्थान पश्चिम में है। पश्चिम वाला नये वर्ष के प्रथम दिन नील पर्वत के ऊपर से चलना प्रारम्भ करता है और पूर्व वाला निषध पर्वत के ऊपर से चलना प्रारम्भ करता है।

सूर्य वर्ष का प्रथम दिन १४ जून होता है और दूसरे अयन का प्रथम दिन १४ जनवरी होता है। सूर्य की परिक्रमा का वर्ष १३ जून को पूरा होता है और सूर्य का प्रथम अयन १३ जनवरी को पूरा होता है। सूर्य वर्ष के प्रारम्भ और अ तिम दिन तारीख से निश्चित चलते हैं। उसकी अपेक्षा तिथि में और महीने में कुछ-कुछ अ तर रहता है अर्थात् १४ जून के लिये कोई भी तिथि सातम या एकम आदि हो सकती है। कभी आषाढ़ या जेठ मास १४ जून को हो सकता है। वदी पक्ष या सुदी पक्ष दोनों में से कोई भी १४ जून को हो सकता है।

क्यों कि तिथि वाला वर्ष चन्द्र वर्ष है वह ३५५-५६ दिन का होता है जब कि सूर्य वर्ष ३६६ दिन का होता है। इसलिये तारीख और तिथि में फर्क चलता रहता है।

प्राभृत-१ : प्रतिप्राभृत-३

प्रश्न-१ : दोनों सूर्य बाहर जाते समय जिस मार्ग से चलते है वापिस अ दर आते उसी मार्ग से चलते है या एक दूसरे के चले हुए पर चलते है ?

उत्तर- ज बूद्वीप में दो सूर्य है- (१) भारतीय सूर्य (२) ऐरवतीय सूर्य जो पश्चिम के केन्द्रस्थान से वर्ष प्रार भ कर ऐरवत क्षेत्र में प्रथम दिन चलता है वह ऐरवतीय सूर्य है और जो पूर्वी केन्द्रस्थान से वर्ष प्रार भ कर भरत क्षेत्र में प्रथम दिन चलता है वह भारतीय सूर्य है ।

बाहर जाते समय दोनों सूर्य १८३ अर्ध म ड़ल में स्वत त्र रूप से चलते है किसी के चले पर चलने का कोई हेतु नहीं है। किन्तु वापिस आते समय तो कभी खुद के चले पर कभी दूसरे के चले मार्ग पर चलना जरूरी हो जाता है। सूर्यों के चलने के मार्ग चूड़ी के आकार नहीं होकर जलेबी आकार से होते है। जाते समय जलेबी अ दर से बाहर बनाने जैसी होती है और बाहर से अ दर आते समय जलेबी कोई कुशल

कारीगर बाहर अ दर घूमाते हुए बनावे वैसे दोनों सूर्य गति करते हुए यथा समय स्वतः अगले म ड़ल पर पहुँच जाते है। कारीगर हाथ को इस तरह घूमाता है कि एक चक्कर पूरा होते ही स्वतः वह अगले चक्कर के मार्ग में आ जाता है। पूरे घेरे में कारीगर इसी तरह हाथ को घूमाते हुए चूड़ी के आकार नही घूमाकर आगे बढ़ते हुए हाथ घूमाता है। ठीक उसी तरह दोनों सूर्य पूरे एक दिन अर्ध घेरे में इस तरह आगे बढ़ते हुए परिक्रमा करते है कि अर्धम ड़ल पूर्ण होते ही वे २ योजन आगे अगले म ड़ल में पहुँच जाते है।

क्यों कि प्रत्येक म ड़ल में दो योजन का अ तर होता है और ४८/६१ योजन खुद सूर्य का आयाम विष्क भ होता है। अतः सूर्य १ म ड़ल चलने में २-४८/६१ योजन आगे खिसक जाता है तो १८३ म ड़ल चलने पर २-४८/६१ x १८३=५१० योजन क्षेत्र आगे खिसक जाता है। यों सूर्य के भ्रमण का कुल क्षेत्र प्रथम म ड़ल से अ तिम म ड़ल तक ५१० योजन का अर्थात् १८० योजन ज बूद्वीप में ३३० योजन लवण समुद्र में होता है।

जलेबी आकार चलने से तथा आते समय दोनों सूर्य की दिशा पलट हो जाने से दोनों सूर्य कहीं कुछ देर खुद के चले पर चलते है कहीं अन्य के चले पर चलते है कहीं नये मार्ग पर भी चलते हैं, बाहर जाते समय की जलेबी और अ दर आते समय की जलेबी के सारे मोड़ और स्थल बदल जाते हैं। अतः पुराने मार्ग को थोड़ा चल कर फिर काटते हुए चलते है।

चलित-अचित तथा स्वचलित-परचलित मार्ग की गणित करके बताने के लिये शास्त्रकार ने एक पूरे म ड़ल के १२४ भाग कल्पित किये हैं। अतः आधे म ड़ल के ६२ भाग होंगे। उसमें एक सूर्य एक अर्ध म ड़ल में एक बार १८/१२४ भाग स्वचलित पर चलकर उस म ड़ल को काटकर आगे चलता है और १८/१२४ भाग पर चलित मार्ग पर चलकर फिर उसको काटकर आगे बढ़ता है इसी तरह एक अर्ध म ड़ल में सूर्य ३६/१२४ भाग कुल चले पर चल कर दो बार काटता है और ६२-३६=२६/१२४ भाग नये मार्ग पर अर्थात् किसी के नहीं चले मार्ग पर चलता है।

इस तरह प्रतिदिन दोनों सूर्य एक अर्ध म ड़ल पार करने में ३६

भाग चले पर और २६ भाग नये मार्ग पर चलते है। जिसमें भी स्व चलित १८ भाग पर और परचलित १८ भाग पर चलते हैं। कुल एक दिन में एक अर्धम ड़ल के १८+१८+२६=६२ भाग एक सूर्य और ६२ भाग दूसरा सूर्य चलता है यों ६२+६२=१२४ भाग दोनों मिलकर एक म ड़ल पूर्ण परिपूर्ण एक दिन में चलते है।

प्रश्न-२ : कहाँ किस जगह किस म ड़ल पर स्वचलित परचलित और अचलित पर दोनों सूर्य चलते हैं ?

उत्तर-इसे चार्ट में देखें-

भारतीय सूर्य

ज बूद्वीप के	दक्षिण पूर्व भाग में	९२ म ड़लों में	स्वचलित पर
ज बूद्वीप के	उत्तर पश्चिम भाग में	९१ म ड़लों में	स्वचलित पर
ज बूद्वीप के	उत्तर पूर्व भाग में	९२ म ड़लों में	पर चलित पर
ज बूद्वीप के	दक्षिण पश्चिम भाग में	९१ म ड़लों मे	पर चलित पर

ऐरवतीय सूर्य

ज बूद्वीप के	उत्तर पश्चिम भाग में	९२ म ड़लों में	स्वचलित पर
ज बूद्वीप के	दक्षिण पूर्वी भाग में	९१ म ड़लों में	स्वचलित पर
ज बूद्वीप के	दक्षिण पश्चिम भाग में	९२ म ड़लों में	पर चलित पर
ज बूद्वीप के	उत्तर पूर्व भाग में	९१ म ड़लों में	पर चलित पर

इस प्रकार दोनों सूर्य मिलकर १८३ दिन में ७३२ जगह १८३ म ड़लों को काटते है तो १ दिन में १ म ड़ल को ४ जगह काटते है (७३२÷१८३=४)। ४ जगह दो सूर्य मिलकर काटते है तो एक सूर्य एक अर्ध म ड़ल को १ दिन में २ जगह काटकर आगे बढ़ता है जिसमें वह १८/१२४ भाग चलकर फिर काटकर आगे बढ़ता है। अर्थात् बिना चले किसी मार्ग को नहीं काटता है। १८ भाग चलकर फिर नये मार्ग पर चलने लगता है फिर १३ भाग अचलित पर चलकर फिर चलित १८ भाग चलता है यों एक अर्धम ड़ल में १८ चलित+१३अचलित+ फिर १८ चलित +फिर-१३ अचलित यों कुल अर्धम ड़ल १८+१३+१८ +१३=६२ भाग का होता है क्यों कि पूरे म ड़ल के १२४ भाग कल्पित किये हैं। इस प्रकार प्रथम अयन में बाहर जाते समय दोनों सूर्य नये

स्वत त्र मार्ग पर चलते है और अ दर आते समय १८३ म ड़लों को दोनों मिल ७३२ जगह चलकर काट कर आगे बढ़ते हैं। इस प्रकरण को समझने के लिये जलेबी बनाने के दो प्रकार अच्छी तरह ध्यान में रख लेने चाहिये जिससे समझने में कोई उलझन नहीं आयेगी।

प्राभृत-१ : प्रतिप्राभृत-४

प्रश्न-१ : दोनों सूर्य आपस में एक दूसरे से कितने दूर रहते हैं?

उत्तर- दोनों सूर्य हमेशा हर समय आमने सामने ही रहते हैं। वर्ष के अ तिम दिन अ त में भारतीय सूर्य पूर्व में निषध पर्वत के पास होता है, तब ऐरवतीय सूर्य पश्चिम में नील पर्वत के पास होता है। इस प्रकार सदा बराबर चाल से चलते है अतः आमने सामने ही रहते है। दोनों सूर्यों को मिलाती हुई रेखा यदि खींची जाय तो जम्बूद्वीप के बराबर दो विभाग होते हैं। इस तरह इन दोनों की सीध सदा कायम रहती है कि तु दूरी बढ़ती घटती रहती है। अपने ध्रुव स्थान पर जब दोनों होते हैं तब वर्ष के अ तिम दिन प्रथम म ड़ल के अ त में दोनों की आपसी दूरी ९९६४० योजन की होती है। यह पूर्व-पश्चिम की दूरी है गोलाई की अपेक्षा दोनों की दूरी जम्बूद्वीप की जगती के आधे से कम होती है। क्यों कि ज बूद्वीप की चौड़ाई १ लाख योजन की है और इन दोनों की आपसी दूरी एक लाख योजन में ३६० योजन कम अर्थात् ९९६४० योजन होती है। अतः ३६० की ३.१६ गुणी परिधि उस म ड़ल की कम होती है। अतः गोलाई की अपेक्षा उनकी दूरी जगती की गोलाई के आधे से कम कही गई है।

जब दोनों अपने ध्रुव स्थान से नये वर्ष में आगे बढ़ते हैं तो दोनों की दूरी सदा बढ़ती जाती है और अ दर आते समय वह दूरी वापिस घटती जाती है और वर्ष के अ तिम दिन पुनः ९९६४० योजन की आपसी दूरी हो जाती है।

दूरी बढ़ने का कारण यह है कि जलेबी के आकार से दोनों सूर्य आगे बढ़ते हैं। एक म ड़ल से दूसरे म ड़ल में २ योजन की दूरी होती और खुद सूर्य २ योजन से आगे चलता है तो उसकी(विमान

की) चौड़ाई ४८/६१ वह भी प्रति दिन प्रति म ड़ल के साथ बढ़ती है। अतः १ दिन में एक सूर्य २-४८/६१ योजन आगे बढ़ता है। दूसरा सूर्य भी इतना ही आगे बढ़ता है तो प्रथम दिन के अ त में दोनों की आपसी दूरी ५-३५/६१ योजन, ९९६४० योजन में बढ़ जाती है। यों १८३ म ड़ल १८३ दिन में पार करते है तो दोनों मिलकर ५-३५/६१x १८३=१०२० योजन दूरी बढ़ाते हैं। जिससे १८४वें म ड़ल के अ त में १८३ वें दिन के अ त में दोनों सूर्यों की दूरी ९९६४०+१०२०=१००६६० योजन हो जाती है। यह स्थूल दृष्टि से है। सूक्ष्म दृष्टि से दोनों सूर्य खुद की चौड़ाई जितने क्षेत्र को अवगाहन १८४वें म ड़ल के आगे के क्षेत्र को करते हैं। अतः दोनों सूर्यों के अपने विमान अ तिम किनारे से अ तिम किनारा १००६६०+४८/६१x२=१-३५/६१ योजन अधिक होता है।

स क्षेप में एक सूर्य ६ महिने में ५१० योजन और ४८/६१ योजन आगे बढ़ता है और ६ महिने पुनः इतना अ दर आ जाता है। दोनों सूर्य मिलकर ५१०-४८/६१+५१०-४८/६१=१०२१-३५/६१ क्षेत्र अवगाहन बढ़ाते है और दूरी तो ५१०+५१०=१०२० योजन ही बढ़ाते हैं। १-३५/ ६१ अ तिम म ड़ल के बाहर विमान का अवगाहन क्षेत्र गिना गया है। क्योंकि वे दोनों १८४वाँ म ड़ल तो पार कर लेते है उस अ तिम दो योजन को पार करके खुद उसके बाहर आगे की जगह का अवगाहन करते है अतः अवगाहन क्षेत्र ४८/६१+४८/६१=१-३५/६१ योजन ज्यादा होता है।

प्रश्न-२ : दोनों सूर्य की आपसी दूरी के स ब ध में जगत में अन्य मान्यताएँ भी है क्या ?

उत्तर- इस स ब ध में ५ मिथ्या मान्यता भ्रम से चलती है। यथा- (१) दोनों सूर्यों का परस्पर अ तर ११३३ योजन रहता है। (२) ११३४ योजन परस्पर अ तर होता है। (३) ११३५ योजन का अ तर। (४) एक द्वीप समुद्र जितना आपस में अ तर होता है। (५) दो द्वीप दो समुद्र जितना अ तर होता है। (६) तीन द्वीप समुद्र जितना दोनों सूर्यों का सदा अ तर रहता है। ये सभी कल्पित चलाई हुई भ्रमपूर्ण मिथ्या मान्यताएँ है। सही मान्यता स्वमत की आगमकार ने बता दी है जो प्रथम प्रश्न में समझा दी गई है।

प्राभृत-१ : प्रतिप्राभृत-५

प्रश्न-१ : सूर्य का भ्रमण क्षेत्र कितना है ?

उत्तर- सूर्य ५१० योजन क्षेत्र में प्रथम म ड़ल से १८४ वें म ड़ल में और फिर पुनः प्रथम म ड़ल में आता है। सदा इसी ५१० चौड़े योजन क्षेत्र में रहते हुए मेरु के परिक्रमा लगाते हैं। ५१० में १८० जम्बूद्वीप की सीमा के है फिर आगे के ३३० योजन लवण समुद्र की सीमा के है। अर्थात् प्रथम म ड़ल में सूर्य १८० योजन जम्बूद्वीप के किनारे से अ दर होता है और अ तिम म ड़ल में ज बूद्वीप के किनारे ३३० योजन लवण समुद्र में होता है। यह ५१० योजन का चूड़ी आकार क्षेत्र बनता है। इसी सीमा में रहकर दोनों सूर्य भ्रमण करते रहते हैं। कभी भी जम्बू द्वीप के १८० योजन से ज्यादा अ दर नहीं आते अर्थात् मेरु पर्वत से दोनों सूर्य(१ लाख-१० हजार= ९००००÷२=४५०००-१८०)=४४८२० योजन कम से कम दूर रहते है और अधिकतम दूरी ४४८२०+५१०= ४५३३० योजन मेरु से दूर रहते हैं। न्यूनतम दूरी प्रथम म ड़ल में होती है और अधिकतम दूरी अ तिम १८४वें म ड़ल में होती है।

प्रश्न-२ : इस विषय में जगत में अन्य मान्यताएँ होती है क्या ?

उत्तर- पाँच अन्य मान्यताएँ है- (१) ११३३ योजन द्वीप में और इतना ही समुद्र के क्षेत्र में सूर्य गमनागमन करते हैं। (२) ११३४ योजन द्वीप के क्षेत्र में और इतना ही समुद्र के क्षेत्र में दोनों सूर्य गमनागमन करते हैं। (३) ११३५ योजन द्वीप के और ११३५ योजन समुद्र के क्षेत्र में सूर्य परिभ्रमण करते हैं। (४) आधाद्वीप और आधा समुद्र में सूर्य गमनागमन करते हैं। (५) कि चित भी द्वीपसमुद्र का अवगाहन नहीं करते। ये पाँचों मान्यताएँ अयथार्थ है। सही मान्यता प्रथम प्रश्न में बता दी गई है ।

प्राभृत-१ : प्रतिप्राभृत-६

प्रश्न-१ : सूर्य गोलाकार(जलेबी के आकार से) भ्रमण करते हुए कितना विक पन करता है अर्थात् कितना आगे बढ़ता है ?

उत्तर- प्रत्येक सूर्य एक अहोरात्र में भ्रमण करते हुए २-४८/६१योजन क्षेत्र आगे बढ़ता है जिसमें दो योजन एक-एक म ड़ल की दूरी का एव ४८/६१खुद के आयाम विष्क भ का यों कुल मिलाकर प्रतिदिन २-४८/६१योजन क्षेत्र का विक पन करता है अर्थात् जलेबी के आकार से चलते हुए एक चक्कर(राउन्ड़) में इतना आगे बढ़ जाता है यों बाहर जाते जाते १८३ दिन में ५१० योजन आगे बढ़कर १८४वें म ड़ल को पार कर लेता है । इसी तरह १८४वें म ड़ल से पुनः लौटकर अ दर प्रथम म ड़ल के पहुँचने तक भी १८३ दिन में ५१० योजन पार कर लेता है।

इस विषय में अन्य मिथ्या मान्यताएँ **सात** है। जो २,३,४ योजन या उनसे कुछ साधिक योजन का विक पन मानते है। वे सभी भ्रमयुक्त एव कल्पित मान्यताएँ है। सही मान्यता यहाँ स्पष्ट बता दी गई है उसे ही ठीक से समझ लेना।

प्राभृत-१ : प्रतिप्राभृत-७

प्रश्न-१ : च द्र सूर्य आदि के विमान का आकार कैसा है ?

उत्तर- सूर्य-चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा सभी ज्योतिषी विमान छत्राकार है, अर्ध कबीढ़ फल के आकार वाले है अर्थात वे नीचे से समतल और ऊपर से गोल तथा चौतरफ गोलाकार उल्टे रखे अर्ध कबीढ़ फल के समान है। कबीढ़ फल के समान ही आधी काटी गई मोस बी भी समझ सकते हैं।

इससे अधिक स्पष्टीकरण पाठ में नहीं मिलता है। वह अनुमान या अनुभव से समझ लेना कि या तो ऊपर से कुछ भाग खुला होगा अथवा ब द हो तो फिर कहीं न कहीं एक या अनेक बाहर आने जाने

के मार्ग-द्वार होंगे। कुछ भी व्यवस्था स्वीकार लेना चाहिये। चित्र-आकृति बनाने वाले पूर्व पर परा से ऊपर से खुला बताकर विमान के अ दर उन ज्योतिषी देवों के परिवार सहित रहने के भवन-महल आदि होते है उनके गुम्बजों से ऊपर गोलाई बताते है। यह भी चित्र-आकृति की पर परा मात्र है।

इस विषय में भी आठ अन्य मान्यताएँ है, यथा- (१) सम चौरस (२) विषम चौरस (३) सम चौकोन (४) विषम चौकोन (५) सम चक्रवाल (६) विषम चक्रवाल (७) अर्ध चक्रवाल (८) शास्त्रोक्त सही मान्यता वाले भी अर्थात् छत्राकार-अर्धकबीठाकार स स्थान मानने वाले जगत में मता तर होते, वे इस विषय में जिनानुमत सम्मत होते हैं।

प्राभृत-१ : प्रतिप्राभृत-८

प्रश्न-१ : सूर्य के चलने के जो गोलाकार म ड़ल-मार्ग है उनका विष्क भ कितना होता है और परिधि कितनी होती है ?

उत्तर- सूर्य के प्रत्येक म ड़ल (मार्ग) की चौड़ाई ४८/६१ योजन होती है क्यों कि सूर्य विमान की लम्बाई चौड़ाई इतनी ही है। म ड़ल-म ड़ल में अ तर २-२ योजन होता है। पूरे म ड़ल का विष्क भ एक दिशा में २-४८/६१ योजन बढ़ता है। दोनों दिशा में मिलाकर ५-३५/६१ योजन कुल विष्क भ प्रतिम ड़ल में (एक म ड़ल से अगले म ड़ल का) बढ़ जाता है। तीन गुणी साधिक परिधि हुआ करती है-५-३५/६१x ३ साधिक(३.१६ साधिक)=१७-३८/६१ योजन प्रति म ड़ल में परिधि बढ़ती है। जिसे ही स्थूल दृष्टि से १८ योजन परिधि बढ़ना कहा जाता है, वास्तव में देशोन १८ योजन परिधि बढ़ती है।

सर्व आभ्य तर म ड़ल ज बूद्वीप के एक किनारे से १८० योजन अ दर है दूसरे किनारे से भी १८० योजन अ दर है यों कुल एक लाख योजन के आयाम विष्क भ(व्यास) में से ३६०योजन कम होते हैं इसे साधिक तीन गुणा करने पर ११३८ योजन होता है। ज बूद्वीप की परिधि में से इतने योजन कम करने पर अर्थात् ३१६२२७-११३८=३१५०८९ योजन होता है। यह पहले म ड़ल की परिधि है। इस परिधि में प्रति

म ड़ल में देशोन १८ योजन जोड़ने पर अगले म ड़ल की परिधि निकल जाती है।

म ड़ल विष्क भ, परिधि एव स्थूल कथन चार्ट :-

म डल	विष्कंभ यो.	परिधि	स्थूल परिधि
पहला मंडल	९९६४०	३१५०८९ यो. सा.	३१५०८९ यो.
दूसरा मंडल	९९६४५ ३५/६१	३१५१०६ ३८/६१	३१५१०७ यो.
तीसरा मंडल	९९६५१ ९/६१	३१५१२४ १५/६१	३१५१२५ यो.
अ तिम मंडल	१००६६०	३१८३१५ यो. सा.	३१८३१५ यो.
अ तिम से दूसरा	१००६५४ २६/६१	३१८२९७ २३/६१	३१८२९७ यो.
अ तिम से तीसरा	१००६४८ ५२/६१	३१८२७९ ४६/६१	३१८२७९ यो.
जम्बूद्वीप	१०००००	३१६२२७ साधिक	३१६२२७ यो.
जम्बूद्वीप के ६५ मंडल	१८०×२=३६०	११३८ साधिक	११३८ यो.
कुल १८४ मंडल	५१०×२=१०२०	३२२६ साधिक १७	३२२६ यो.
प्रतिमंडल वृद्धि	५ ३५/६१	१७ ३८/६१	१८ यो.

सूर्य का विमान जब अ तिम म ड़ल में चलता है तो वह ५१० योजन के म ड़ल क्षेत्र से बाहर स्थित होता है। अतः इस अपेक्षा आभ्य तर किनारे से बाह्य अवगाहित किनारा ५१०-४८/६१ योजन अ तर वाला कहा गया है। आभ्य तर और बाह्य दोनों तरफ सूर्य विमान के अवगाहन को नहीं गिन कर केवल म ड़ल क्षेत्र को गिना जाय तो ४८/६१x२= १-३५/६१ कम करने से ५१०-४८/६१-१-३५/६१=५०९-१३/६१ योजन होता है।

नोट- इस विषय में भी कुछ मिथ्या लोक मान्यताएँ सूत्र में बताई गई है। वे अस गत है।

प्राभृत-२ : प्रतिप्राभृत-१

प्रश्न-१ : दोनों सूर्य भ्रमण करते हुए कहाँ किस प्रकार सूर्योदय करते है और कहाँ दिन रात करते हैं ?

उत्तर- भारतीय सूर्य पूर्व दिशा को पार कर अपने पूर्वी केन्द्रस्थान से

आगे दक्षिण की तरफ बढ़ता है तब दक्षिणी क्षेत्रों में सूर्योदय करता है। उस समय ऐरवतीय सूर्य पश्चिम दिशा पार कर अपने पश्चिमी केन्द्रस्थान से आगे उत्तर की तरफ बढ़ता है एव उत्तरी क्षेत्रों में सूर्योदय करता है। फिर ये दोनों सम्पूर्ण उत्तर दिशा और स पूर्ण दक्षिण दिशा साथ-साथ में पार करते हुए दोनों क्षेत्रों में दिन करते हैं।

जब ये सूर्य उत्तर दक्षिण को प्रकाशित कर वहाँ दिन करते हैं तब पूर्व पश्चिमी क्षेत्रों में(महाविदेह में) रात्रि करते हैं।

जब उत्तर दिशा को पार करने वाला ऐरवतीय सूर्य उत्तर पूर्व में आता है और फिर पूर्वी दिशा को प्रकाशित करता है। तभी भारतीय सूर्य दक्षिण दिशा को पार कर दक्षिण पश्चिम में आता है और फिर पश्चिमी दिशा को प्रकाशित करता है। इस समय दोनों सूर्य पूर्व पश्चिम महाविदेह में दिन करते है और दक्षिणी उत्तरी क्षेत्रों में रात्रि करते है।

इस प्रकार ये दोनों सूर्य दो क्षेत्रों को प्रकाशित करते हुए और दो क्षेत्रों में रात्रि करते हुए पूरा म ड़ल परिभ्रमण करते है। इसीलिये भरत-ऐरवत क्षेत्रों में दिन होता है तब दोनों महाविदेह में रात्रि होती है और जब दोनों महाविदेह क्षेत्र में दिन होता है तब भरत ऐरवत क्षेत्र में रात्रि होती है। ये रात्रि और दिन सूर्य के अभाव में और सद्भाव में होते है। वास्तव में इन सूर्यों के अभाव और सद्भाव से स्वतः रात्रि और दिवस तथा सूर्योदय सूर्यास्त होते जाते हैं।

इस विषय में भी मिथ्या मान्यताएँ है- (१) सूर्य सुबह पूर्व में किरण समूह रूप में उत्पन्न होकर शाम को पश्चिम में नष्ट हो जाता है। (२) पृथ्वी में से उत्पन्न होकर पृथ्वी में शाम को नष्ट हो जाता है। (३) पानी में उत्पन्न होकर शाम को पानी में नष्ट हो जाता है। (४) अथवा शाम को पृथ्वी आदि में प्रवेश करके नीचे जला जाता है। फिर नीचे लोक को प्रकाशित कर पुनः पूर्व में उदित होकर ऊपर आता है एव पुनः पूर्वदिशा में उदित हो जाता है। (५) कोई ज बूद्वीप के दो विभाग कल्पित करते हुए बताते है कि सूर्य पूर्व में ऊपर उदित होकर शाम को पश्चिम में अस्त हो जाता है तब दूसरे विभाग में उदय हो जाता

है। वहाँ दिन भर रहकर अस्त हो जाता है और पुनः प्रथम विभाग में उदित हो जाता है। इत्यादि ये सभी कथन भ्रमित एव अपूर्ण है।

प्राभृत-२ : प्रतिप्राभृत-२

प्रश्न-१ : सूर्य एक म ड़ल से दूसरे म ड़ल में स क्रमण कैसे करता है?

उत्तर- प्रत्येक म ड़ल के बीच में २-२ योजन का अ तर होता है इस दो योजन क्षेत्र को दो प्रकार से पार किया जा सकता है- (१) एक निश्चित स्थान पर आकर के दो योजन सीधे चलकर फिर अगले म ड़ल में प्रवेश करना फिर उसमें भ्रमण करना। पुनः उसी स्थान में पहुँचकर २ योजन सीधे चलकर अगले म ड़ल में प्रवेश करना। इस को भेदघात स क्रमण गति कहते है यह सदोष है। क्यों दो योजन चलने का समय किसी म ड़ल में नहीं कहा जा सकता। (२) दूसरी कर्ण कला गति है जो जलेबी के आकार होती है उसमें म ड़ल भ्रमण के साथ ही दो योजन को स क्रामित कर लिया जाता है। यह कर्ण कला गति निर्दोष है, इसी को स्वीकार करना चाहिये।

प्राभृत-२ : प्रतिप्राभृत-३

प्रश्न-१ : सूर्य की मुहूर्त गति क्या है अर्थात् एक मुहूर्त(४८ मिनिट)में सूर्य कितना योजन पार करता है ?

उत्तर- सूर्य की कोई एक निश्चित गति नहीं होती। प्रत्येक म ड़ल में उसकी मुहूर्त गति बदलती है अर्थात् सूर्य की १८४ प्रकार की मुहूर्त गति होती है जो उन म ड़लों के लिये निश्चित्त रहती है अर्थात् प्रथम म ड़ल में सूर्य ५२५१ योजन और २९/६० योजन साधिक मुहूर्त गति से चलेगा और १८४ वें म ड़ल में ५३०५ योजन और १५/६० योजन साधिक मुहूर्त गति से चलेगा। इस प्रकार प्रत्येक म ड़ल की अलग-अलग एक निश्चित गति होती है। यों सब मिला कर कुल १८४ प्रकार की मुहूर्त गति प्रत्येक सूर्य की होती है।

छ म ड़लों की मुहूर्त गति एव चक्षुस्पर्श :-

मंडल	मुहूर्त गति	दृष्टि क्षेत्र(यो.)
प्रथम मंडल	५२५१ $\frac{२९}{६०}$ योजन	४७२६३ $\frac{२१}{६०}$
दूसरा मंडल	५२५१ $\frac{४७}{६०}$ योजन	४७१७९ $\frac{५७}{६०}$, $\frac{१९}{६१}$
तीसरा मंडल	५२५२ $\frac{५}{६०}$ योजन	४७०९६ $\frac{३३}{६०}$, $\frac{२}{६१}$
अंतिम मंडल	५३०५ $\frac{१५}{६०}$ योजन	३१८३१ $\frac{३०}{६०}$
अंतिम से दूसरा मंडल	५३०४ $\frac{५७}{६०}$ योजन	३१९१६ $\frac{३९}{६०}$, $\frac{६०}{६१}$
अंतिम से तीसरा मंडल	५३०४ $\frac{३९}{६०}$ योजन	३२००१ $\frac{४९}{६०}$, $\frac{२३}{६१}$

चार्ट देखने से ज्ञात होता है कि एक म ड़ल से दूसरे म ड़ल की मुहूर्तगति में १८/६० योजन की लगभग हानि या वृद्धि होती है। ये १८ भाग भी स्थूल दृष्टि से कहे गये है। सूक्ष्म गणित से देशोन १८ भाग समझना। उसे यहाँ गौण करके १८ भाग कहा गया है।

सूर्य की एक मुहूर्त की गति को ३० से गुणा करने पर एक अहोरात्र का सूर्य का गमनक्षेत्र निकल आता है जो उस अर्धम ड़ल की परिधि का माप भी होता है। क्यों कि सूर्य ३० मुहूर्त में अर्धम ड़ल पार करता है।

प्रश्न-२ : सूर्योदय या सूर्यास्त के समय मनुष्यों को सूर्य कितनी दूरी से दिखता है ?

उत्तर- सूर्योदय और सूर्यास्त के समय मनुष्यों को सूर्य दिखने की दूरी सदा एक सरीखी नहीं होती। वह भी १८४ म ड़ल में अलग-अलग होने से १८४ प्रकार की होती है। इसे आगम शब्दों में चक्षुस्पर्श, दृष्टिक्षेत्र या पुरुष छाया भी कहा जाता है।

प्रार भ के तीन और अ तिम तीन म ड़लों का चक्षुस्पर्श-दृष्टिक्षेत्र ऊपर चार्ट में बताया गया है। पहले से दूसरे म ड़ल में यावत् अ तिम म ड़ल तक दृष्टि क्षेत्र घटता है। वह प्रथम म ड़ल से दूसरे म ड़ल में ८३ योजन साधिक या ८४ योजन देशोन घटता है फिर आगे ६८/६१ चूर्णियाभाग योजन प्रत्येक म ड़ल में वृद्धि होकर अ तिम म ड़ल में ८५ योजन साधिक घटता है। फिर १८३वें म ड़ल में ८५ योजन साधिक में ६८/६१ योजन का चूर्णियाभाग न्यून होता जाता है यों पुनः प्रथम

म ड़ल में पहुँचते ८३ योजन साधिक चक्षु स्पर्श दूसरे म ड़ल से पहले म ड़ल में कम होता है।

इसी को स्थूल दृष्टि से ऐसा कहा जाता है कि चक्षुस्पर्श प्रत्येक म ड़ल ८४-८५ योजन के करीब घटता-बढ़ता है। इस कथन में ६८/६१ चूर्णियाभाग की हानिवृद्धि का समावेश हो जाता है। शुद्धनय से प्रथम म ड़ल से दूसरे म ड़ल में और दूसरे से प्रथम म ड़ल में ८३ साधिक या ८४ योजन लगभग(देशोन)की चक्षुस्पर्श की हानिवृद्धि होती है और अ तिम १८३-१८४ म ड़ल में ८५ योजन लगभग स्थूल दृष्टि से हानि वृद्धि होती है और शुद्ध नय से ८५ योजन साधिक की हानिवृद्धि होती है। मूल चक्षुस्पर्श चार्ट में बताया गया है। उत्कृष्टतम ४७२६३ योजन साधिक और जघन्य ३१८३१ योजन साधिक चक्षुस्पर्श होता है अर्थात् मनुष्यों को प्रथम म ड़ल में उत्कृष्ट चक्षुस्पर्श होता है और अ तिम म ड़ल के समय जघन्य चक्षुस्पर्श होता है। जघन्य में सूर्य के बाहर से अ दर आते समय ८४-८५ करीब योजन की वृद्धि स्थूल दृष्टि से होती है। और उत्कृष्ट में सूर्य के अ दर से बाहर जाते समय चक्षुस्पर्श की कमी होती रहती है। ८३ योजन साधिक से लेकर ८५ साधिक तक की सूक्ष्म वृद्धि हानि को सूत्रकार ने स्थूल दृष्टि से ८४-८५ के योजन के आसपास की हानिवृद्धि स क्षेप में कह दिया है।

८४-८५ के लगभग की हानि वृद्धि १८३ बार सूर्य के बाहर जाते समय और अ दर आते समय होती है। इतनी हानि वृद्धि होने से चक्षुस्पर्श ४७२६३ लगभग से घटकर अ तिम म ड़ल में-३१८३१ लगभग हो जाता है। कुल-१५४३२ योजन करीब घट जाता है। चार्ट में ६ म ड़ल का चक्षुस्पर्श दिया है उसे ध्यान से जमा लेना चाहिये। इस विषय में भी अन्य मान्यताएँ है यथा- (१) सूर्य ६००० योजन प्रति मुहूर्त में चलता है। यों (२) ५००० (३) ४००० आदि अनेक अशुद्ध मान्यताएँ होती है।

प्राभृत-३

प्रश्न-१ : सूर्य से जम्बूद्वीप का कितना क्षेत्र प्रकाशित होता है कितना अप्रकाशित रहता है ?

उत्तर– ज बूद्वीप के पूरे क्षेत्र के १० विभाग कल्पित किये जाय, उसमें से एक सूर्य प्रथम म ड़ल में ३/१० तीन दसमा श क्षेत्र प्रकाशित करता है दूसरा सूर्य भी इतना ही क्षेत्र प्रकाशित करता है। अतः ६/१० छ दसमा श क्षेत्र कुल प्रकाशित होता है। जब ३/१० एक सूर्य दक्षिण में प्रकाशित करता है तब दूसरा सूर्य ३/१० उत्तर में प्रकाशित करता है। इसलिये पूर्व में २/१० दो दसमा श क्षेत्र अप्रकाशित रहता है और पश्चिम में भी २/१०क्षेत्र अप्रकाशित रहता है। यह प्रथम म ड़ल में सूर्य के होने पर ज बूद्वीप प्रकाशित अप्रकाशित होता है।

तब प्रथम म ड़ल में कुल ६० मुहूर्त का ३/१०=१८ मुहूर्त का दिन होता है और ६० मुहूर्त का २/१०=१२ मुहूर्त की रात्रि होती है और अ तिम म ड़ल में प्रत्येक सूर्य २/१० भाग को प्रकाशित करते है अतः ६० मुहूर्त का २/१०=१२ मुहूर्त का दिन होता है और ३/१०=१८ मुहूर्त की रात्रि होती है।

प्राभृत-४

प्रश्न-१ : सूर्य से प्रकाश क्षेत्र का स स्थान किस प्रकार का होता है?

उत्तर– यहाँ स स्थान दो प्रकार का होता है– (१) च द्र-सूर्य का स स्थान (२) सूर्य के प्रकाश क्षेत्र का स स्थान=च द्रसूर्य का स स्थान भी दो तरह से होता है– (१) उनके विमान का स स्थान (२) युग के प्रार भ में २ च द्र २ सूर्य की स स्थिति रूप स स्थान।

(१) सूर्य-चन्द्र के विमान लम्बाई चौड़ाई में समान और गोलाकार होने से समचौरस स स्थान है। (२) युग के प्रार भ में दो चन्द्र दो सूर्य चारों विदिशाओं में समकोण में होते है। एक सूर्य दक्षिण पूर्व में, दूसरा पश्चिम उत्तर में होता है। उस समय एक चन्द्र दक्षिण पश्चिम में, दूसरा चन्द्र उत्तर पूर्व में रहता है अतः इस अपेक्षा से इन चारों की स स्थिति समचौरस होती है।

प्रकाश क्षेत्र का स स्थान–सूर्य का प्रकाश क्षेत्र कदम्ब वृक्ष के पुष्प के स स्थान का अथवा गाड़ी के जूए के समान(सगडुद्धि स स्थान)होता है। यह ताप क्षेत्र मेरु पर्वत के पास स कुचित(पुष्प मूल के समान)

होता है और लवण समुद्र की तरफ विस्तृत (पुष्प मुख के समान) होता है।

प्रथम म ड़ल में सूर्य का प्रकाश मेरु के पास मेरु की परिधि का ३/१० भाग होता है और लवण समुद्र की तरफ अ तिम प्रकाशित होने वाले क्षेत्र की परिधि का भी ३/१० भाग प्रकाश क्षेत्र होता है। यह सम्पूर्ण प्रकाश क्षेत्र कदम्ब वृक्ष के पुष्प का आकार का होता है।

इस स स्थान में चार बाहाएँ होती है–दो ल बी और दो गोलाई वाली। ताप क्षेत्र की चौड़ाई के दोनों बाजू लम्बी बाहा होती है और ताप क्षेत्र के मूल और मुख विभाग की तरफ अर्थात् मेरु और समुद्र की तरफ की बाहा गोलाई वाली होती है। जम्बूद्वीप के अ दर वे दोनों लम्बी बाहा आपस में समान ४५-४५ हजार योजन की अवस्थित होती है और दोनों गोल बाहाओं का माप आपस मे भी असमान होता है और प्रतिम ड़ल में परिवर्तित होता रहता है।

वह प्रथम म ड़ल में मेरु के पास ९४८६-९/१० योजन होता है और समुद्र की तरफ ९४८६८-४/१० योजन होता है। यह मेरु की परिधि का एव जम्बूद्वीप की परिधि का ३/१० तीन दसमा स भाग है। यह जम्बूद्वीप के अ दर के क्षेत्र की अपेक्षा प्रथम म ड़ल का माप कहा गया है।

सूर्य का ताप क्षेत्र तो लवण समुद्र में भी जाता है अतः ताप क्षेत्र की कुल लम्बाई ४५०००+३३३३३-१/३=७८३३३-१/३ योजन की होती है। यह लम्बाई प्रथम और अ तिम आदि सभी म ड़लों में समान होती है।

अ धकार स स्थान–ताप क्षेत्र के समान ही अ धकार का भी आकार होता है। जम्बूद्वीप के अ दर की दोनों बाहा भी ताप क्षेत्र के समान ४५-४५ हजार योजन की होती है। अ धकार की सम्पूर्ण लम्बाई भी ताप क्षेत्र के समान ७८३३३-१/३ योजन होती है। गोल आभ्य तर बाहा प्रथम म ड़ल में मेरु के पास मेरु की परिधि से २/१० दो दसमाश होती है अर्थात् ६३२४-६/१० योजन होती है। बाह्य गोल बाहा जम्बूद्वीप की परिधि का २/१० दो दसमा श=६३२४५-६/१० योजन होती है।

आभ्य तर म ड़ल में जो माप कहा गया है बाह्यम ड़ल में भी उसी प्रकार कहना किन्तु आभ्य तर और बाह्य गोलाई वाली बाहा में फर्क है, वह यह है कि आभ्य तर म ड़ल के ताप क्षेत्र में जो माप कहा वह बाह्य म ड़ल में अ धकार का माप समझना और जो आभ्य तर में अ धकार का माप कहा है वह बाह्य में प्रकाश का माप समझना।

सूर्य उक्त ताप स स्थान माप में १०० योजन ऊपर प्रकाश करता है १८०० योजन नीचे प्रकाश करता है एव तिरछा ४७२६३-२१/६० योजन आगे और इतना ही योजन पीछे दोनों बाजू में प्रकाश करता है। इस विषय में १६ मिथ्या मान्यताएँ सूत्र में कही गई है।

तापक्षेत्र तथा स्थिर-अस्थिर बाहा :-

म डल	तापक्षेत्र लंबाई	स्थिरबाहा जंबूद्वीप में	आभ्य तर प्रकाश बाहा	बाह्य प्रकाश बाहा	भाग
आभ्यंतर	७८३३३ १/३	४५०००यो०	९४८६ ९/१०	९४८६८ ४/१०	३/१० वा १ १/२ / ५
बाह्य	७८३३३ १/३	४५०००यो०	६३२४ ६/१०	६३२४५ ६/१०	२/१० वा १/५

नोट- प्रकाश क्षेत्र का जो भी माप आभ्य तर म ड़ल में है वही अ धकार का बाह्य म ड़ल है और जो प्रकाश का बाह्य म ड़ल में है वही अ धकार का आभ्य तर म ड़ल में है।

✵ प्राभृत-५ ✵

प्रश्न-१ : सूर्य का प्रकाश प्रतिहत कहाँ कैसे होता है ? अर्थात् रुकावट कहाँ होती है ?

उत्तर- सूर्य की लेश्या-प्रकाश-ताप, अ दर की तरफ मेरु के सूक्ष्म बादर पुद्‌गलों से प्रतिहत होता है। बाहर और दोनों बाजू अपनी प्रकाश सीमा के किनारों पर चरम स्पर्शित पुद्‌गलों से रुकता है अर्थात् वहीं तक जाता है सीमा समाप्त होने से आगे नहीं जाता है। इसके अतिरिक्त प्रकाश क्षेत्र के भीतर भी जहाँ जिन पदार्थों से रुकता है छाया पड़ती है वहाँ वहाँ उन पुद्‌गलों से प्रतिहत होता है। इस तरह मेरु से, खुद की सीमा त से, एव अन्य पदार्थों से सूर्य का प्रकाश प्रतिहत होता है।

✵ प्राभृत-६ ✵

प्रश्न-१ : सूर्य की जो प्रकाश स स्थिति-सीमा स स्थान है क्या वह घटती बढ़ती है ?

उत्तर- आभ्य तर म ड़ल से बाह्य म ड़ल की तरफ जाते से समय प्रकाश स स्थिति घटती है और बाह्य से आभ्य तर म ड़ल में सूर्य के आने के समय प्रकाश क्षेत्र में वृद्धि होती है। प्रत्येक म ड़ल को सूर्य ३० मुहूर्त में पार करता है। अतः हर ३० मुहूर्त में सूर्य की प्रकाश स स्थिति घटती एव बढ़ती है। यह स्थूल दृष्टि है। सूक्ष्म दृष्टि से तो हर समय अगले म ड़ल की तरफ कर्ण गति से बढ़ता रहता है। गति भी बढ़ती रहती है जिससे तापक्षेत्र भी कुछ न कुछ घटता रहता है। इसलिये सूक्ष्म दृष्टि से घड़ी के घ टों की तरह या तारीख के का टे की तरह प्रतिपल तापक्षेत्र घटता है और प्रकाश की स स्थिति घटती बढ़ती रहती है।

यों ६ महिना तक बाहर जाते प्रकाश क्षेत्र घटता रहता है और ६ महिना भीतर आते प्रकाश क्षेत्र बढ़ता है।

प्रतिदिन मुहूर्त का २/६१ भाग दिन घटता बढ़ता है तो ६ महीने में ६ मुहूर्त दिन घटता बढ़ता है। म ड़ल की अपेक्षा २/१८३० भाग ताप क्षेत्र प्रतिदिन घटता बढ़ता है तो १८३ दिन(६ मास)में ३६६/१८३०=१/५=२/१० ताप क्षेत्र म ड़ल की अपेक्षा घटता बढ़ता है अतः एक सूर्य का अर्धम ड़ल में १/१० एक दसमा श तापक्षेत्र घटता बढ़ता है। प्रथम म ड़ल में एक सूर्य ३/१० प्रकाश करता है अ तिम म ड़ल में २/१० प्रकाश करता है। पुनः ६ महिने से प्रथम म ड़ल में पहुँच कर ३/१० तीन दसमा स प्रकाश करता है । इस प्रकार सूर्य का प्रकाश क्षेत्र चौड़ाई में सदा घटता बढ़ता रहता है अर्थात् आगे पीछे का प्रकाश घटता बढ़ता है। मेरु से लवण समुद्र तरफ की लम्बाई है वह स्थिर रहती है और ऊपर नीचे का प्रकाश क्षेत्र भी १०० योजन और १८०० योजन स्थिर रहता है।

❋ प्राभृत-७ ❋

प्रश्न-१ : सूर्य का प्रकाश किन को प्राप्त होता है ?

उत्तर- जहाँ कोई बीच में अवरोध नहीं हो जहाँ सूर्य की किरणे पहुँचती है वे सभी पुद्गल या पदार्थ दृष्ट या अदृष्ट, सूक्ष्म या स्थूल सूर्य के प्रकाश का वरण करते हैं अर्थात् प्रकाश को प्राप्त कर प्रकाशित होते हैं। इस स ब ध में भी २० मान्यताएँ कही गई है। सूर्य प्रकाश सभी के लिये उपलब्ध है अगर अवरोध बीच में न हो तो।

❋ प्राभृत-८ ❋

प्रश्न-१ : सूर्य की उदय स स्थिति और गमन किस प्रकार है?

उत्तर- सूर्य की क्रमिक उदय स स्थिति चालु रहती है। वह उत्तर पूर्व में उदित होकर दक्षिण पूर्व में आता है। दक्षिण पूर्व में उदित होकर दक्षिण पश्चिम में आता है यों क्रमशः आगे बढ़ते हुए उदित होता है।

ज बूद्वीप के सरीखे चार विभाग कल्पित करके इस प्रकार कथन करना कि जम्बूद्वीप के मेरु से दक्षिण विभाग से सूर्य उदित होता है तब उत्तरी विभाग में भी उदित होता है। एव पूर्वी पश्चिमी विभाग में अस्त होता है। जब दक्षिण विभाग में १८ मुहूर्त से लेकर १२ मुहूर्त तक का दिन होता है। तब उत्तरी विभाग में भी इतना ही दिन होता है। पूर्वी पश्चिमी दोनों विभाग में उस समय रात्रि होती है। वह भी दोनों में १२ मुहूर्त से लेकर १८ मुहूर्त की रात्रि होती है।

जब दक्षिण विभाग में वर्ष या ऋतु का प्रथम आदि समय होता है तब उत्तर में भी वर्ष या ऋतु का प्रथम समयादि होता है किन्तु पूर्व पश्चिम में उसके अन तर समय में वर्ष या ऋतु का प्रारम्भ होता है।

जब जिस विभाग में प्रार भिक प्रदेशों में सूर्योदय होता है तब उस पूरे विभाग का प्रथम समय अपेक्षित करके कहा गया है। इसीलिये उत्तर दक्षिण विभाग के वर्ष आदि के प्रारम्भ के अन तर समय में ही पूर्वीय पश्चिमी विभाग में वर्ष आदि का प्रारम्भ कहा गया है। यहाँ

४ विभागों में वे पूरे विभाग अपेक्षित है किन्तु इन्हे भरत ऐरवत आदि ऐसा नहीं समझ लेना।

इसी तरह लवण समुद्र धातकी ख ड़ आदि के चार विभाग कर उसमें वर्ष आदि का प्रारम्भ एव सूर्य की उदय स स्थिति एक-एक विभाग में क्रमिक समझना।

इस विषय में भी सूत्र में तीन मान्यताएँ कही गई है। जो कि अशुद्ध है।

यह विषय वर्ष का प्रारम्भ आदि भगवती सूत्र में भी स्पष्ट किया गया है।

❋ प्राभृत-९ ❋

प्रश्न-१ : सूर्य की ताप लेश्या किन को प्राप्त होती है ?

उत्तर- सूर्य में से जो ताप लेश्या निकलती है वह स्पर्श में आने वाले पुद्गलों को आतापित करती है तथा इन तापलेश्या के स्पर्श में नहीं आने वाले पुद्गल भी आतापित होते हैं। वे इन लेश्याओं में से जो छिन्न लेश्याएँ निकलती है, उनसे आतापित होते हैं।

तात्पर्य यह है कि सूर्य की किरणे जिस वस्तु पर पड़ती है वह तो गर्म होती ही है किन्तु जहाँ धूप नहीं पहुँचती वे भी पुद्गल, भूमि आदि गर्म होते हुए देखे जाते है उन्हें सीधी किरणों से ताप नहीं मिलकर ताप किरणों से जो अ तर किरणे निकलती है उनसे ताप मिलता है अर्थात् छाया वाले क्षेत्र को भी वे कुछ कुछ प्रकाशित एव आतापित करती है।

इस विषय में भी तीन मान्यताएँ कही गई है।

प्रश्न-२ : पोरिषी छाया का क्या मतलब है और उसके स ब ध में यहाँ क्या विश्लेषण किया गया है ?

उत्तर- पोरिषी छाया का मतलब है जो चीज जितनी है उसकी उतनी ही छाया होना वह(एक)पोरिषी(अर्थात् पुरुष की पुरुष प्रमाण) छाया होती है। यह छाया का माप युग के आदि समय अर्थात् श्रावण वदी

एकम की अपेक्षा यहाँ कहा गया है । वह इस प्रकार है-

(१) अपार्ध पोरिषी(आधी)छाया	तीसरा भाग दिवस ६ मुहूर्त बीतने पर
(२) पोरिषी(पुरुष प्रमाण)छाया	चौथाई दिवस ४-१/२ मुहूर्त बीतने पर होती है उतना ही दिवस शेष रहने पर पोरिषी छाया होती है ।
(३) ड़ेढ़ पोरिषी(ड़ेढ़गुणी)छाया	५वाँ भाग ३ मुहूर्त ३० मिनट दिन बीतने पर
(४) दो पोरिषी छाया(दुगुणी)	छठ्ठा भाग दिन ३ मुहूर्त बीतने पर ।
(५) ढ़ाई पोरिषी छाया(ढ़ाईगुणी)	७वाँ भाग दिन २ मुहूर्त २७ मिनट बीतने पर
(६) ५८-१/२ पोरिषी(५८-१/२) गुणी)छाया	१९००वाँ भाग २७-१/४ सेक ड़ दिवस बीतने पर ।
(७) उनसाठपोरिषी(५९गुणी)छाया	२२०००वाँ भाग २-१/३सेक ड़ दिन बीतने पर
(८) साधिक उनसाठपोरिषी छाया	सूर्योदय और सूर्यास्त का प्रार भिक प्रथम समय होता है अर्थात् दिवस का कोई भीभाग व्यतीत नहीं होता है ।

प्रश्न-३ : छाया के कितने कैसे आकार बनते है ?

उत्तर- ल बी, चौड़ी, गोल, अनुकूल, प्रतिकूल आदि छाया के २५ प्रकार कहे गए है अर्थात् वस्तुओं के खुद के आकार, प्रकाशमान वस्तु की स स्थिति एव दूरी आदि के कारण से छायाएँ अनेक प्रकार की होती है। गोल छाया के पुनः आधा गोला एव पाव गोला, सघन गोला आदि आठ प्रकार कहे गये है।

प्रश्न-४ : इस प्राभृत के मूलपाठ में कुछ कुछ लिपि दोष या अपूर्णता है ?

उत्तर- इस पाहुड़(प्राभृत) का विषय एव सूत्र सहज समझ में नहीं आने योग्य होने से आगम प्रकाशन समिति ब्यावर के सूर्यप्रज्ञप्ति के स पादन करने वाले विद्वान श्रमण ने मूल पाठ पर एव रचना सूत्रों पर श का खड़ी करके अस गत होने की कल्पना प्रगट की है। वास्तव में सूत्रपाठ की एव रचना की ऐसी कोई स्थिति नहीं है कि चित् लिपि दोष से प्रति भेदमात्र हो सकता है। जिसका समाधान प्रतियों को या टीका को देखने से हो सकता है किन्तु ऐसा लगता है कि स पादक टीका देखने पर भी इन सूत्रों का सही आशय जान नहीं पाये हैं। ऊपर उन सूत्रों

का स क्षिप्त सही-स गत अर्थ दे दिया गया है। जिसे अच्छी तरह समझ लेने के बाद कोई स शय नहीं रह सकता है।

इसी प्रकार उक्त स पादक महोदय ने टिप्पणों में जगह जगह सूक्ष्म विषयों का, सूत्रों का, आशय नहीं समझ सकने के कारण ऐसे ही अनेक स शय एव दोष उपस्थित किये है जो वास्तव में प्रायः व्यक्तिगत स देह मात्र है। सूत्र में ऐसा कुछ दूषण अधिका शतः नहीं है। परस्पर अन्य सूत्रों से विरुद्ध कथन जाने की कल्पना भी स पादक की अपनी व्यक्तिगत समझ भ्रम के कारण है। उस स पादन में प्रकाशन समिति ने मूल पाठ का सरल अर्थ भी नहीं दिया है। यदि सही अर्थ दिया होता तो वैसे स देह स्थल स्वतः समाधित हो जाते ।

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-१

प्रश्न-१ : नक्षत्र कितने है और उनके नाम किस प्रकार है ?

उत्तर- नक्षत्र २८ कहे गये है उनके नाम इस क्रम से है-(१) अभिजित (२) श्रवण (३) धनिष्ठा (४) शतभिषक (५) पूर्व भाद्रपद (६) उत्तरा भाद्रपद (७) रेवती (८) अश्विनी (९) भरणी (१०) कृतिका (११) रोहिणी (१२) मृगशीर्ष (१३) आर्द्रा (१४) पुनवर्सु (१५) पुष्य (१६) अश्लेषा (१७) मघा (१८) पूर्वा फाल्गुनी (१९) उत्तरा फाल्गुनी (२०) हस्त (२१) चित्रा (२२) स्वाति (२३) विशाखा (२४) अनुराधा (२५) ज्येष्ठा (२६) मूल (२७) पूर्वाषाढ़ा (२८) उत्तराषाढ़ा।

इस विषय में भी विभिन्न मत है जिससे नक्षत्र क्रम का प्रारम्भ कृतिका से, मघा से, घनिष्ठा से अश्विनी, भरणी से किया जाता है। अभिजित नक्षत्र से ही उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ होना जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में बताया गया है।

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-२

प्रश्न-१ : नक्षत्रों का चन्द्र के साथ स योग किस प्रकार होता है?

उत्तर- नक्षत्र और चन्द्र सभी अपनी-अपनी गति से भ्रमण करते रहते

हैं। चन्द्र अ दर से बाहर और बाहर से अ दर ५१० योजन के क्षेत्र में १५ म ड़ल में भ्रमण करता है जब कि नक्षत्र अपने एक ही म ड़ल में भ्रमण करते हैं। च द्र की म द गति है, उससे नक्षत्रों की गति ज्यादा है। अतः एक एक नक्षत्र चन्द्र की सीध में आते जाते है और फिर कुछ समय सीध में रहकर आगे बढ़ जाते है। यह सीध में रहना ही च द्र-नक्षत्र स योग कहा गया है। यह स योग चार प्रकार का है- (१) ९ मुहूर्त साधिक का (२७/६७ मुहूर्त अधिक) (२) १५ मुहूर्त (३) ३० मुहूर्त (४) ४५ मुहूर्त।

(१) ९-२७/६७ मुहूर्त	अभिजित।
(२) १५ मुहूर्त	१.शतभिषक २. भरणी ३. आर्द्रा ४. अश्लेशा ५. स्वाति ६.ज्येष्ठा
(३) ३० मुहूर्त	१.श्रवण २.धनिष्ठा ३.पूर्वा भाद्रपद ४. रेवती ५.अश्विनी ६.कृतिका ७.मृगसिर ८.पुष्य ९.मघा १०.पूर्वा फाल्गुनी ११.हस्त १२.चित्रा १३.अनुराधा १४.मूल १५. पूर्वाषाढ़ा।
(४)४५ मुहूर्त	१.उत्तरा भाद्रपद २. रोहिणी ३.पुनर्वसु ४. उत्तरा फाल्गुनी ५.विशाखा ६.उत्तराषाढ़ा

प्रश्न-२ : नक्षत्रों का सूर्य के साथ स योग किस प्रकार होता है?

उत्तर- सूर्य भी १८४ म ड़ल पलट कर चलता है और उसकी गति से भी नक्षत्रों की गति ज्यादा है। अतः २८ नक्षत्र क्रम से आगे बढ़ते जाते है और सभी का सूर्य की सीध में चलने का क्रम भी प्राप्त होता रहता है। वह भी चार प्रकार का है-

१	४ दिन ६ मुहूर्त	अभिजित
२	६ दिन २१ मुहूर्त	शतभिषक आदि ६ ऊपरवत
३	१३ दिन १२ मुहूर्त	श्रवण आदि १५ ऊपरवत्
४	२० दिन ३ मुहूर्त	उत्तराभाद्रपद आदि ६ ऊपरवत्

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-३

प्रश्न-१ : नक्षत्र और चन्द्र का स योग किस समय प्राप्त होता है ?

उत्तर- समय की अपेक्षा भी यह स योग चार प्रकार का होता है-

(१) दिन के प्रथम भाग में प्रारम्भ और ३० मुहूर्त — पूर्वभाग सम क्षेत्र
(२) दिन के पश्चिम भाग में प्रारम्भ और ३० मुहूर्त — पश्चात भाग सम क्षेत्र
(३) रात्रि में प्रारम्भ और १५ मुहूर्त — नक्तभाग अर्द्ध क्षेत्र
(४) रात्रि दिवस दोनो में और ४५ मुहूर्त — उभयभाग ड़ेढ़ क्षेत्र

(१) पूर्व भाग में- पूर्वाभाद्रपद, कृतिका, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, पूर्वाषाढ़ा।

(२) पश्चिम भाग में- १.अभिजित(श्रवण नक्षत्र के स योग से उपचार से माना गया है) २. श्रवण ३.घनिष्ठा ४.रेवती ५.अश्विनी ६.मृगासिर ७.पुष्य ८.हस्त ९.चित्रा १०.अनुराधा।

(३) नक्त भाग में- शतभिषक, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा।

(४) उभय भाग में- उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, पुनर्वसु,उत्तराफाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ा।

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-४

प्रश्न-१ : नक्षत्र, चन्द्र के साथ योग जोड़कर फिर अगले नक्षत्र को योग समर्पण कब करते हैं ?

उत्तर- पूर्व प्रति प्राभृत में समुच्चय रूप से कहे विषय को यहाँ एक-एक नक्षत्र के क्रम से स्पष्टीकरण किया गया है, साथ ही अभिजित श्रवण दोनों नक्षत्रों की एक साथ सम्मिलित विवक्षा की गई है। क्यों कि अभिजित का समय कम है।

(१-२) अभिजित श्रवण दोनों नक्षत्र मिलकर दिवस में योग प्रारम्भ कर ३९ मुहूर्त साधिक रह कर दूसरे दिन पश्चात भाग में धनिष्ठा को समर्पण कर देते है।

(३) धनिष्ठा नक्षत्र भी तीस मुहूर्त रहकर दूसरे दिन पश्चात भाग में शतभिषक को स योग समर्पित कर देता है। अर्थात् पहले के नक्षत्र का योग समाप्त होते ही अगले नक्षत्र का स योग प्रारम्भ हो जाता है।

इस प्रकार प्रथम प्रति प्राभृत में कहे गये क्रम से सभी नक्षत्रों का स योग जानना। क्यों कि उसी क्रम से ही स योग चलते है। स योग के मुहूर्त की स ख्या दूसरे तीसरे प्रति पाहुड़ में बताई गई है उतने समय तक चन्द्र के साथ वह नक्षत्र स योग करता है, फिर अगले नक्षत्र का स योग कहलाता है। इस प्रकार यावत् पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र दिन के पूर्व भाग में योग करके ३० मुहूर्त रह कर दूसरे दिन पूर्व भाग में उत्तराषाढ़ा नक्षत्र को योग समर्पित करता है।

फिर उत्तराषाढ़ा पूर्व दिवस भाग में योग प्रारम्भ करके ४५ मुहूर्त रहकर दूसरे दिन शाम को अभिजित श्रवण नक्षत्र को योग समर्पित करता है। इस प्रकार यह पूरा चक्र यथासमय प्रारम्भ होकर यथासमय समाप्त होता है और पुनः यथासमय प्रारम्भ हो जाता है।

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-५

प्रश्न-१ : २८ नक्षत्रों में कुल, उपकुल और कुलोपकुल कैसे होते है ?

उत्तर- नक्षत्रों का कुल उपकुल विभाग- जिस नक्षत्र में मास की समाप्ति हो, जो मास के नाम वाले नक्षत्र हो वे कुल कहे गये है। उसके पूर्व क्रम वाले नक्षत्र उपकुल कहे गये है और उसके भी पूर्व क्रम वाले नक्षत्र कुलोपकुल कहे गये है। यथा-

कुल- (१) धनिष्ठा (२) उत्तराभाद्रपद (३) अश्विनि (४) कृतिका (५) मृगसिर (६) पुष्य (७) मघा (८) उत्तराफाल्गुनी (९) चित्रा (१०) विशाखा (११) मूल (१२) उत्तराषाढ़ा। यहाँ धनिष्ठा और मूल दो नक्षत्र महीने के नाम से अतिरिक्त लिये गये हैं क्यों कि उस मास की समाप्ति करने वाले ये ही है।

उपकुल- (१) श्रवण (२) पूर्वाभाद्रपद (३) रेवती (४) भरणी (५) रोहिणी (६) पुनर्वसु (७) अश्लेषा (८) पूवाफाल्गुनी (९) हस्त (१०) स्वाति (११) ज्येष्ठा (१२) पूर्वाषाढ़ा।

कुलोपकुल-(१) अभिजित (२) शतभिषक (३) आर्द्रा (४) अनुराधा।

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-६

प्रश्न-१ : पूर्णिमा और अमावस्या के दिन किन नक्षत्रों का च द्र स योग होता है ?

उत्तर- पूर्णिमा के दिन स योग- श्रावण, भादवा, पोष, ज्येष्ठ मास में कुल उपकुल और कुलोपकुल तीन नक्षत्रों का योग होता है। शेष सभी पूर्णिमा में कुल उपकुल दो नक्षत्र का स योग होता है। १२ महिनों की १२ पूर्णिमा होती है। वे कुल या उपकुल अथवा कुलोपकुल तीनों में से किसी के साथ भी योग युक्त हो सकती है। महीनों के नाम वाले कुल एव उनके उपकुल कुलोपकुल पाँचवें प्रतिप्राभृत में कह दिये है तदनुसार ही यहाँ क्रमशः १२ महिनों की पूर्णिमा में समझ लेना।

अमावस्या एव उसके नक्षत्र स योग-१२ महीनों की १२ अमावस्या होती है। जिस महीने की अमावस्या का नक्षत्र स योग जानना हो उसके ६ मास बाद वाले महिनों के कुल उपकुल कुलोपकुल का स योग उस अमावस्या का होता है यथा-

श्रावण महीने के ६ मास बाद माघ महीना होता है अतः माघ महीने के कुल उपकुल=मघा और अश्लेषा का स योग श्रावण की अमावस्या के दिन होता है। इस प्रकार मिगसर, माघ, फाल्गुन और आषाढ़ महीने की अमावस्या को क्रमशः ज्येष्ठ श्रावण भादवा पोष महीने के कुल उपकुल कुलोपकुल तीन में से किसी नक्षत्र का स योग होने से वह अमावस्या युक्त होती है, शेष ८ महीनों की अमावस्या में उस महीने से अगले ६ महीने बाद के महीने के कुल उपकुल दो में से कोई एक का स योग होने पर वह अमावस्या युक्त होती है।

नोट-यहाँ मूलपाठ में फाल्गुन महीने की अमावस्या में भादवा महीने के कुल का पाठ छूट गया है और तीन की जगह दो का स योग ही कहा है। तथा पोष मास से लेकर आषाढ़ मास तक की अमावस्या के स योग का पाठ अशुद्ध है अर्थात् कुल को उपकुल लिख दिया है उपकुल को कुल लिख दिया है। यह स पादन की पर परागत भूल प्रतीत होती है।

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-७

प्रश्न-१ : महीनों की अमावस-पूनम को नक्षत्रों का योग स ब ध किस प्रकार होता है ?

उत्तर- महिनों का अमावस पूनम के नक्षत्र योग से स ब ध- छट्ठे प्रतिप्राभृत में बताया गया है कि श्रावण महिने की अमावस्या के दिन माघ महीने के कुल उपकुल का स योग होता है अर्थात् छ मास बाद वाले कुल उपकुल ६ महिना पहले वाले महीने की अमावस्या के दिन जोग जोड़ते हैं और इन दोनों महीनों का परस्पर सम्बन्ध होता है यह सातवें प्रतिप्राभृत में बताया गया है।

श्रावण महिने में माघी(माघ महीने के कुल उपकुल वाली) अमावस होती है और श्रावणी पूनम होती है। माघ महिने में श्रावणी अमावस्या होती है और माघी पूनम होती है ।

इसी प्रकार का सम्बन्ध क्रमशः २.भादवा-फाल्गुन का ३. आसोज चैत्र का ४. कार्तिक-वैशाख का ५. मिगसर-ज्येष्ठा का ६. पोष-आषाढ़ का होता है अर्थात् पोष में आषाढ़ी अमावस्या और पोषी पूनम होती है। अषाढ़ में पोषी अमावस्या और आषाढ़ी पूनम होती है।

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-८,९

प्रश्न-१ : नक्षत्रों के तारे कितने होते है और आकार कैसा होता है?

उत्तर- इन दोनों प्रतिप्राभृत में नक्षत्रों के आकार और तारे(विमान)स ख्या कही गई है जो चार्ट द्वारा बताई जा रही है-

नक्षत्र, आकार, योग आदि :-

क्रम	नाम	आकार	तारा	कुल	पूनम संयोग	अमावस संयोग	दृश्य
१	अभिजित	गोशीर्ष	३	कुलोपकुल-१			
२	श्रवण	कावड	३	उपकुल			
३	धनिष्ठा	शकुनि-पिंजर	५	कुल	श्रावण	माघी	
४	शतभिषक	पुष्प चंगेरी	१००	कुलोपकुल-२			

क्रम	नाम	आकार	तारा	कुल	पूनम संयोग	अमावस संयोग	दृश्य
५	पूर्वभाद्रपद	अर्ध वाव	२	उपकुल			
६	उ.भाद्रपद	अर्ध वाव	२	कुल	भादवा	फाल्गुनी	
७	रेवती	नावा	३२	उपकुल			
८	अश्विनी	अश्वस्कंध	३	कुल	आसोज	चैत्री	
९	भरणी	भग	३	उपकुल			
१०	कृतिका	क्षुर-घर	६	कुल	कार्तिक	वैशाखी	
११	रोहिणी	धूसर	५	उपकुल			
१२	मृगशीर्ष	मृग का शिर	३	कुल	मिगसर	ज्येष्ठी	
१३	आर्द्रा	रुधिरबिंदु	१	कुलोपकुल-३			
१४	पुनर्वसु	तुला	५	उपकुल			
१५	पुष्य	वर्धमानक	३	कुल	पोष	आषाढी	
१६	अश्लेषा	पताका	६	उपकुल			
१७	मघा	प्राकार	७	कुल	माघ	श्रावणी	
१८	पूर्वा फा.	पलियंक	२	उपकुल			
१९	उत्तरा फा.	पलियंक	२	कुल	फाल्गुन	भादवी	
२०	हस्त	हाथ	५	उपकुल			
२१	चित्रा	खिला पुष्प	१	कुल	चैत्र	आसोजी	०
२२	स्वाति	खीला	१	उपकुल			
२३	विशाखा	दामणि	५	कुल	वैशाख	कार्तिकी	
२४	अनुराधा	एकावली	४(५)	कुलोपकुल-४			
२५	ज्येष्ठा	गजदंत	३	उपकुल			
२६	मूल	वींछी	११	कुल	ज्येष्ठ	मिगसिरी	
२७	पूर्वाषाढा	हाथी के पाँव	४	उपकुल			
२८	उत्तराषाढा	बैठा सिंह	४	कुल	आषाढ	पौषी	

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-१०

प्रश्न-१ : रात्रि वाहक नक्षत्र किसे कहते हैं, तत्स ब धी वर्णन यहाँ किस प्रकार है ?

उत्तर- रात्रि के प्रार भ होते ही जो नक्षत्र पूर्व में उदित होकर स पूर्ण रात्रि आकाश में रहकर रात्रि समाप्ति पर पश्चिम में अस्त हो जाता है उस नक्षत्र को रात्रिवाहक नक्षत्र कहा जाता है अर्थात् स पूर्ण रात्रि को वहन करने वाला, धारण करने वाला, दिखने वाला नक्षत्र।

जैसे सूर्य से कालमान पोरिषी आदि का ज्ञान होता है वैसे ही रात्रिवाहक नक्षत्र से स पूर्ण रात्रि के समय का ज्ञान होता है, पोरिषी का ज्ञान होता है। उसको देखकर अनुमान किया जा सकता है।

२८ नक्षत्रों में कोई नक्षत्र ७ दिन तक रात्रि वहन करता है तो कोई ८ दिन और कोई १५ दिन भी। किसी महीने में ३ नक्षत्र और किसी महीने में ४ नक्षत्र रात्रि वहन करते है।

रात्रिवाहक नक्षत्र य त्र :-

क्रम	महीना	नक्षत्र नाम	रात्रि सं०	नक्षत्र	रात्रि सं०	नक्षत्र	रात्रि सं०	नक्षत्र	रात्रि संख्या
१	श्रावण	उ०षाढा	१४	अभिजित	७	श्रवण	८	धनिष्ठा	१
२	भादरवो	धनिष्टा	१४	शतभिषक	७	पू०भाद्रपद	८	उ०भाद्रपद	१
३	आसो	उ०भाद्रपद	१४	रेवती	१५	अक्तिनी	१	–	–
४	कारतक	अक्तिनी	१४	भरणी	१५	कृतिका	१	–	–
५	मागसर	कृतिका	१४	रोहिणी	१५	मृगशीर्ष	१	–	–
६	पोष	मृगशीर्ष	१४	आर्द्रा	७	पुनर्वसु	८	पुष्य	१
७	महा	पुष्य	१४	अश्लेषा	१५	मघा	१	–	–
८	फागण	मघा	१४	पू०फाल्गुनी	१५	उ०फाल्गुनी	१	–	–
९	चैत्र	उ०फाल्गुनी	१४	हस्त	१५	चित्रा	१	–	–
१०	वैशाख	चित्रा	१४	स्वाति	१५	विशाखा	१	–	–
११	ज्येष्ठ	विशाखा	१४	अनुराधा	७	ज्येष्ठा	८	मूल	१
१२	अषाढ	मूल	१४	पूर्वाषाढा	१५	उत्तरषाढा	१	–	–

प्रत्येक महिने में कुल नक्षत्र एक ही दिन पूनम को रात्रि वहन करता है। चार महीनों में कुलोपकुल होते हैं उस महीने में चार नक्षत्र रात्रि वहन करते हैं, शेष महीनों में तीन नक्षत्र रात्रिवहन करते हैं।

प्रत्येक महीने का कुल नक्षत्र अगले महीने में प्रारम्भ के १४ दिन रात्रि वहन करता है। शेष १६ दिनों में से उस महीने के अ तिम एक दिन उसी महीने का कुल नक्षत्र वहन करता है शेष बचे १५ दिनों में यदि उस महीने के उपकुल और कुलोपकुल दोनों हो तो क्रमशः ८ और ७ रात्रि वहन करते हैं। एव केवल उपकुल ही है तो वही १५ दिन रात्रि वहन करता है।

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-११

प्रश्न-१ : च द्र के साथ योग जोड़ने वाले नक्षत्र किस दिशा में रहते हुए च द्र के साथ चलते हैं ?

उत्तर- नक्षत्रों का च द्र के साथ चलने का यह योग पाँच तरह से हो सकता है- (१) कोई नक्षत्र चन्द्र के दक्षिण में रहते हुए योग जोड़ते है (२) कोई उत्तर में रहकर (३) कोई ऊपर या नीचे रहकर पमर्द योग जोड़ते है (४) कोई दक्षिण और प्रमर्द योग दोनों से साथ रहते है (५) कोई उत्तर, दक्षिण और प्रमर्द तीनों योग से साथ चलते हैं। २८ नक्षत्र में कौन कौन से नक्षत्र किस प्रकार का योग जोड़ते हैं वह इस प्रकार है-

(१) दक्षिण से-६	(१) मृग (२) आर्द्रा (३) पुष्य (४) अश्लेषा (५) हस्त (६) मूल।
(२) उत्तर से- १२	(१से९)अभिजित से भरणी तक (१०)पूर्वा फाल्गुनी (११)उत्तरा फाल्गुणी(१२) स्वाति।
(३) तीनों से-७	(१) कृतिका (२) रोहिणी (३) पुनर्वसु (४) मघा (५) चित्रा (६) विशाखा (७) अनुराधा
(४) दक्षिण प्रमद से	(१) पूर्वाषाढ़ा (२) उत्तराषाढ़ा।
(५) प्रमर्दयोग से-१	(१) ज्येष्ठा।
ये कुल-६+१२+७+२+१=२८ नक्षत्र होते हैं।	

स्पष्टीकरण- (१) अ तिम आठवें म ड़ल में रहने वाले मृगशीर्ष आदि ६ नक्षत्रों का सदा चन्द्र के साथ दक्षिण में रहते हुए साथ चलने का योग मिलता है। (२) आभ्य तर प्रथम म ड़ल में रहने वाले १२ नक्षत्र सदा एक उत्तर दिशा के योग से साथ चलते हैं। (३) कृतिका आदि सात नक्षत्रों का चन्द्र के साथ चलने का योग होता है तब कभी च द्र दक्षिण में होता है कभी उत्तर में भी होता है और कभी ऊपर या नीचे सीध में भी आ जाता है। अतः ये नक्षत्र तीनों तरह के योग से साथ चल सकते हैं। इसका कारण यह है कि चन्द्र हमेशा म ड़ल पलटते है, नक्षत्र सदा एक ही म ड़ल में रहते हैं। ये सात नक्षत्र बीच के म ड़लों में होने से चन्द्र कभी उत्तर कभी दक्षिण कभी सीध में होता है।

(४) पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, नक्षत्र के ४ तारे हैं वे अ तिम म ड़ल में है फिर भी उनके दो दो तारे अ तिम म ड़ल के बाहर की तरफ है, दो अ दर की तरफ है। अतः दो च द्र की सीध में आ जाते है और दो दक्षिण में दूर रह जाते हैं। अतः ये दो नक्षत्र दक्षिण और प्रमर्द इन दो प्रकार से योग जोड़ते हैं।

(५) ज्येष्ठा नक्षत्र को साथ चलने का योग होता है तब वह ऊपर नीचे रहते हुए ही योग जोड़ता है इसलिये उसका एक प्रमर्द योग ही कहा है।

प्रश्न-२ : च द्र और नक्षत्रों के म ड़ल किस प्रकार आये हुए है ?

उत्तर- च द्र के १५ म ड़ल है और नक्षत्रों के ८ म ड़ल है। वे आठों ही च द्र के ८ म ड़लों की सीध में है। चन्द्र के वे आठ म ड़ल- १,३,६,७, ८, १०, ११, १५ वाँ ये क्रमशः आठ नक्षत्र म ड़ल की सीध में है। च द्र के शेष ७ म ड़ल की सीध में नक्षत्र म ड़ल नहीं है वे ये है-२,४, ५,९,१२,१३,१४।

सूर्य म ड़ल की सीध में चन्द्र-१,२,३,४,५,११,१२,१३,१४,१५ ये दस चन्द्र म ड़ल सूर्य म ड़लों की सीध में है। शेष ५ सीध में नहीं है आगे पीछे हैं।

च द्र का पहला, तीसरा, ग्यारहवाँ, प द्रहवाँ ये चार म ड़ल ऐसे है जिनकी सीध में सूर्य म ड़ल भी है, नक्षत्र म ड़ल भी है।

नक्षत्र, चन्द्र, सूर्यम ड़ल सीध का चार्ट :-

स योग	च द्र म ड़ल	नक्षत्र म ड़ल	सूर्य म ड़ल
तीनों साथ	१	१	१
दो साथ	२	x	१४
तीनों साथ	३	२	२७
दो साथ	४	x	४०
दो साथ	५	x	५३
दो साथ	६	३	x (६६-६७)
दो साथ	७	४	x (७९-८०)
दो साथ	८	५	x (९२-९३)
साथ नहीं	९	x	x (१०५-१०६)
दो साथ	१०	६	x (११८-११९)
तीनों साथ	११	७	१३२
दो साथ	१२	x	१४५
दो साथ	१३	x	१५८
दो साथ	१४	x	१७१
तीनों साथ	१५	८	१८४

प्रश्न-३ : अमुक म ड़ल सीध में और अमुक नहीं है इसका भी कोई कारण है क्या ?

उत्तर- च द्र के छट्ठे से दसवें तक के म ड़ल क्रमशः ६६,७९,९२,१०५, ११८ वें सूर्य म ड़ल से कुछ कुछ आगे हो जाने से उनकी सीध छूट जाती है जो १३२ वें में जाते एक सूर्य म ड़ल जितना आगे बढ़ जाने से चन्द्रम ड़ल आगे हो जाने से १३१ वें के स्थान पर १३२ वें में साथ हो जाता है फिर वह ११ से १५ तक पाँच म ड़ल में साथ चलता है।

चन्द्रम ड़ल के बीच सूर्यम ड़ल समवतार-एक चन्द्र म ड़ल के बीच में १२ सूर्य म ड़ल होते हैं और तेरहवाँ साथ होने वाला। यों १३-१३ म ड़ल बाद साथ होता है। अतः १३-१३जोड़ते जाने से अगले चन्द्र म ड़ल का और सूर्यम ड़ल का स गम म ड़ल आ जाता है यह क्रम पाँच म ड़ल तक चलता है फिर तेरहवाँ म ड़ल कुछ पीछे रह जाता है और चौदहवें सूर्यम ड़ल तक छट्ठा सातवाँ चन्द्र म ड़ल पहुँच नहीं पाता है। अतः तेरहवें से आगे और चौदहवें से पहले बीच में ही रह जाता

है यह क्रम चन्द्र के दसवें म ड़ल तक चलता है, ग्यारहवें म ड़ल में सूर्य के एक म ड़ल का अ तर पार हो जाने से १४वें म ड़ल के अ तर में जाकर चन्द्र सूर्य के म ड़ल पुनः सीध में हो जाते हैं। ग्यारह से प द्रहवें म ड़ल तक जाते देशोन एक म ड़ल जितना अ तर होकर दोनों के विमान सीध में आ जाते हैं। कल्पना से १६वाँ चन्द्र म ड़ल यदि होता तो फिर उसमें सूर्य चन्द्र का साथ छूट जाता।

अतः चन्द्र के १५ म ड़ल में १४ अ तर है प्रत्येक में १३ सूर्य म ड़ल साधिक का अ तर है। १४x१३=१८२ हुए। एक म ड़ल जितना अ तर ग्यारहवें में बढ़ गया अतः १८३ सूर्य म ड़ल का अ तर चन्द्र के पहले म ड़ल से १५ वें म ड़ल के बीच में पड़ता है। कुल १८४ सूर्य म ड़ल है उनके अ तर १८३ ही होते हैं।

चन्द्रम ड़ल अ तर– प्रत्येक चन्द्रम ड़ल में ३५-३०/६१,४/७ योजन का अ तर होता है और ५६/६१ योजन का विमान होता है। अतः अ तर और विमान को जोड़ कर १४ आ तरों से गुणा करने पर एव ५६/६१ जोड़ने पर ५१० योजन क्षेत्र निकल आयेगा।

सूर्यम ड़ल अ तर–प्रत्येक सूर्यम ड़ल का अ तर २ योजन है और ४८/६१ योजन का विमान है। इन दोनों को जोड़कर १८३ आ तरों से गुणा करने पर एव ४८/६१ जोड़ने पर ५१० योजन निकल आयेगा।

नक्षत्रम ड़ल अ तर– नक्षत्र म ड़लों के अ तर का एक सरीखा क्रमिक हिसाब वाला माप नहीं है किन्तु स्थिर स्थाई बिना हिसाब का माप है। उसके आठ म ड़ल है जिसके सात अ तर विमान सहित इस प्रकार है-(१) ७२-५१/६१,१/७ (२) १०९-१५/६१,५/७ (३) ३६-२५/६१,४/७ (४) ३६-२५/६१,४/७ (५) ७२-२५/६१,४/७ (६) ३६-२५/६१,४/७ (७) १४५-४१/६१,२/७ इन सात अ तर का जोड़ करने पर लगभग ५१० योजन हो जाते है।

नोट–इन जोड़ों में ५१० योजन होने से सूक्ष्मतम फर्क हो सकता है क्यों कि सम भिन्न न होने से कुछ साधिक या कुछ न्यून अ श रह जाता है।

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-१२,१३,१४

प्रश्न-१ : इन तीन प्राभृत में क्या वर्णन है ?

उत्तर– प्रत्येक नक्षत्रों के स्वामी देव(अधिपति)होते है उनके नाम प्राभृत-१२ में बताये है। एक अहोरात्र में ३० मुहूर्त होते है उन ३० के नाम भी स्वत त्र होते हैं। जो प्राभृत-१३ में कहे है और तिथियाँ १५ होती है उनके रात्रि के और दिवस के अलग-अलग नाम है जो प्राभृत-१४ में कहे है । नाम, परिचय के लिये होते है ये सभी नाम ज्योतिष शास्त्र में प्रसिद्ध होते है।

३० मुहूर्तों के नाम– (१) रूद्र (२) श्रेयान (३) मित्र (४) वायु (५) सुप्रित (६) अभिचन्द्र (७) माहेन्द्र (८) बलव (९) ब्रह्म (१०) बहुसत्य (११) ईशान (१२) त्वष्टा(स्रष्टा) (१३) भावितात्मा (१४) वैश्रमण (१५)वारुण (१६) आन द (१७) विजय (१८) विश्वसेन (१९) प्रजापत्य (२०) उपशम (२१) ग धर्व (२२) अग्निसेन (२३) शतवृषभ (२४) आतप(बान) (२५) अमम (२६) ऋणवान (२७) भौम (२८) वृषभ (२९) सर्वार्थ (३०) राक्षस। यह मुहूर्त की गणना सूर्योदय से प्रार भ होकर रात्रि के अ तिम मुहूर्त तक है। समवायाँग-३० में भी ये नाम है।

पक्ष के १५ दिनों के लोकोत्तर नाम– एकम बीज आदि १५ दिनों के लौकिक नाम है। उनके लोकोत्तर नाम इस प्रकार है- (१) पूर्वांग (२) सिद्धमनोरम (३) मनोहर (४) यशोभद्र (५) यशोधर (६) सर्वकाम समृद्ध (७) इन्द्रमूर्धाभिषिक्त (८) सोमनस (९) धन जय (१०) अर्थासिद्ध (११) अभिजात (१२) अत्यशन (१३) शत जय (१४) अग्निवेश (१५) उपशम।

पक्ष की १५ रात्रि के लोकोत्तर नाम– (१) उत्तमा (२) सुनक्षत्रा (३) एलापत्या (४) यशोधरा (५) सोमनसा (६) श्री स भूता (७) विजया (८) वैजय ती (९) जय ति (१०) अपराजिता (११) इच्छा (१२) समाहारा (१३) तेजा (१४) अतितेजा (१५) देवान दा।

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-१५,१६

प्रश्न-१ : १५ तिथियों के विशिष्ट गुण सूचक नाम भी है क्या?

उत्तर- चौदहवें प्राभृत में १५ तिथि के दिवस रात्रि के नाम सूचित किये है, यहाँ इन १५ तिथियों के दिवस रात्रि के ५-५ विशिष्ट नाम बताये गये है-

प्रसिद्ध तिथि			दिवस तिथि के नाम	रात तिथि के नाम
एकम	छट्ठ	ग्यारस	नदा	उग्रवती
बीज	सातम	बारस	भद्रा	भोगवती
तीज	अष्टमी	तेरस	जया	जसवती
चौथ	नवमी	चौदस	तुच्छा	सर्व सिद्धा
पाँचम	दसमी	पण्णरस	पूर्णा	शुभनामा

प्रश्न-२ : नक्षत्रों के गोत्र भी है क्या ?

उत्तर- प्राभृत-१६ में गौत्र बताये है, वे मालिकदेव के साथ चार्ट में देखें-

नक्षत्र	देवनाम	गोत्र	नक्षत्र	देवनाम	गोत्र
१	ब्रह्मा	मद्गलायन	१५	बृहस्पति	उद्यायन
२	विष्णु	शंखायन	१६	सर्प	मा ड्व्यायन
३	वसु	अग्नितापस	१७	पितृ	पि गलायन
४	वरुण	कर्णलोचन	१८	भग	गोपाल्यायन
५	अज	जातुकर्ण	१९	अर्यम	काश्यप
६	अभिवृद्धि	धन जय	२०	सविता	कोशिक
७	पुष्य	पुष्यायन	२१	तुष्ठ	दर्भियायन
८	अ क्त	आक्तादन	२२	वायु	चामरक्षा
९	यम	भग्नवेश	२३	इन्द्राग्नि	सु गायण
१०	अग्नि	अग्निवेश	२४	मित्र	गोलव्यायण
११	प्रजापति	गौतम	२५	इन्द्र	चिकित्स्यायन
१२	सोम	भारद्वाज	२६	निरति(नैऋति)	कात्यायन
१३	रुद्र	लोहित्यायन	२७	जल	वर्द्धितायन
१४	अदिति	वाशिष्ट	२८	विक्त	व्याघ्रावृत्य

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-१७

इस प्राभृत में कुछ विकृति हो गई है । इस प्राभृत की जानकारी आगे परिशिष्ट में देखें ।

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-१८

प्रश्न-१ : एक युग में नक्षत्रों का चन्द्र सूर्य के साथ योग कितनी बार होता है ?

उत्तर- ५ वर्ष का एक युग होता है। उस युग में चन्द्र के साथ प्रत्येक नक्षत्र ६७ बार जोग जोड़ता है अर्थात् साथ साथ चलता है। एव सूर्य के साथ पाँच वर्ष में प्रत्येक नक्षत्र ५-५ वार जोग जोड़ते है।

तात्पर्य यह है कि पाँच वर्ष में ६७ नक्षत्र मास होते हैं। एक नक्षत्र मास २८ ही नक्षत्रों का चन्द्र के साथ एक एक बार योग जोड़ने से बनता है। अतः उन्हें ६७ नक्षत्र महिनों में ६७ बार चन्द्र के साथ योग करने का स योग मिलता है। सूर्य के साथ एक नक्षत्र का एक वर्ष में एक बार योग करने का(साथ चलने का) स योग होता है, अतः पाँच वर्ष में सभी नक्षत्रों का पाँच-पाँच वार योग होता है।

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-१९

प्रश्न-१ : १२ महिनों के लौकिक लोकोत्तर नाम किस प्रकार है?

उत्तर- श्रावण, भादवा आदि १२ नाम लौकिक है। लोकोत्तर नाम क्रम से इस प्रकार कहे गये है- (१) श्रावण=अभिन दन (२) सुप्रतिष्ठ (३) विजय (४) प्रीतिवर्धन (५) श्रेयाँश (६) शिव (७) शिशिर (८) हेम त (९) वस त (१०) कुसुम स भव (११) निदाह (१२) विरोधी।

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-२०

प्रश्न-१ : स वत्सर कितने प्रकार के होते हैं, उनका परिचय-स्वरूप क्या है ?

उत्तर– स वत्सर ५ कहे गये हैं– (१) नक्षत्र स वत्सर (२) युग स वत्सर (३) प्रमाण स वत्सर (४) लक्षण स वत्सर (५) शनिश्चर स वत्सर। इन पाँचों का विवरण इस प्रकार है–

नक्षत्र स वत्सर– प्रत्येक नक्षत्र के द्वारा चन्द्र के साथ एक बार योग जोड़ने पर एक नक्षत्र मास होता है। बारह बार योग जोड़ने पर एक नक्षत्र स वत्सर होता है। इस बारह मास या बारह वार योग की अपेक्षा स वत्सर १२ प्रकार का कहा गया है।

अन्य अपेक्षा से नक्षत्र स वत्सर १२ वर्ष का होता है क्यों कि वृहस्पति महागृह एक-एक नक्षत्र के साथ क्रमशः योग करते करते १२ वर्ष में २८ नक्षत्रों के साथ योग पूर्ण करता है।

युग स वत्सर– युग पाँच वर्ष का होता है। श्रावण आदि महिनों की अपेक्षा एक वर्ष १२ महीना अर्थात् २४ पक्ष का होता है।
युग का पहला चन्द्र वर्ष १२ मास २४ पक्ष का होता है।
युग का दूसरा चन्द्र वर्ष भी १२ मास २४ पक्ष का होता है।
युग का तीसरा अभिवर्द्धित वर्ष १३ मास २६ पक्ष का होता है।
युग का चौथा चन्द्र वर्ष १२ मास २४ पक्ष का होता है।
युग का पाँचवाँ अभिवर्द्धित वर्ष १३ मास २६ पक्ष का होता है।
इस प्रकार पाँच वर्ष का युग ६२ मास १२४ पक्ष का होता है।

प्रमाण स वत्सर– स वत्सर का प्रमाण ५ प्रकार से कहा गया हैं अर्थात् परिमाण–काल माप की अपेक्षा ५ प्रकार के स वत्सर होते हैं–

नाम	मास दिन	वर्ष दिन
नक्षत्र स वत्सर	२७–२१/६७	३२७–५१/६७
च द्र स वत्सर	२९–३२/६२	३५४–१२/६२
ऋतु स वत्सर	३०	३६०
सूर्य स वत्सर	३०–१/२	३६६
अभिवर्द्धित स वत्सर	३१–१२१/१२४	३८३–४४/६२

लक्षण स वत्सर– पाँच स वत्सरों का ऊपर परिमाण कहा गया है। यहाँ इन्हीं पाँचों के लक्षण गुण बताये जा रहे हैं। (१) नक्षत्र यथासमय योग जोड़ते हैं ऋतुएँ भी यथासमय परिणत होती है। अति गरमी ठ ड़ी

नहीं होती है एव वर्षा विपुल होती है वह लक्षण से नक्षत्र स वत्सर है। (२) पूनम को चन्द्र नक्षत्र योग यथासमय नहीं होता है, गर्मी सर्दी रोग बहुल होती है, दारुण परिणामी अति वृष्टि होती है। वह लक्षण से चन्द्र स वत्सर है। (३) वनस्पतियाँ यथासमय अ कुरित पुष्पित नहीं होती है। विषम समय में फूल या फल लगते हैं, वर्षा बराबर नहीं होती है, कम होती है। वह लक्षण से ऋतु(कर्म)स वत्सर है। (४) पृथ्वी पानी सरस सु दर रसोपेत होते है, फल फूलों मे यथायोग्य रस होता है, प्रचुर रस होता है। अल्प जल से भी धान्यादि की सम्यक् उत्पत्ति होती है, यह सूर्य स वत्सर का लक्षण है। (५) सूर्य अधिक-अधिक तपता है, वर्षा से सभी जल स्त्रोत भर जाते हैं, यह अभिवर्द्धित स वत्सर का लक्षण है।

शनिश्वर स वत्सर–नक्षत्रों के साथ शनि महाग्रह का योग ३० वर्ष में पूर्ण होता है। अतः शनिश्चर स वत्सर ३० वर्ष का होता है और २८ नक्षत्रों के योग के कारण २८ प्रकार का होता है।

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-२१

प्रश्न–१ : किस नक्षत्र में किस दिशा में जाना शुभ माना जाता है?

उत्तर– नक्षत्रों के ७–७ के चार विभाग कहे गये हैं जिसमें १ से ७ तक अर्थात् अभिजित से रेवती तक के नक्षत्र पूर्व द्वार वाले हैं अर्थात् इन नक्षत्रों में पूर्व दिशा में जाना शुभ होता हैं। इसी प्रकार (२) अश्विनी से पुनर्वसु तक के नक्षत्र दक्षिण द्वारिक हैं। (३) पुष्य से चित्रा नक्षत्र तक के सात नक्षत्र पश्चिम द्वारिक हैं। (४) स्वाति से उत्तराषाढ़ा तक के सात नक्षत्र उत्तरद्वारिक हैं अर्थात् इन सात नक्षत्रों में उत्तर दिशा में जाना शुभ होता है।

मता तर– यह नक्षत्रों के क्रम से स ब धित वर्णन है और नक्षत्र क्रम के विषय में पाँच मता तर है जो इस प्राभृत के प्रथम प्राभृत में कहे गये है। अतः यहाँ पाँच मता तर है वे इस प्रकार है– इन सात-सात नक्षत्रों के जोड़ों का कथन स्वमतानुसार जैसे अभिजित से प्रारम्भ करके चार विभाग से कहा गया है उसी प्रकार उक्त पाँच मान्यतानुसार (१)

कृतिका (२) मघा (३) धनिष्ठा (४) अश्विनी (५) भरणी से प्रारम्भ करके चार सप्तक क्रमशः पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर द्वार वाले कहे गये है। वे पाँचों क्रम अयोग्य एव अमान्य है। अभिजित आदि का क्रम ही यहाँ स्वमत कथन है, जो **वय पुण एव वयामो** वाक्य प्रयोग के साथ दिया गया है।

प्राभृत-१० : प्रतिप्राभृत-२२

प्रश्न-१ : नक्षत्रों के जोग जोड़ने में अपना सीमा विष्क भ भी होता होगा ?

उत्तर- नक्षत्र केवल अपने विमान मात्र से ही जोग जोड़ते हो ऐसा नहीं है किन्तु उनके आगे पीछे भी उनकी क्षेत्र सीमा होती है।

नक्षत्रों का सीमा विष्क भ- अपने अपने म ड़ल के १०९८०० भाग किये जाय उन भागों में से निम्न भाग प्रमाण नक्षत्रों का योग जोड़ने का अपना क्षेत्र सीमा विष्क भ होता है । यथा-

	नाम	नक्षत्र स ०		सीमा विष्क भ	कुल योग
१	अभिजित	२	X	६३० =	१,२६०
२	शतभिषक आदि ६	१२	X	१००५=	१२,०६०
३	श्रवण आदि १५	३०	X	२०१०=	६०,३००
४	उत्तराभाद्रपद आदि ६	१२	X	३०१५=	३६,१८०
	कुल	**५६**			**१,०९,८००**

यहाँ जो ६३० आदि हैं वे म ड़ल के भाग हैं, उन्ही को जोड़ने से कुल १०९८०० भाग होते हैं। उक्त सीमा क्षेत्र उन नक्षत्रों का आगे पीछे मध्य का मिलाकर कुल क्षेत्र है। इस क्षेत्र की सीध में चन्द्र सूर्य रहे जब तक इनका योग गिना जाता है। इनके विमान इस सीमा क्षेत्र के बीच में होते हैं। ६,१५ आदि नक्षत्र स ख्या के नाम इस प्राभृत के दूसरे प्रतिप्राभृत में देखें।

जिस नक्षत्र का जितने दिन का चन्द्र के साथ योग होता है उसके सड़सठिये भाग के तीस भाग करने पर उक्त राशि हो जाती है यथा- जो नक्षत्र ३० मुहूर्त-१ दिन योग जोड़ते हैं उसका सीमा

विष्क भ १x६७x३०=२०१० भाग का है इसलिये सूत्र में **सतसट्ठि भाग तीसाई भागाण** ६७ वें भाग के तीसवें भाग विशेषण लगाया है। एक पूरे म ड़ल में दो-दो अभिजित आदि नक्षत्र होते हैं। अतः सीमा विष्क भ में ५६ नक्षत्र गिने है।

प्रश्न-२ : नक्षत्र चन्द्र सूर्य अमावस्या पूर्णिमा का योग कहाँ करते हैं?

उत्तर- नक्षत्र अमावस्या योग- अभिजित नक्षत्र हर ४४वीं अमावस्या को सुबह शाम चन्द्र के साथ जोग जोड़ता है। उसके अतिरिक्त कोई भी नक्षत्र चन्द्र के साथ अमावस्या को दिन में योग नहीं जोड़ते है किन्तु पूर्णिमा के दिन रात्रि में ही चन्द्र के साथ योग जोड़ते हैं।

चन्द्र पूर्णिमा योग- चन्द्र जिस म ड़ल के जिस स्थान पर युग की अ तिम ६२वीं पूर्णिमा पूर्ण करता है उस स्थान से ३२/१२४ म ड़ल भाग जितने क्षेत्र में आगे जाकर पूर्णिमा(नये युग की) पूर्ण करता है। इसी प्रकार दूसरी तीसरी पूर्णिमा भी उस पूर्व पूर्णिमा कृत म ड़ल स्थान से ३२/१२४ म ड़ल भाग आगे जाकर पूर्ण करता है। इस तरह करते हुए युग समाप्ति की ६२वीं पूर्णिमा म ड़ल के दक्षिणी चतुर्थांश भाग से २७/३१, १८/२० भाग जाने पर और ३/३१, २/२० भाग उस चतुर्थांश दक्षिणी भाग के शेष रहने पर वहाँ समाप्त करता है।

सूर्य पूर्णिमा योग- सूर्य भी युग की ६२ वीं पूर्णिमा जहाँ समाप्त करता है उस स्थान से ९४/१२४ म ड़ल भाग आगे जाकर पहली पूर्णिमा समाप्त करता है। इसी प्रकार दूसरी तीसरी पूर्णिमा उस पूर्व पूर्णिमा कृत म ड़ल स्थान से ९४/१२४ म ड़ल भाग आगे जाने पर पूर्ण करता है। इस तरह करते हुए युग समाप्ति की ६२वीं पूर्णिमा म ड़ल के पूर्वी चतुर्थांश में २७/३१,१८/२० भाग जाने पर ३/३१,२/२० भाग उस पूर्वी चतुर्थांश का अवशेष रहने पर वहाँ समाप्त करता है।

चन्द्र अमावस्या जोग- चन्द्र जिस म ड़ल के जिस स्थान पर युग की अ तिम अमावस्या पूर्ण करता है उस स्थान से ३२/१२४ भाग म ड़ल जितने क्षेत्र आगे जाकर युग की प्रथम अमावस्या पूर्ण करता है। इसी तरह पूर्णिमा के वर्णन के समान जानना। जहाँ चन्द्र ६२वीं पूर्णिमा पूर्ण करता है वहाँ से १६/१२४ भाग म ड़ल पहले ही ६२वीं अमावस्या पूर्ण करता है। अर्थात् दक्षिणी चतुर्थांश म ड़ल के ११/३१,

१८/२० भाग जाने पर और १९/३१,२/२० भाग उस दक्षिणी चतुर्थांश भाग का अवशेष रहने पर उस स्थान पर चन्द्र ६२वीं अमावस्या समाप्त करता है।

सूर्य अमावस्या योग– सूर्य पहले पहले की अमावस्या समाप्ति स्थान से ९४/१२४ म ड़ल भाग आगे आगे अगली अमावस्या पूर्ण करता है। जिस स्थान पर ६२ वीं पूर्णिमा पूर्ण करता है उस स्थान से ४७/१२४ म ड़ल भाग पहले ही सूर्य ६२ वीं अमावस्या पूर्ण करता है।

च द्र, सूर्य, नक्षत्र पूर्णिमा योग :–

पूनम	चद्र	मुहूर्त	सूर्य	मुहूर्त
पहली पूनम	धनिष्ठा	३ १९/६२ ६५/६७	पूर्वा फाल्गुनी	२८ ३८/६२ ३२/६७
दूसरी पूनम	उत्तरा भाद्रपद	२७ १४/६२ ६२/६७	उत्तरा फाल्गुनी	७ ३३/६२ २१/६७
तीसरी पूनम	अश्विनी	२१ ९/६२ ६३/६७	चित्रा	१ २८/६२ ३०/६७
बारहवीं पूनम	उत्तराषाढा	२६ २६/६२ ५४/६७	पुनर्वसु	१६ ८/६२ २०/६७
बासठवीं पूनम	उत्तराषाढा	चरम समय	पुष्य	१९ ४३/६२ ३३/६७

जो मुहूर्त प्रमाण दिये हैं उतने योगकाल अवशेष रहने पर वह नक्षत्र पूर्णिमा पूर्ण करता है ।

च द्र सूर्य नक्षत्र अमावस योग :–

अमास	च द्र-सूर्य	मुहूर्त
पहली अमावस	अश्लेषा	१ ४०/६२ ६२/६७
दूसरी अमावस	उत्तरा फाल्गुनी	४० ३५/६२ ६५/६७
तीसरी अमावस	हस्त	४० ३०/६२ ६२/६७
बारहवीं अमावस	आर्द्रा	४ १०/६२ ५४/६७
बासठवीं अमावस	पुनर्वसु	२२ ४२/६२

नोट– चन्द्र अमावस्या के दिन सूर्य के साथ ही रहता है अतः दोनों के नक्षत्र योग एक समान ही होते हैं।

प्रश्न–३ : चन्द्र–सूर्य नक्षत्र के साथ योग किस–किस समय करते हैं ?

उत्तर– चन्द्र नक्षत्र का योग काल–एक नाम के दो–दो नक्षत्र है।

जिस नक्षत्र के साथ चन्द्र आज जिस समय योग पूर्ण करता है उससे ८१९-२४/६२, ६२/६७ मुहूर्त बाद उस नाम वाले दूसरे नक्षत्र के साथ अन्य स्थान में योग पूर्ण करता है। १६३८-४९/६२, ६५/६७ मुहूर्त बाद पुनः इसी नक्षत्र के साथ अन्य स्थान में योग पूर्ण करता है। ५४९०० मुहूर्त बाद उसी नाम वाले दूसरे नक्षत्र के साथ उसी स्थान में योग पूर्ण करता है। १०९८०० मुहूर्त बाद उसी नक्षत्र के साथ उसी स्थान में योग पूर्ण करता है।

सूर्य नक्षत्र का योग काल– ३६६ दिन बाद सूर्य उस नाम वाले नक्षत्र के साथ योग पूर्ण करता है। ७३२ दिन बाद पुनः उसी नक्षत्र के साथ उसी स्थान में योग पूर्ण करता है। १८३० दिन बाद उस नाम वाले नक्षत्र के साथ उसी स्थान में योग पूर्ण करता है। ३६६० दिन बाद उसी नक्षत्र के साथ उसी स्थान में योग पूर्ण करता है।

उपस हार– जम्बूद्वीप में २ सूर्य २ चन्द्र और सभी नक्षत्र भी दो–दो है। जब जहाँ एक सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र गति करता है तब दूसरा सूर्य ग्रह नक्षत्र भी उसकी सीध में प्रतिपक्ष दिशा में गति करता हुआ प्रतिपक्ष क्षेत्र को प्रकाशित आतापित करता है।

जब एक चन्द्र जिस नक्षत्र से योग युक्त होता है तब दूसरा चन्द्र भी उसी नाम वाले दूसरे नक्षत्र से योग युक्त होता है। इसी तरह दोनों सूर्य भी सदृश नक्षत्र से योग युक्त होते हैं।

इस प्रकार दोनों ही सूर्य चन्द्र यथा क्रम से ग्रह नक्षत्र के योग से युक्त होते रहते हैं। यह दसवें प्राभृत का २२वाँ प्रतिप्राभृत पूर्ण हुआ।

प्राभृत-११

प्रश्न–१ : किस नक्षत्र के योग में युग का कौन सा स वत्सर प्रर भ होता है और समाप्त होता है ?

उत्तर– इस प्राभृत में युग स वत्सर के आदि अ त के योग वाले नक्षत्रों का समय भी दर्शाया है जो चार्ट–कोष्टक में स्पष्ट किया गया है।

स वत्सर युग की आदि समाप्ति योग :-

क्रम	स वत्सर युगनी आदि समाप्ति	च द्र योग मुहूर्त	सूर्य योग मुहूर्त
१	युग का प्रार भ	अभिजित- प्रथम समय	पुष्य- २१ ४३/६२, ३३/६७
२	प्रथम च द्रसंवत्सर की समाप्ति	उत्तराषाढा- २६ २६/६२, ५४/६७	पुनर्वसु- १६ ८/६२, २०/६७
३	दूसरे च द्र संवत्सर की आदि	उत्तराषाढा- २६ २६/६२ ५४/६७	पुनर्वसु- १६ ८/६२, २०/६७
४	दूसरे च द्र संवत्सरनी समाप्ति	पूर्वाषाढा- ७ ५३/६२ ४१/६७	पुनर्वसु- ४२ ३५/६२, ७/६७
५	तीसरे अभि॰संव॰ की आदि	पूर्वाषाढा- ७ ५३/६२, ४१/६७	पुनर्वसु- ४२ ३५/६२, ७/६७
६	तीसरे अभि॰ संव॰ समाप्ति	उत्तराषाढा- १३ १३/६२, २७/६७	पुनर्वसु- २ ५६/६२, ६०/६७
७	चौथा च द्र संव॰ आदि	उत्तराषाढा- १३ १३/६२, २७/६७	पुनर्वसु- २ ५६/६२, ६०/६७
८	चौथा च द्र संव॰ की समाप्ति	उत्तराषाढा- ४० ४०/६२, ६४/६७	पुनर्वसु- २९ २१/६२, ४७/६७
९	पाँचवाँ अभि॰संव॰ आदि	उत्तराषाढा- ४० ४०/६२, ६४/६७	पुनर्वसु- २९ २१/६२, ४७/६७
१०	पाँचवाँ अभि॰ संव॰समाप्ति	उत्तराषाढा- चरम समय	पुष्य- २१ ४३/६२, ३३/६७

नोट- समाप्ति में जो मुहूर्त स ख्या है उतने मुहूर्त उस नक्षत्र के अवशेष रहने पर उसके पूर्व के समय में चलते हुए वह नक्षत्र चन्द्र सूर्य के साथ योग करते हुए वर्ष की समाप्ति करता है अतः चार्ट में दी गई स ख्या मुहूर्तविशेष स ख्या है। इसके पूर्व समय में समाप्ति और इस निर्दिष्ट समय में नक्षत्र के वर्तते हुए अगले स वत्सर का प्रार भ होता है। अर्थात् समाप्ति में नक्षत्र के अवशेष समय कहे हैं। इसलिये वह समय अगले वर्ष का प्रारम्भ योग है ।

इस प्रकार युग की समाप्ति के समय चन्द्र के साथ उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का अ तिम समय होता है और युग प्रारम्भ में अभिजित का प्रथम समय होता है। जब कि युग की समाप्ति में सूर्य के साथ पुष्य नक्षत्र के चलने के २१-४३/६२,३३/६७ मुहूर्त अवशेष रह जाते हैं। और नये युग का प्रारम्भ उक्त अवशेष समय के प्रथम समय से होता है।

प्राभृत-१२

प्रश्न-१ : पाँच प्रकार के स वत्सरों के दिन और मुहूर्त कितने होते हैं ?

उत्तर- स वत्सर (वर्ष) पाँच प्रकार के है- (१) नक्षत्र (२) चन्द्र (३) ऋतु (४) सूर्य (५) अभिवर्द्धित । इनके दिन और मुहूर्त इस प्रकार है-

संवत्सर	मासदिन	वर्षदिन	मास के मुहूर्त	वर्ष के मुहूर्त
१ नक्षत्र	२७ २१/६७	३२७ ५१/६७	८१९ २७/६७	९८३२ ५६/६७
२ चंद्र	२९ ३२/६२	३५४ १२/६२	८८५ ३०/६२	१०६२५ ५०/६२
३ ऋतु	३०	३६०	९००	१०८००
४ सूर्य	३० १/२	३६६	९१५	१०९८०
५ अभिवर्धित	३१ १२१/१२४	३८३ ४४/६२	९५९ १७/६२	११५११ १८/६२
	(३१ २९/३०, १७/६२)			
कुल	**१७९१** १९/३०, ५७/६२, ५५/६७ **वर्ष**		**५३७४९** ५७/६२, ५५/६७	**मुहूर्त**

नोट- यह कुल योग बताया गया है उसे आगे के चार्ट में नो युग(कुछ न्यून) काल कहा गया है।

प्रश्न-२ : युग का और नो युग का कालमान किस प्रकार कहा गया है ?

उत्तर- सूर्य स वत्सर आदि पाँच के काल को युग(५ वर्ष) का काल कहा जाता है। नो युग का काल शास्त्रकार ने ऊपरोक्त पाँच स वत्सरों के दिनों का जो कुल योग(जोड़)होता है उसे नो युग कहा है अर्थात् वह योग सूर्य स वत्सर के युग से कुछ कम होने से उसे नो युग(पूरा युग नहीं) कहा है। फिर जितना कम होता है वह काल भी बताया है उसे युग प्राप्ति काल चार्ट में कहा है, देखें चार्ट-

युग के कालमान :-

	दिन	मुहूर्त	बासठीया भाग
एक युग में	१८३०	५४९००	३४०३८००
नो युग में	१७९१ १९/३०, ५७/६२, ५५/६७	५३७४९ ५७/६२, ५५/६७	
युग प्राप्त होने में	३८ १०/३०, ४/६२, १२/६७	११५० ४/६२, १२/६७	

नोट- नो युग=युग में कुछ न्यून। उक्त दिन और मुहूर्त स ख्या नक्षत्र सूर्य चन्द्र ऋतु और अभिवर्द्धित इन पाँचों स वत्सरों के दिनों का और मुहूर्त का योग नो युग की अपेक्षा है।

प्रश्न-३ : स वत्सरों के आदि और अ त की तिथि तारीख समान कब होती है ?

उत्तर- सूर्य और चन्द्र इन दो की समानता- ३० वर्ष सूर्य के और ३१ वर्ष च द्र के होने पर आदि अ त समान होते हैं।

सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र और ऋतु ये चारों की समानता- सूर्य के ६० वर्ष, चन्द्र के ६२ वर्ष, ऋतु स वत्सर के ६१ वर्ष, नक्षत्र के ६७ वर्ष बीतने पर चारों का अ त और आदि समान होते हैं।

पाँचों की समानता- सूर्य, च द्र, ऋतु, नक्षत्र, अभिवर्द्धित ये पाँचों की समानता ७८० सूर्य स वत्सर से होती है। तब सूर्य के ७८० ऋतु के ७९२, च द्र के ९०६, नक्षत्र के ८७१ और अभिवर्द्धित के ७४४ वर्ष बीतते है।

इस प्रकार दो(च द्र-सूर्य) की समानता सूर्य के ३० वर्ष में, चार की समान-६० सूर्य वर्ष में और पाँच की समानता ७८० सूर्य वर्षों से होती है।

एक युग में सूर्य मास-६०, ऋतु मास-६१, च द्र मास-६२, नक्षत्र मास-६७ और अभिवर्द्धित मास-५७ मास ७ दिन और ११ मुहूर्त साधिक (२३/६२) होते हैं।

प्रश्न-४ : ऋतुएँ कितनी है और तिथियों के घट वध का क्या हिसाब है?

उत्तर- ऋतु- (१) प्रावृट (२) वर्षा (३) शरद (४) हेम त (५) बस त (६) ग्रीष्म ये छ ऋतुएँ ५९-५९ दिन की होती है।

चन्द्र स वत्सर में ६ तिथियाँ घटती है- (१) तीसरे (२) सातवें (३) ग्यारहवें (४) पन्द्रहवें (५) उन्नीसवें (६) तेवीसवें पक्ष में यों चन्द्र ऋतु के ५९ दिन है।

सूर्य स वत्सर में ६ तिथियाँ बढ़ती है- चौथे, आठवें, बारहवें, सोलहवें, बीसवें, चौवीसवें पक्ष में। यों सूर्य ऋतु के ६१ दिन होते हैं।

इस कारण चन्द्र स वत्सर के दो महिने ५९ दिन के होते है और सूर्य स वत्सर के दो महिने ६१ दिन के होते हैं। जिससे चन्द्र स वत्सर ३५४ दिन का और सूर्य स वत्सर ३६६ दिन का होता है। पाँच चन्द्र स वत्सर १७७० दिन के और पाँच सूर्य स वत्सर १८३० दिन के

होते है। पाँच चन्द्र स वत्सर में ६० दिन कम होते है। उसे ही मिलाने के लिये पाँच वर्ष में दो महीने बढ़ाये जाते हैं।

प्रश्न-५ : पाँचों सूर्य स वत्सर के प्रारम्भ में च द्र और सूर्य के साथ कौन से नक्षत्र का योग होता है तथा दूसरे अयन के प्रार भ में (सर्दी में) च द्र और सूर्य के साथ कौन कौन से नक्षत्रों का योग होता है?

उत्तर- सूर्य प्रथम म ड़ल से दूसरे म ड़ल में जाता है तब स वत्सर प्रारम्भ होता है और सूर्य की परिक्रमा भी वहीं से प्रारम्भ होती है। उस प्रारम्भ समय में चन्द्र के साथ युग के पाँच वर्षों की अपेक्षा नक्षत्र योग इस प्रकार है।

सूर्य स वत्सर के प्रार भिक योग :-

परिक्रमा	चद्र-नक्षत्र योग	मुहूर्त	सूर्य-नक्षत्र योग	मुहूर्त
१	अभिजित	प्रथम समय	पुष्य	१९ ४३/६२, ३३/६७
२	मृगशीर्ष	११ ३९/६२, ५३/६७	पुष्य	१९ ४३/६२, ३३/६७
३	विशाखा	१३ ५४/६२, ४४/६७	पुष्य	१९ ४३/६२, ३३/६७
४	रेवती	२५ ३२/६२, ३६/६७	पुष्य	१९ ४३/६२, ३३/६७
५	पूर्वा फाल्गुनी	१२ ४७/६२, १३/६७	पुष्य	१९ ४३/६२, ३३/६७

बाह्य म डल से अ दर प्रवेश करते समय :-

क्रम	समय	नक्षत्र च द्र के साथ	मुहूर्त	नक्षत्र सूर्य के साथ	मुहूर्त
१	पहली सर्दी में	हस्त	५ ५०/६२, ६०/६७	उत्तराषाढा	चरम समय
२	दूसरी सर्दी में	शतभिषक	२ २८/६२, ४६/६७	उत्तराषाढा	चरम समय
३	तीसरी सर्दी में	पुष्य	१९ ४३/६२, ३३/६७	उत्तराषाढा	चरम समय
४	चौथी सर्दी में	मूल	६ ५८/६२, २०/६७	उत्तराषाढा	चरम समय
५	पाँचवीं सर्दी में	कृत्तिका	१८ ३६/६२, ६/६७	उत्तराषाढा	चरम समय

आभ्य तर म ड़ल से बाह्य म ड़ल तक और बाह्य म ड़ल से आभ्य तर म ड़ल तक ये सूर्य की दो आवृतियाँ कही गई है ऐसी १० आवृतियाँ एक युग(५ वर्ष) में होती है।

चन्द्र की ऐसी आवृतियाँ एक युग में १३४ होती है। चन्द्र

की एक आवृति १३-४४/६७ दिन की होती है। सूर्य की एक आवृति १८३ दिन की होती है। १८३x१०=१८३० और १३-४४/६७x१३४= १८३० दिन होते हैं।

सूर्य आवृति के प्रथम दिन-(१) श्रावण वदी एकम (२) माघ वदी सप्तमी (३) श्रावण वदी तेरस (४) माघ सुदी चौथ (५) श्रावण सुदी दसमी (६) माघ वदी एकम (७) श्रावण वदी सप्तमी (८) माघवदी तेरस (९) श्रावणसुदी चौथ (१०) माघ सुदी दसमी।

प्रश्न-६ : छत्रातिछत्र योग किसे कहते हैं और वह कब कैसे होता है ?

उत्तर- ऊपर चन्द्र बीच में नक्षत्र और नीचे सूर्य इस तरह तीनों का एक साथ योग होता है उसे छत्रातिछत्र योग कहते हैं।

दक्षिण पूर्व के म ड़ल चतुर्भाग के २७/३१, १८/२० भाग जाने पर और ३/३१,२/२० भाग चतुर्थांश म ड़ल के शेष रहने पर उस स्थान पर चन्द्र सूर्य नक्षत्र का छत्रातिछत्र योग होता है। इस योग में चित्रा नक्षत्र चरम समय में होता है।

ये उक्त भाग पूरे म ड़ल के १२४ वें भाग है और चतुर्भाग म ड़ल के ३१ वें भाग है अर्थात् २७ भाग चलने पर एव २८ वें भाग का १८/२० भाग जाने पर २/२० दो बीसवें भाग अवशेष रहने पर वह छत्रातिछत्र योग स्थान है । ऐसे ही योग के कुल १२ प्रकार कहे गये है जिसमें छत्रातिछत्र-योग छठवाँ योग प्रकार है।

प्राभृत-१३

प्रश्न-१ : च द्र मास एव पक्ष में मुहूर्त कितने होते हैं और च द्र की हानि वृद्धि कब कितने समय होती है ?

उत्तर- इस प्राभृत में मात्र च द्र स ब धी विशेष जानकारियाँ दी गई है। सर्व प्रथम च द्र मास के दिन-मुहूर्त फिर पक्ष के मुहूर्त स ख्या बताकर चन्द्र की कला स ब धी कथन किया है, वह इस प्रकार है- एक चन्द्र मास में दिन=२९-३२/६२ जिसके मुहूर्त=८८५-३०/६२ होते हैं। एक पक्ष

मुहूर्त=४४२-४६/६२ (महीने के मुहूर्त से आधे) होते हैं। एक पक्ष में चन्द्र की कला हानि होती है, दूसरे पक्ष में वृद्धि होती है। अतः ४४२-४६/६२ मुहूर्त तक हानि होती है वह वदी पक्ष है। ४४२-४६/ ६२ मुहूर्त तक वृद्धि होती है वह सुदी पक्ष है, उद्योतपक्ष है।

वास्तव में चन्द्र अमावश के दिन एक समय पूर्ण आच्छादित रहता है और पूनम के दिन एक समय पूर्ण प्रकट रहता है शेष सभी समयों में कुछ आच्छादित और कुछ प्रकट रहता है।

एक युग में ६२ च द्रमास १२४ पक्ष, ६२ अमावश और ६२ पूर्णिमा होती है। अतः ६२ समय च द्र पूर्ण आच्छादित और ६२ समय पूर्ण प्रकट रहता है, शेष अस ख्य समय च द्र की हानि-वृद्धि होती है।

प्रश्न-२ : आभ्य तर से बाहर और बाहर से भीतर जाते हुए चन्द्र के परिभ्रमण स ब धी वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- चन्द्र का अयन- अर्द्ध चन्द्र मास में चन्द्र १४-१६/६२ म ड़ल चलता है अर्थात् १४ म ड़ल पूरे पार करके प द्रहवें म ड़ल का ३२/ १२४ वाँ भाग चलता है।

सूर्य के अर्द्धमास में चन्द्र १६ म ड़ल चलता है।

आभ्य तर से बाहर जाते हुए अमावस्या के अ त में ८/१२४ भाग म ड़ल स्व-पर अचलित म ड़ल में चलता है। प्रवेश करते हुए पूर्णिमा के अ त में ८/१२४ भाग म ड़ल अचलित चलता है।

लोक रूढ़ि से व्यक्ति भेद की अपेक्षा न करके केवल जाति भेद के आश्रय से ऐसा कहा जाता है कि चन्द्र १४-१६/६२ म ड़ल चलता है। किन्तु वास्तव में दो चन्द्रमा मिलकर इतना चलते हैं। अतः एक चन्द्र १४-१६/६२ अर्द्ध म ड़ल चलता है।

अतः प्रथम अयन में चन्द्र २,४,६,८,१०,१२,१४वाँ अर्द्धम ड़ल दक्षिण में एव ३,५,७,९,११,१३,१५वाँ का १३/६७ भाग अर्द्ध म ड़ल उत्तर में चलता है। इस प्रकार ७ अर्द्धम ड़ल दक्षिण में ६-१३/६७ अर्द्ध म ड़ल उत्तर में एव कुल १३-१३/६७ अर्द्धम ड़ल चलने पर प्रथम चन्द्र अयन होता है।

चन्द्रमा युग की समाप्ति अ तिम म ड़ल में पूनम को करता है।

अतः नये प्रथम अयन को बाहर से आभ्य तर म ड़ल में प्रवेश करते हुए प्रार भ करता है। दूसरा अयन आभ्य तर से बाहर जाते हुए करता है।

चन्द्रमा, नक्षत्र अर्द्ध मास में चन्द्र अर्ध मास की अपेक्षा १-४/६७,९/३१ अर्द्धम ड़ल अधिक चलता है। पूर्ण मास की अपेक्षा दुगुना समझना। अतः उक्त १३-१३/६७ अर्द्धम ड़ल नक्षत्र अर्द्धमास से कहे गये है।

चन्द्र के चलित अचलित मार्ग–दूसरे अयन में आभ्य तर से बाहर जाते हुए चन्द्र उत्तर में ५४/६७ अवशेष भाग अर्द्धम ड़ल के चलते हुए फिर दूसरे म ड़ल के १३/६७ भाग दक्षिण में अर्द्धम ड़ल के चलकर दूसरे अयन का प्रथम अर्द्धम ड़ल पूर्ण करता है। इस प्रकार १३-१३/६७ म ड़ल पार करके दूसरा अयन पूर्ण करता है। तब ७x५४/६७ भाग पूर्व में पर चलित पर चलता है। ७x१३/६७ भाग स्वचलित पर चलता है और पश्चिम में ६x५४/६७ भाग परचलित पर चलता है। ६x१३/६७ भाग स्वचलित पर चलता है। अवशेष अन्य २x१३/६७ भाग अचलित पर चलता है। इनमें आभ्य तर म ड़ल में १३/६७ और बाह्य म ड़ल में १३/६७ भाग अचलित पर चलता है।

तीसरे अयन में बाहर से अ दर जाते हुए पहले म ड़ल में ४१/६७ दोनों के चलित पर चलता है। १३/६७ भाग परचलित पर एव १३/६७ भाग स्वचलित पर चलता है। इतना ही दूसरे म ड़ल में। तीसरे म ड़ल में ८/६७,१८/३१ दोनों के चलित पर चलता है।

इस प्रकार पूरे महिने में– १३x५४/६७ + २x१३/६७ परचलित पर, १३x१३/६७ अपने चलित पर, २x४१/६७+८/६७,१८/३१ उभय चलित पर चलता है। एव २x१३/६७ अचलित पर चलता है।

✵ प्राभृत-१४ ✵

प्रश्न-१ : इस प्राभृत में क्या निरूपण है ?

उत्तर– तेरहवें प्राभृत में कही गई चन्द्र की हानि-वृद्धि को यहाँ प्रकारा तर से कहा गया है। अर्थात् अ धकार-प्रकाश शब्द के द्वारा कहा गया कि वद पक्ष में अ धकार की बहुलता होती है और सुद पक्ष में प्रकाश की

बहुलता होती है। वद पक्ष में निर तर चन्द्र राहु से आवृत होता रहता है अतः अ धकार निर तर बढ़ता है और सुद पक्ष में राहु से च द्र अनावृत होता रहता है अतः प्रकाश निर तर बढ़ता रहता है। १/१५ भाग च द्र प्रतिदिन आवृत अनावृत होता है। जिससे अ धकार-प्रकाश की वृद्धि होती है।

✵ प्राभृत-१५ ✵

प्रश्न-१ : च द्र सूर्य नक्षत्र आदि में गति की(चाल की)हीनाधिकता किस प्रकार है ?

उत्तर– सबसे म द गति चन्द्र की है। उससे सूर्यग्रह नक्षत्र, तारा की क्रमशः अधिक अधिक गति है।

च द्र एक मुहूर्त में अपने म ड़ल के १७६८/१०९८०० भाग चलता है

सूर्य एक मुहूर्त में अपने म ड़ल के १८३०/१०९८०० भाग चलता है

नक्षत्र एक मुहूर्त में अपने म ड़ल के १८३५/१०९८०० भाग चलता है

चन्द्र से सूर्य ६२ भाग अधिक चलता है। चन्द्र से नक्षत्र ६७ भाग अधिक चलता है। सूर्य से नक्षत्र ५ भाग अधिक चलता है।

प्रश्न-२ : गति की हीनाधिकता से नक्षत्रों का च द्र सूर्य के साथ योग जोड़ने से स ब ध किस प्रकार होता है ?

उत्तर– इस गति की हीनाधिकता के कारण चन्द्र के साथ नक्षत्र कुछ समय चलकर योग जोड़कर आगे बढ़ जाते हैं फिर पीछे वाला नक्षत्र आगे बढ़ कर साथ हो जाता है और जोग जोड़ता है। इस प्रकार एक एक नक्षत्र क्रमशः १५, ३० या ४५ मुहूर्त योग जोड़ कर आगे निकल जाते हैं। इतने मुहूर्त साथ रहने का कारण यह है कि नक्षत्रों का सीमा विष्क भ विमान के आगे पीछे भी बहुत होता है वह सीमा जब तक चन्द्र के सीध में रहती है तब तक योग उसी नक्षत्र का गिना जाता है उसकी सीमा समाप्त होने पर पीछे वाले नक्षत्र की आगे की सीमा चन्द्र की सीध में आती है फिर उसका विमान और फिर उसकी पिछली सीमा। यों पूरी सीमा की अपेक्षा इतने अधिक अर्थात् ४५ मुहूर्त तक योग कहा गया है।

इस तरह चन्द्र के साथ ग्रहों का योग क्रम भी उत्तरोत्तर मुहूर्तों में चलता है। सूर्य और नक्षत्र की गति में ज्यादा अ तर नहीं है अतः इन दोनों का योग अनेक दिनों तक चलता है। जिससे ही २८ नक्षत्रों को योग करने में वर्ष पूरा हो जाता है। जब कि चन्द्र के साथ ये सभी नक्षत्र एक महीने में ही योग पूर्ण कर देते हैं। इनके योग काल का वर्णन १० वें प्राभृत के दूसरे प्रतिप्राभृत में कहा गया है।

इसी प्रकार सूर्य और ग्रहों(८८) का योग काल भी क्रमशः एक वर्ष में पूरा होता है।

चंद्र-सूर्य-नक्षत्रनी मंडल गति :-

	चद्र	सूर्य	नक्षत्र
नक्षत्र मास में मंडल चाल	१३ १३/६७	१३ ३४/६७	१३-४६ १/२/६७
चंद्रमास में मंडल चाल	१४ १६/६२	१४ ४७/६२	१४ ११/१२४
ऋतुमास में मंडल चाल	१४ ३०/६१	१५	१५ ५/१२२
सूर्य मास में	१४ ११/१५	१५ १/४	१५ ३५/१२४
अभिवर्द्धित मास में	१५ ३३/८६	१५ २४५/२४८	१६ ४७/१४८८
एक अहोरात्र में चाल	१/२ में ३१/९१५ कम	१/२	१/२ से २/७३२ अधिक
एक मंडल चलने का समय	२ ३१/४४४ दिन	२ दिन	२ दिन में २/३६७ कम (१ ३६५/३६७ दिन)
एक युग में	८८४	९१५	१८३५/२

✵ प्राभृत-१६ ✵

प्रश्न-१ : च द्र सूर्य का लक्षण क्या है ?

उत्तर- चन्द्र का लक्षण प्रकाश करने का है। सूर्य का लक्षण प्रकाश और ताप करने का है एव छाया(च द्राच्छादन-सूर्याच्छादन)का लक्षण अ धकार करने का है।

✵ प्राभृत-१७ ✵

प्रश्न-१ : च द्र सूर्य का चयोपचय कब होता है ?

उत्तर- इनकी एक पल्योपम साधिक की उम्र होती है। वह पूर्ण होने पर एक इन्द्र चवते है दूसरे उत्पन्न हो जाते है। इस तरह पर परा से अनादि अन तकाल तक होते रहते हैं। सूर्य चन्द्र के विमान में पृथ्वीकाय के पुद्गल और जीव नये आते रहते हैं, पुराने चवते रहते हैं।

इस विषय में २५ मान्यताएँ सूत्र में कही है। कोई १ समय कहते है, कोई मुहूर्त यावत् उत्सर्पिणी से उत्पन्न होने च्यवने का कहते हैं, किन्तु वे सभी मान्यताएँ असमीचीन है।

✵ प्राभृत-१८ ✵

प्रश्न-१ : समभूमि से चन्द्र सूर्य कौन कितने ऊँचे है?

उत्तर- समभूमि से सूर्य विमान ८०० योजन ऊपर है। ८८० योजन ऊँचाई पर च द्र है। ग्रह नक्षत्र तारा विभिन्न ऊँचाई पर है। अतः उनका अलग अलग कथन नहीं करके समुच्च कथन है कि समभूमि से ७९० योजन से लेकर ९०० योजन ऊँचाई तक सर्वत्र तारा विमान है तथा ग्रह नक्षत्र भी अलग-अलग ऊँचाई पर है, उनका खुलाशा नहीं किया गया है।

इस विषय में २५ मान्यताएँ है- कोई सूर्य को १००० योजन ऊँचा बताते है यों दो से २५-२५॥ हजार योजन ऊँचाई कहते है वे सभी असमीचीन मान्यताएँ है।

प्रश्न-२ : तारा विमान सूर्य से ऊँचे है या नीचे है ? अल्पर्द्धि है या समऋद्धि है ?

उत्तर- चन्द्र-सूर्य से अधिक ऊँचाई पर भी ताराविमान है, नीचाई पर भी है। समकक्ष भी तारा विमान है। उन तारा विमान में रहने वाले देव सूर्य विमान वाले देवों से समऋद्धि भी हो सकते और अल्पर्द्धि होते है अधिक ऋद्धि वाले नहीं होते। तारा विमानवासी देवों की उत्कृष्ट स्थिति **पाव पल्योपम** की है और सूर्य विमानवासी सामान्य देवों की स्थिति भी पाव पल्योपम की है। अतः स्थिति की अपेक्षा समऋद्धि कहे गये हैं। देवों में ऋद्धि की न्यूनाधिकता में स्थिति का ही मुख्य कारण होता है।

यदि स्थिति समान हो तो चन्द्र महर्द्धिक है उससे सूर्य अल्पर्द्धिक है। उससे ग्रह नक्षत्र और तारे क्रमशः अल्पर्द्धिक है।

प्रश्न-३ : सूर्य चन्द्र का आपसी स ब ध कैसा होता है ?

उत्तर- बलदेव वासुदेव की तरह च द्र सूर्य दोनों तुल्य होते हैं। दोनों की राज्यऋद्धि एक ही होती है उसे बलदेव की कहो या वासुदेव की, दोनों का सम्मिलित परिवार है। २८ नक्षत्र, ८८ महाग्रह, ६६९७५ कोड़ा-कोड़ी तारे, यह एक चन्द्र सूर्य का परिवार है।

प्रश्न-४ : मेरुपर्वत से ज्योतिषी कितने दूर रहते हैं ?

उत्तर- मेरुपर्वत १०००० योजन जाड़ा है उसके चौतरफ ११२१ योजन दूरी तक कोई भी तारे आदि नहीं होते हैं। उतनी दूरी छोड़ने बाद ही तारे आदि होते है जो वहीं पर से परिक्रमा लगाते है।

लोकांत से लोक के अ दर ११११ योजन तक ज्योतिषी विमान नहीं होते हैं। उससे अधिक अ दर ज्योतिषी विमान तारे आदि होते हैं।

प्रश्न-५ : सबसे अ दर बाहर ऊपर नीचे ऊँचे नक्षत्र कौन है?

उत्तर- (१) अभिजित नक्षत्र सबसे अधिक मेरु के निकट आभ्य तर म ड़ल में है। (२) मूल नक्षत्र सबसे अधिक बाह्यक्षेत्र तक लवण समुद्र में है। (३) सबसे अधिक ऊपर स्वाति नक्षत्र है। (४) भरणी नक्षत्र समस्त नक्षत्रों से नीचे है।

प्रश्न-६ : ज्योतिषी विमानों का स स्थान कैसा होता है ?

उत्तर- च द्र सूर्य आदि सभी के विमान अर्ध कपीठ के फल जैसा होता है, नीचे समतल होता है ऊपर गोल गुम्बज के सदृश होता है। सर्व स्फटिक रत्नमय होते हैं। तपनीय स्वर्ण की बालुरेत विमान में फैली हुई होती है।

प्रश्न-७ : विमान की ल बाई चौड़ाई एव देवों की स्थिति कितनी होती है ?

उत्तर- विमान की ल बाई चौड़ाई एव देवों की स्थिति इस प्रकार है-

विमान की ल बाई चौड़ाई :-

नाम	आयाम विष्क भ	बाहल्य	वाहकदेव	स्थिति		देवी की उत्कृष्ट
				जघन्य	उत्कृष्ट	
चद्र	५६/६१ यो।	२८/६१	१६०००	१/४ पल।	१ पल १ ला। वर्ष	१/२ पल। ५० ह।
सूर्य	४८/६१ यो।	२४/६१	१६०००	१/४ पल।	१ पल १ ह। वर्ष	१/२ पल। ५००
ग्रह	२ कोस	१ कोस	८०००	१/४ पल।	१ पल	१/२ पल।
नक्षत्र	१ कोस	१/२ कोस	४०००	१/४ पल।	१/२ पल।	१/४ पल। सा।
तारा	१/२ कोस	५०० ध।	२०००	१/८ पल।	१/४ पल।	१/८ पल। सा।

प्रश्न-८ : वाहकदेव कहाँ रहते है ?

उत्तर- विमान नीचे से सपाट सीधा होता है वहाँ बीच केन्द्र से ४ प क्तियाँ चार दिशाओं में होती है। हाथी, घोड़ा, बैल और सि ह ये चार आकार होते हैं, उसमें देव प्रविष्ट होकर चलते हैं। वे देव गतिरतिक होते हैं। वाहक देवों की स ख्या जो १६००० आदि कही गई है उसके चार विभाग जितने अर्थात् ४०००-४००० चारों दिशाओं में समझ लेना चाहिये। यों तो विमान स्वाभाविक ही अनादि से गति करते है, फिर भी देवों की औपचारिक व्यवस्था होती है।

प्रश्न-९ : ताराओं का स्वाभाविक अथवा व्याघात आसरी अ तर-दूरी आपस में कितनी होती है ?

उत्तर- स्वाभाविक अ तर जघन्य ५०० धनुष उत्कृष्ट २ कोष का होता है। मेरु पर्वत बीच में आने पर दोनों बाजु के ताराओं का अ तर १२२४२ योजन (१००००+११२१+११२१)होता है। निषध नील आदि पर्वतों के कूट बीच में हो जाने से २६६ योजन का (२५०+८+८)अ तर ताराओं का आपस में हो जाता है। कूटों से तारा विमान ८-८ योजन दूर रहते हैं। मेरु से ११२१ योजन दूर रहते हैं। कूटों की चौड़ाई वहाँ २५० योजन की होती है।

नोट- च द्र सूर्य की देवी परिवार स ब धी वर्णन जीवाभिगम प्रश्नोत्तर भाग-६ में है तथा उनके सुखोपभोग स ब धी वर्णन भगवती श.१२ उद्देशक-६ में प्रश्नोत्तर भाग-३ में है।

प्राभृत-१९

प्रश्न-१ : इस प्राभृत में विषय वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर- इसमें अनेक जानने योग्य सामान्य विशेष तत्त्व है, वे इस प्रकार है- (१) जम्बूद्वीप में २ सूर्य २ चन्द्र ५६ नक्षत्र १७२ ग्रह १,३३,९५० कोटाकोटी तारे हैं। आगे प्रत्येक द्वीप समुद्र में अधिक अधिक स ख्या है जो जीवाभिगम सूत्र प्रश्नोत्तर भाग-६ में देखें।

यहाँ इस विषय में १२ मान्यताएँ कही गई है उनमें यह बताया गया है कि सम्पूर्ण लोक में एक सूर्य चन्द्र प्रकाश करते है। इसी प्रकार ३,३-१/२,७,१०,१२,४२,७२,१४२,१७२,४२०००, ७२०००, चन्द्र सूर्य सम्पूर्ण लोक में होने की मान्यताएँ है किन्तु ये समाचीन (सही)नहीं है। सम्पूर्ण लोक में अस ख्य सूर्य, अस ख्य चन्द्र है और उन सभी का अपना परिवार भी है।

(२) नक्षत्र और तारे सदा एक म ड़ल में परिक्रमा लगाते हैं। अर्थात् ये म ड़ल नहीं बदलते हैं। सूर्य, चन्द्र, ग्रहों के म ड़ल बदलते रहते हैं। ये सभी अपने अपने म ड़ल में मेरु पर्वत की परिक्रमा लगाते हैं।

(३) ये सूर्य, चन्द्र आदि ऊँचाई की अपेक्षा जहाँ है वहीं रहते हैं नीचे ऊँचे नहीं होते हैं। उसी ऊँचाई में म ड़ल परिवर्तन करते हैं।

(४) इन चार (तारा को छोड़कर) ज्योतिषियों की गति विशेष से मनुष्यों के सुख दुःख का स योग वियोग होता है अर्थात् इनके निमित्त से सुख दुख के स योग का ज्ञान होता है।

(५) बाह्य से आभ्य तर म ड़ल में आते समय सूर्य का ताप क्षेत्र बढ़ता है बाहर जाते समय घटता है। चन्द्र के नीचे चार अ गुल दूर नित्य राहु का विमान चलता है। एक दिन में १/१५ भाग चन्द्र घटता बढ़ता है और ६२ भाग करने की अपेक्षा स्थूल दृष्टि से ४/६२ भाग प्रतिदिन बढ़ता घटता है।

(६) मनुष्य क्षेत्र में सूर्य चन्द्र आदि चलते हैं, उसके बाहर सभी चन्द्र सूर्य अपने स्थान पर स्थिर हैं।

(७) धातकी ख ड़ से आगे आगे के द्वीप समुद्रों में उसके अन तर पूर्व के द्वीप समुद्र के सूर्य स ख्या से तीन गुणे करके उस में अ दर के सभी द्वीप समुद्रों के सूर्य की स ख्या जोड़ने पर जो राशि हो उतने सूर्य चन्द्र और उनके परिवार होते हैं।

(८) ढ़ाई द्वीप के बाहर चन्द्र के साथ अभिजित नक्षत्र का योग है और सूर्य के साथ पुष्य नक्षत्र का योग रहता है। इस प्रकार ही ये सदा स्थिर है। वहाँ प्रत्येक सूर्य-सूर्य का एव चन्द्र-चन्द्र का परस्पर अ तर १ लाख योजन है तथा सूर्य और चन्द्र का अ तर ५०००० योजन का है।

(९) ज्योतिषी के इन्द्र का विरह ६ महीने का हो सकता है उस समय ४-५ सामानिक मिलकर उस स्थान सम्बन्धी कार्य की पूर्ति करते हैं।

(१०) द्वीप समुद्रों का वर्णन जीवाभिगम सूत्र में देखें।

नोट- ग्रहों के म ड़ल आदि सम्बन्धी स्पष्टीकरण आगम में नहीं है अर्थात् इनके म ड़ल कितने है मुहूर्त गति कितनी है इत्यादि कोई भी वर्णन उपलब्ध नहीं होता है।

प्राभृत-२०

प्रश्न-१ : इस प्राभृत में किस विषय की प्रधानता से निरूपण किया गया है ?

उत्तर- इस प्राभृत में सूर्य, चन्द्र और राहु विमान स ब धी अनेक स्पष्टीकरण किये गये हैं। वे इस प्रकार है-

(१) चन्द्र सूर्य को कोई अजीव पुद्गल मात्र मानते हैं राहु को भी १५ प्रकार के काले पुद्गल मानते हैं और जीव भी मानते हैं। वास्तव में ये सभी विमान है और इनके स्वामी चन्द्र, सूर्य, राहु आदि महान ऋद्धिसम्पन्न वैक्रिय शक्तिसम्पन्न देव है।

(२) राहु के विषय में लोक में विविध कथन है कि वह एक भुजा से सूर्य चन्द्र को ग्रहण कर दूसरी भुजा से छोड़ता है, मुँह से ग्रहण करता है या मुँह से निकालता है, जिधर से ग्रहण करता उधर से ही निकालता है अथवा अन्य तरफ से निकालता है इत्यादि।

(३) वास्तव में राहु महर्द्धिक देव है उसके पाँच र ग के विमान हैं । काले र ग वाले विमान सूर्य चन्द्र को आच्छादित करते हैं अर्थात् मनुष्यों के और सूर्य चन्द्र के बीच में आड़े आ जाते हैं, दिखने में बाधक हो जाते हैं, उनके प्रकाश को आच्छादित कर देते हैं। ये राहु विमान सूर्य चन्द्र के निकट नीचे आ जाते हैं तब मनुष्य लोक में सूर्य चन्द्र पूर्ण नहीं दिखता है उसका प्रकाश पु ज भी अपूर्ण सा हो जाता है तब सूर्य चन्द्र ख ड़ित या आच्छादित दिखते हैं। नित्य राहु चन्द्र के पूर्ण दिखने में सदा बाधक बना रहता है। कुछ न कुछ हीनाधिक सीध में आता रहता है, खिसकता रहता है। पर्व राहु सूर्य चन्द्र दोनों के नीचे कभी कभी आता है । इसके पुद्‌गल नित्य राहु से भी अधिक काले हैं ।

(४) पर्व राहु चन्द्र के नीचे कम से कम ६ महीने बाद और उत्कृष्ट ४२ महीनों बाद आता है, इससे अधिक समय नहीं होता है। सूर्य के नीचे आने में भी कम से कम ६ महीने का समय व्यतीत हो जाता है और उत्कृष्ट ४८ वर्ष तक भी वह पर्व राहु सूर्य के नीचे आड़ा नहीं आता है।

(५) राहु के द्वारा चन्द्र सूर्य पश्चिम दक्षिण किधर भी आच्छादित किये जा सकते हैं क्यों कि ये तीनों ही म ड़ल परिवर्तित करते रहते हैं एक ही म ड़ल(मार्ग)में नहीं चलते हैं। इसी कारण आच्छादित किये जाते हुए सूर्य चन्द्र विविध आकार में-(आड़े, खड़े, तिरछे, बैठे, सोये इत्यादि आकारों में)दृष्टिगोचर होते हैं, माने जाते हैं, कहे जाते हैं।वास्तव में ये आच्छादित होने के ही विविध प्रकार है और म ड़ल परिवर्तन के कारण से बनते हैं।

(६) राहु चन्द्र सूर्य को निगल रहा है, वमन कर रहा है, कुक्षि भेद कर रहा है, घात कर रहा है इत्यादि कथन भी आच्छादित की भिन्नताओं के कारण ही कल्पित करके लोगों द्वारा कहे जाते हैं, माने जाते हैं, वैसी स ज्ञा दी जाती है ।

(७) चन्द्र विमान का नाम मृगा क है, सुन्दर सुरूप है, देव भी सुन्दर सोम्य कांति वाले है, इसलिये चन्द्र को शशि भी कहा जाता है । विमान के रत्नों की प्रभा में कुछ हीनाधिक एव विशेषता इस प्रकार की है जिससे मनुष्य लोक में दिखने वाले चन्द्र के बीच में मृग जैसे चिन्ह(आकार)का आभास होता है ।

(८) लोक में सूर्य ही समय, आवलिका, मुहूर्त, दिन, रात की आदि करने वाला है। सूर्योदय से ही नया वर्ष, नया दिन, नया युग एव उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी प्रारम्भ होते हैं। अतः इसे आदित्य कहा जाता है। दिन और रात्रि भी सूर्य की प्रमुखता से ही होते है। आकाश म ड़ल में प्रकाश और ताप की अपेक्षा सूर्य का ही साम्राज्य है। उसके अभाव में ही अ धकार एव रात्रि होती है। उसके समकक्ष चन्द्र आदि सभी प्रकाशमान पदार्थ फीके नजर आते हैं । अतः यह काल की, दिन की, युग की, स वत्सर की आदि एव निर्माण का प्रधान निमित्त है इसीलिये इसे आदित्य कहा गया है ।

ग्रह ८८ हैं उनके अलग-अलग ८८ नाम सूत्र हैं । जिसमें- शनिश्चर, भस्म, धूमकेतु, बुध, शुक्र, बृहस्पति, राहु, काल, महाकाल, एक जटी, द्विजटी, केतु आदि ग्रहों के नाम लोक में विशेष रूप से प्रचलित एव परिचित है ।

ज्योतिषी देवों के काम भोग जनित सुख आदि की उपमा युक्त वर्णन भगवती सूत्र में कथित वर्णन के समान समझना चाहिये ।

प्रश्न-२ : दिन की युग की आदि और निर्माण का प्रधान निमित सूर्य है तो लोग पर्व तिथी चन्द्र उदय से क्यों मानते हैं ?

उत्तर- प चा ग का निर्माण करने वाले सूर्योदय की प्रधानता से ही तिथि तारीख सूचित करते हुए सम्पूर्ण प चा ग बनाते है ।

इतना होते हुए भी लोक में विद्वान कहे जाने वाले कई लोग प चा ग में सूचित तिथि को छोड़कर अस्त तिथि से पर्व दिन के उपवास आदि व्रत करते हैं यह उनका लौकिक भ्रमित प्रवाह मात्र है। क्यों कि सभी तिथियों की युग की, स वत्सर की आदि करने वाला तो सूर्य ही आगम में कहा गया है तो पर्व तिथि की आदि उसे करने से अस्वीकार करना कैसे उपयुक्त हो सकता है ।

आगमों के व्याख्याकारों ने तो उपवास आदि व्रत प्रत्याख्यान सभी सूर्योदय की प्रमुखता की तिथि से करने का ही विधान किया है। फिर भी जैनागम वेत्ता लौकिक प्रवाह से पर्व तिथि स वत्सरी का उपवास भी सूर्योदय की तिथि छोड़ कर, प चा ग सूचित को छोड़ कर

करने लग गये हैं, यह लौकिक नकल आगम सम्मत नहीं है। क्यों कि आदित्य-सूर्य ही दिवस आदि की आदि करने वाला कहा गया है। अतः किसी भी पर्व दिन की अस्त समय से आदि(प्रार भ) मानना आगम सम्मत नहीं हो सकता। इसीलिये ही प चा गकार भी सभी तिथियों को सूर्योदय के लक्ष्य से ही अ कित करते हैं, कोई भी प चा ग सूर्यास्त के लक्ष्य से आज तक नहीं बना है, नहीं बनेगा।

निष्कर्ष यह है कि पर्व तिथि के उपवास आदि प चा ग में लिखी तिथि से ही करने चाहिये। आगम में पर्व तिथियाँ अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस, पूर्णिमा एव पर्यूषणा स वत्सरी कहे गये हैं। इनमें से अष्टमी, चतुर्दशी आदि के उपवास आदि प चा ग में लिखी तिथि से किये जाते हैं किन्तु पक्खी, स वत्सरी के उपवास आदि के लिये उस तिथि को छोड़कर अस्त तिथि को ढू ढ़ा जाता है। यह अपूर्ण और भ्रमित नकल परम्परा है। किन्तु आगम से स गत नहीं है।

प्रश्न-३ : चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र का परिचय किस प्रकार है ?

उत्तर- इस सूत्र के नाम से एक दो पृष्ट जितना ही पाठ उपलब्ध होता है। उसमें भी विषयों का स कलन सूचन मात्र है और वे विषय प्रायः सूर्यप्रज्ञप्ति रूप ज्योतिष गण राज प्रज्ञप्ति में अ कित है। अतः यह सूत्र लिपिकाल के दोष से दूषित है। यह सूत्र स्वत त्र था या किस रूप में था, ये १-२ पृष्ट क्यों कैसे अवशेष रहे हैं ? जिनमें भी सूर्य प्रज्ञप्ति के विषयों का ही स कलन मात्र है पाहुड़ प्रतिपाहुड़ भी वैसे ही कहे हैं। अतः उक्त प्रश्न इतिहासज्ञों के खोज के लिये है।

वास्तव में अभी यह सूत्र कुछ भी स्वत त्रता लिये हुए उपलब्ध नहीं है। अतः इसे सूत्र कहना और गिनती में गिनना आदि भी एक प्रवाह पर परा मात्र है। वस्तुतः देखा जाय तो ३२ में या ४५ में इसे आगम गिनने की भी कोई उचितता नहीं है। यदि ऐसे गिने जाय तो न दीसूत्र कथित अनेक आगम और गिने जा सकते हैं। अतः इन दोनों सूत्रों को एक सूत्र ही गिनना चाहिये, उपलब्ध दोनों सूत्र के प्रारम्भ की सूचक गाथाओं में कहीं भी सूर्य प्रज्ञप्ति या चन्द्र प्रज्ञप्ति का नाम ही नहीं है दोनो जगह ज्योतिष राज प्रज्ञप्ति ही नाम अ कित है, यथा-

णामेण इन्दभूइत्ति, गोयमो व दिउण तिविहेण ॥
पुच्छइ जिणवर-वसह , जोइस रायस्स पण्णत्ति ॥
एव जोइस गण राय पण्णति ॥-चन्द्रप्रज्ञप्ति गा.४,सू.प्र गा.४॥

निष्कर्ष यह है कि आज न तो सूर्य प्रज्ञप्ति नामक कोई शास्त्र उपलब्ध है और न चन्द्रप्रज्ञप्ति के नाम का। इस नाम से प्रचलित इन दोनों सूत्रों में ज्योतिष राज प्रज्ञप्ति यही नाम मूलपाठ की तीसरी चौथी गाथाओं में अ कित है। इसलिये यह सूत्र ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति स ज्ञक है और एक ही है। प्राचीन काल में कभी उक्त दोनों नाम के सूत्र रहे होंगे तभी न दी में भी इन दोनों के नाम है। अथवा तो इस एक सूत्र के ही ये भिन्न-भिन्न नाम प्रचलित हुए होंगे और न दीसूत्र में भी नाम अ कन ऐसे प्रचलन से ही परिवर्तित हुआ होगा। क्यों कि न दीसूत्र की नामावली में ऐसे प्रचलित परिवर्तनों का समय समय पर असर हुआ ही है। तभी निरियावलिका-उपा ग सूत्र के ५ वर्गों के ५ सूत्र रूप में नाम अ कित हुए हैं।

सूत्रों की स ख्या आदि की जिज्ञासा के लिये अन्य सारा श पुष्पों (इक्कीसवाँ आदि) का अध्ययन करना चाहिये।

नोट- यहाँ विषयों को कुछ स्पष्ट करने का प्रयत्न तो किया ही गया हैं। फिर भी विशेष अध्ययन के जिज्ञासुओं को इस सूत्र की टीका अनुवाद आदि जो भी प्रति उन्हें उपलब्ध हो उससे अपनी इच्छापूर्ति कर लेनी चाहिये।

॥ सूर्यप्रज्ञप्ति-चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र स पूर्ण ॥

॥ज्योतिष गणराज प्रज्ञप्ति सूत्र स पूर्ण॥

परिशिष्ट :- १

प्रश्न-१ : युग में मास एव मास में दिन-मुहूर्त, सूर्य का स चरण क्षेत्र, म ड़ल परिधि, सूर्य की मुहूर्तगति आदि निकालने की गणित विधि किस प्रकार होती है ?

उत्तर- (१) एक युग में १८३० दिन होते हैं जिसमें नक्षत्र मास ६७ होते हैं अतः १८३० में ६७ का भाग देने पर नक्षत्र मास के दिन निकल जाते हैं उन्हें ३० का गुणा करने पर नक्षत्र मास के मुहूर्त निकल जाते हैं, यथा-

१८३०÷६७=२७-२१/६७=२७ दिन ९-२७/६७ मुहूर्त ।

२७-२१/६७x३०=८१७ मुहूर्त होते हैं नक्षत्र मास में ।

इस प्रकार चन्द्रमास आदि में दिन और मुहूर्त निकाले जाते हैं।

(२) सूर्य एक वर्ष के ३६६ दिन में १८४ म ड़ल में स चरण करता है जिसमें पहले और अ तिम में एकबार और शेष १८२ में दो बार इस तरह १८२x२+२ = ३६६ दिन एक वर्ष में होते हैं। ५ वर्ष का युग कहा गया है। अतः ३६६ x५ = १८३० दिन का युग होता है। इसी के आधार से चन्द्र नक्षत्र आदि के मास दिन आदि निकाले जाते हैं। मुख्यता सूर्य वर्ष से ही है। युग भी सूर्य स वत्सर के दिनों का योग हैं। शेष चन्द्र नक्षत्र आदि के मास वर्ष आदि का इसी में समावेश किया जाता है। इसीलिये सभी ज्योतिषियों में सूर्य लोक व्यवहार में प्रधान है। युग तिथि आदि का कर्ता प्रारम्भ कर्ता है, इसीलिये लौकिक प चा ग में सूर्य के उदय की मुख्यता से तिथियाँ अ कित की जाती है।

(३) सूर्यम ड़ल १८४ हैं और उनके अ तर १८३ हैं। अ तर २-२ योजन के हैं और म ड़ल ४८/६१ योजन के हैं इन्हें परस्पर गुणा कर योग करने पर पूर्ण स चरण क्षेत्र निकल जाता है, यथा-

२x१८३=३६६ एव ४८/६१x१८४=१४४-४८/६१

३६६+१४४-४८/६१=५१०-४८/६१ योजन स चरण क्षेत्र है ।

म ड़ल परिधि ज्ञान- आभ्य तर म ड़ल की परिधि ३,१५,०८९ योजन है उसका आयाम विष्क भ(व्यास) ९९६४० योजन है। व्यास का वर्ग

करके १० गुणा करना फिर वर्गमूल निकालने पर जो राशि प्राप्त होती है वह परिधि का परिमाण होता है, यथा-

९९६४०x९९६४०x१०=९९,२८,१२,९६,००० इसका वर्गमूल निकालने पर ३,१५,०८९ पूर्णांक होते है एव १८०७९ अवशेष रहते हैं। अतः परिधि तीन लाख १५ हजार एगुणासी योजन साधिक होती है।

प्रत्येक अगले म ड़ल में ५-३५/६१ व्यास बढ़ने से १७-३८/६१ योजन परिपेक्ष बढ़ता है। इसे जानने के लिये ५-३५/६१ के इगसठिये भाग करके उनकी उक्त विधि से परिधि निकाल कर पुनः उन इगसठिये भागों के योजन बना लेने चाहिये। यथा- ५-३५/६१ =६१x५ +३५ = ३४० इगसठिये भाग का प्रमाण विष्क भ (व्यास) प्रतिम ड़ल में बढ़ता है। इसकी परिधि परिमाण ३४०x३४० x१०=११,५६,००० इसका वर्गमूल इस प्रकार निकालना चाहिये-

	१०७५ इगसठिये भाग
१	१,१५,६०,००
१	१
२०७	०१५६०
७	१४४९
२१४५	१११००
५	१०७२५
२१५०	००३७५

१०७५ ÷ ६१=१७ ३८/६१ योजन।
स्थूल दृष्टि से १८ योजन प्रति मंडल में परिधि बढने का कहा जाता है ।
वृद्धि+प्रथम मंडल=अंतिम मंडल।
१७ ३८/६१ X १८३=३२२५+३१५०८९ = ३१८३१४।

सर्व बाह्य म ड़ल का परिक्षेप वर्गमूल पद्धति से ३,१८,३१४. ८६९ है। जो स्थूल दृष्टि से(व्यवहार से) ३१८३१५ योजन कहा जाता है।

यथा- १००६६०x१००६६०x१०=१०,१३,२४,३५,६०,०० ।

इस स ख्या का वर्गमूल उक्त विधि से निकालने पर ३,१८,३१४ योजन साधिक निकल आता है।

(४) प्रत्येक म ड़ल की परिधि में ६० मुहूर्त का भाग देने पर उस म ड़ल की मुहूर्त गति निकल आती है। यथा-३१५०८९÷६०= ५२५१-२९/६० योजन प्रथम म ड़ल की मुहूर्त गति है। ३१८३१५÷६०= ५३०५-१५/६० योजन अ तिम म ड़ल की मुहूर्त गति है।

(५) चन्द्र के साथ शतभिषक नक्षत्र १५ मुहूर्त योग अर्थात् आधा दिन योग करता है और एक दिन के ६७ भाग की अपेक्षा ६७/१x१/२= ३३-१/२ भाग दिन। सूर्य के साथ इसके पाँचवें भाग जितने दिन का योग होता है ६७/२x५=६७/१० दिन=६ दिन २१ मुहूर्त।

३० मुहूर्त वालों का इससे दुगुना, ४५ मुहूर्त वालों के इससे तीन गुना होता है अर्थात् चन्द्र के योग काल से सूर्य का योग काल ६७/५ गुणा होता है।

(६) एक युग १८३० अहोरात्र का होता है। जिसमें सूर्य १८३० अर्द्ध म ड़ल गति करता है चन्द्र १७६८ अर्द्धम ड़ल गति करता है, नक्षत्र १८३५ अर्द्धम ड़ल गति करता है। अतः एक अहोरात्र में सूर्य १८३०/१८३० अर्द्धम ड़ल। चन्द्र १७६८/१८३० अर्द्धम ड़ल। नक्षत्र १८३५/१८३० अर्द्धम ड़ल गति करता है। अर्थात् एक अहोरात्र में सूर्य एक अर्द्धम ड़ल। चन्द्र एक अर्द्धम ड़ल में ६२/१८३० भाग कम। नक्षत्र एक- अर्द्धम ड़ल से ५/१८३० भाग अधिक चलता है।

जब चन्द्र को १७६८ अर्द्धम ड़ल में १८३० दिन लगते हैं तब १ अर्द्धम ड़ल में=१८३०/१७६८ दिन।

तब चन्द्र को एक पूर्ण म ड़ल में=१८३०/१७६८x२=१८३०/८८४=२-३१/४४२ दिन लगते हैं।

प्रश्न-२ : नक्षत्र स ब धी १२ द्वार का विचार तथा स वत्सर-युग मिलान किस प्रकार होता है ?

उत्तर- बारह द्वारों से यहाँ विचार किया जाता है यथा- (१) नक्षत्र नाम (२) आकार (३) तारा स ख्या (४) म ड़ल में नक्षत्र (५) रात्रिवाहक (६) म ड़ल सम्बन्ध (७) योग (८) सीमा विष्क भ (९) योग काल (१०) मुहूर्त गति (११) म ड़ल दूरी (१२) मास स वत्सर काल मान।

(१ से ३)नाम, आकार, तारे- इनका चार्ट १० वें प्राभृत के आठवें नवमें प्रतिप्राभृत में दिया गया है।

(४) म ड़ल में नक्षत्र-नक्षत्र के आठ म ड़ल है उनमें नक्षत्र इस प्रकार है-**पहले म ड़ल में**- अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक, पूर्वाभाद्रपद, उत्तर भाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी,

स्वाति ये १२ नक्षत्र है।**दूसरे म ड़ल में**- पुनर्वसु, मघा ये दो नक्षत्र है। **तीसरे म ड़ल में**- कृतिका। **चौथे म ड़ल में**- चित्रा, रोहिणी। **पाँचवें म ड़ल में**- विशाखा। **छट्ठे म ड़ल में**- अनुराधा। **सातवें म ड़ल में**- ज्येष्ठा। **आठवें म ड़ल में**- मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुष्य, अश्लेषा, हस्त, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा ये ८ नक्षत्र हैं।

(५) रात्रिवाहक- इनका चार्ट दसवें प्राभृत के दसवें प्रतिप्राभृत में है।

(६) म ड़ल सम्बन्ध-

१. चन्द्र के म ड़ल से नक्षत्र म ड़ल का सम्बन्ध- १,३,६,७,८,१०,११,१५

२. नक्षत्र म ड़ल का सूर्य के म ड़ल से सम्बन्ध- १,२,७,८

३. सूर्यम ड़ल का च द्रम ड़ल से स ब ध- १,२,३,४,५११,१२,१३,१४,१५

४. चन्द्र म ड़ल के साथ सूर्य एव नक्षत्र म ड़ल का अर्थात् तीनों का म ड़ल सम्बन्ध-चन्द्रका १-३-११-१५, नक्षत्र का १-२-७-८, सूर्य का १-२७-१४४-१८४। यहाँ स ब ध का मतलब एक दूसरे के सीध में ऊपर-नीचे से है।

(७) जोग- १. दक्षिण योग- ६ नक्षत्र मृगशीर्ष आदि, **२.** उत्तर योग- १२ नक्षत्र अभिजित आदि, **३.** तीनों योग- ७ कृतिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, **४.** दक्षिण व प्रमर्द- पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा **५.** प्रमर्द-ज्येष्ठा।

(८) सीमा विष्क भ- अपने अपने म ड़ल के १०९८०० भाग में से निम्न भाग प्रमाण इन नक्षत्रों का सीमा विष्क भ(अपना योग क्षेत्र) है- ६३० भाग-अभिजित। १००५ भाग-शतभिषक, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा। २०१० भाग- श्रवण धनिष्ठा आदि१५ (प्रा.१०, प्र.प्रा.२)। ३०१५ भाग- उत्तर भाद्रपद, रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ा।

(९) योग काल-

नक्षत्र	च द्र के साथ	सूर्य के साथ
अभिजित	९-३७/६७ मुहूर्त	४ दिवस ६ मुहूर्त
६ नक्षत्र	१५ मुहूर्त	६ दिवस २१ मुहूर्त
१५ नक्षत्र	३० मुहूर्त	१३ दिवस १२ मुहूर्त
६ नक्षत्र	४५ मुहूर्त	२० दिवस ३ मुहूर्त

(१०) मुहूर्त गति :–

	प्रथम म डल	अ तिम म डल
सूर्य	५२५१ २९/६१	५३०५ १५/६०
चंद्र	५०७३ ७७४४/१३७२५	५१२५ ६९९०/१३७२५
नक्षत्र	५२६५ १८२६३/२१९६०	५३१९ १६३६५/२१९६०

(११) म डल अ तर :– सूर्य विमान ४८/६१ योजन, च द्र ५६/६१ योजन, नक्षत्र विमान एक कोस है । यह ल बाई चौडाई है । ऊ चाई इससे आधी है । आठ नक्षत्र मंडलों में सात अंतर–

(१) ७२ ५१/६१, १/७ (२) १०९ १५/६१, ५/७ (३) ३६ २५/६१, ४/७ (४) ३६ २५/६१, ४/७ (५) ७२ २५/६१, ४/७ (६) ३६ २५/६१, ४/७ (७) १४५ ४१/६१, २/७

सूर्य म डल का अ तर २–२ योजन है । चन्द्र म डल का ३५–३०/६१, ४/७ योजन का अ तर ।

(१२)पाँच स वत्सर का कालमान :–

क्रम	स वत्सर	मास के दिन	युग में मास	स वत्सर के दिन	युग के दिन
१	नक्षत्र	२७ २१/६१	६७	३२७ ५१/६१	१६३८ ५४/६७
२	चद्र	२९ ३२/६२	६२	३५४ १२/६२	१७७० ६०/६२
३	ऋतु	३०	६१	३६०	१८००
४	सूर्य	३० १/२	६०	३६६	१८३०
५	अभिवर्धित	३१ १२१/१२४	५७मा०७दि० ११ २३/६२मुहूर्त	३८३ ४/६२	१९१८ ३४/६२

कितने वर्ष बाद मिलान :– (१) च द्र सूर्य का मास मिलान–२–१/२ वर्ष लगभग में (२) च द्र सूर्य स वत्सर का मिलान –३० वर्ष में (२–१/२x१२) (३) च द्र, सूर्य, ऋतु और नक्षत्र स वत्सर का मिलान –६० वर्ष में (४) पाँचों का मिलान– (१) ७८० सूर्य स वत्सर में (२) ८०६ च द्र स वत्सर में (३) ८७१ नक्षत्र स वत्सर में (४) ७९३ ऋतु स वत्सर में (५) ७४४ अभिवर्धित स वत्सर में होता है ।

परिशिष्ट :–२

जैनागम और वैज्ञानिक दृष्टिकोण

प्रश्न–१ : ज्योतिष म ड़ल स ब धी आगमदृष्टि एव वैज्ञानिक दृष्टिकोण की विचारणा किस प्रकार की जा सकती है ?

उत्तर– जैन सिद्धान्तानुसार पृथ्वी प्लेट के आकार गोल अस ख्य योजन रूप है। वह स्थिर है। प्राणी जगत इस पर भ्रमण करते हैं यान वाहन इस पर भ्रमण करते हैं एव इस भूमि के ऊपर आकाश में ज्योतिष म ड़ल, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र स्वाभाविक भ्रमण करते हैं एव यान विमान मानविक दैविक शक्ति से गमन करते हैं। पक्षी आदि तिर्यंच योनिक जीव भी स्वभाव से आकाश में गमनागमन करते हैं। ज्योतिष म ड़ल के बीच में भी उत्तर दिशा में दिखाई देने वाला लोक मान्य ध्रुव तारा सदा वहीं स्थिर रहता है अर्थात् मनुष्यों एव वैज्ञानिकों को वह सदा सर्वदा एक ही स्थल पर दिखता है। हजारों वर्षों से पूर्व भी वहीं दिखता था और हजारों वर्ष बाद भी उसी एक निश्चित स्थान पर दिखता रहेगा।

गोल और घूमने वाली पृथ्वी– वैज्ञानिक लोग पृथ्वी को गोल गेंद के आकार मान कर भी उसे एक केन्द्र बिन्दु पर सदा काल घूमने वाली मानते हैं और सूर्य को स्थिर मानते हैं। एव सूर्य का चलते हुए दिखना भ्रमपूर्ण मानते हैं। पृथ्वी को भी १००० माइल प्रति घ टा चलने वाली मानते हैं। इस चाल से वह अपनी धुरी पर फिरती रहती है साथ ही दूसरी गति से वह अपना स्थान छोड़ कर पूर्णतः सूर्य के परिक्रमा भी लगाती है।

ट्रेन एव पक्षी का उदाहरण– चलती हुई रेल(ट्रेन)में जैसे पृथ्वी वृक्ष चलते दिखते हैं वह भ्रम है। वैसे ही सूर्य आदि हमें चलते हुए दिखते हैं यह भी भ्रम है ऐसा वैज्ञानिक मानते हैं। किन्तु जब ट्रेन चलती है तब उसके भीतर तो व्यक्ति चल फिर सकता है, गेंद खेल सकता है किन्तु उस ट्रेन के बाहर या ऊपर कोई कूद कर खेल नहीं सकता या गेंद से नहीं खेल सकता है। इसी प्रकार यदि पृथ्वी चलन स्वभाव वाली होती और १००० माइल प्रति घ टा चलती होती तो इसके ऊपर आकाश में पक्षी उड़कर पुनः अपने स्थान पर नहीं बैठ सकते हैं।

क्यों कि पृथ्वी जिस दिशा में १००० माइल की गति से चल रही है तो उससे विपरीत दिशा में दो माइल आकाश में एक घ टा चलकर पक्षी पुनः अपने स्थान पर दूसरे घ टे में नहीं पहुँच सकता है। क्यों कि पृथ्वी १००० माइल आगे चली जायेगी। जब कि पक्षी अपने स्थान पर पुनः आते जाते देखे जाते हैं। इस पृथ्वी पर मनुष्य कूदते हैं, गेंद, रि ग खेलते हैं। इसमें कोई दिक्कत नहीं आती है। किन्तु ट्रेन की छत पर बैठकर कोई भी ६ इ च गेंद को कूदाते हुए सफल नहीं हो सकता है और ट्रेन के अ दर अपनी इच्छा सफल कर सकता है इससे स्पष्ट है कि ट्रेन का बाहरी वायुम ड़ल उसके साथ नहीं चलता है। उसी प्रकार पृथ्वी का बाह्य आकाशीय वायुम ड़ल साथ नहीं चल सकता है।

वायुम ड़ल- वायुम ड़ल साथ चलने की बात भी कल्पित एव पूर्ण सत्य नहीं है। जिस प्रकार ट्रेन का भीतरी वायुम ड़ल साथ चलना स भव है किन्तु बाह्य वायुम ड़ल साथ नहीं चलता है। उसी प्रकार पृथ्वी के बाह्य विभाग का वायु म ड़ल साथ चलना कहना अप्रमाणिक मनगढ़ त कथन है एव अस भव है। वह केवल अपने आग्रह का प्रकटीकरण मात्र है। वास्तव में तो पृथ्वी स्थिर है इसलिये उसका सारा बाह्य वातावरण उसके साथ है। पक्षी आदि का निराबाध गमन भी इसी कारण हो सकता है। वायुयान भी अपनी गति से ही म जिल पार करते हैं, पृथ्वी की गति से नहीं।

इसलिये यह स्पष्ट सत्य है कि पृथ्वी स्थिर है, भ्रमणशील नहीं है। सूर्य आदि ज्योतिष म ड़ल भ्रमणशील है। यह सम्पूर्ण ज्योतिष म ड़ल समभूमि से ७९० योजन ऊपर जाने के बाद ९०० योजन तक में कुल ११० योजन जाड़े क्षेत्र में एव हजारों योजन ल बे चौड़े क्षेत्र में है।

प्रश्न-२ : ध्रुव तारा क्या है ?

उत्तर- भूमि से इतनी उँचाई पर रहे हुए ये सूर्य आदि सदा भ्रमण करते रहते हैं। एक ध्रुव केन्द्र के परिक्रमा लगाते रहते हैं। वह ध्रुव केन्द्र मेरु पर्वत है जो ९९००० योजन उँचा है उसकी चूलिका ही हमें ध्रुव तारा रूप दिखती है। मेरु भी स्थिर भूमि का ही एक अ श है। अतः ध्रुव तारा दिखने वाला व माना जाने वाला वह तारा नहीं किन्तु ध्रुव केन्द्र रूप मेरु पर्वत का चोटी स्थल है। जो वेडूर्य मणिमय होने

से चमकते हुए नजर आता है। वह हमारे से (भरत क्षेत्र के मध्य से ४९८८६ योजन दूर और समभूमि से ९९००० योजन ऊँचा है। माइल की अपेक्षा ८० करोड़ माइल से अधिक ऊँचा और चालीस करोड़ माइल दूर है। सप्तर्षि म ड़ल इसके अत्यन्त निकट परिक्रमा लगाते हुए दिखता है। परिक्रमा सदा स्थिर वस्तु के लगाई जाती है। मेरु स्थिर केन्द्र है उसी के ही सम्पूर्ण ज्योतिष म ड़ल परिक्रमा लगाता है। सूर्य पृथ्वी आदि को गतिमान मानकर भी वैज्ञानिक उसे परिक्रमा केन्द्र भी मानते हैं यह भी एक व्यापक भ्रम है।

प्रश्न-३ : इस विषय में वैज्ञानिकों के मुख्य सिद्धा त क्या है ? और उसकी विचारणा किस प्रकार की जा सकती है ?

उत्तर- वैज्ञानिक लोग सूर्य को आग का गोला मानते हैं, चन्द्र को पृथ्वी का टुकड़ा मानते हैं, चन्द्र पृथ्वी के चक्कर लगाता है, पृथ्वी सूर्य के चक्कर लगाती है, सूर्य किसी अन्य सौर्य म ड़ल के चक्कर लगाता है। पृथ्वी अपनी धुरी पर भी १००० माइल प्रति घ टा की चाल से घूमती है। इस प्रकार सूर्य को भी चक्कर काटने वाला बताते हैं। पृथ्वी तथा च द्र को तीन तीन प्रकार की गतियों से गतिमान कल्पित करते हैं, यथा- पृथ्वी (१) अपनी धूरी पर घूमती है (२) सूर्य के चक्कर लगाती है और (३) सूर्य किसी सौर्यम ड़ल के चक्कर लगाता है उसके साथ पृथ्वी भी दौड़ती है। चन्द्र भी (१) पृथ्वी के चक्कर लगाता है (२) पृथ्वी के साथ सूर्य के भी चक्कर लगाता है (३) और सूर्य के साथ सौरम ड़ल के भी चक्कर लगाता है। इस कल्पना में पृथ्वी और चद्र की तीन गुणी गति अर्थात् करोड़ो माइल प्रति घ टा की गति होती है। इस प्रकार की तीव्र गति करने वाले चन्द्र पर किसी के जाने की कल्पना करना अथवा प्रयत्न करना एव प्रचार करना केवल भ्रम मूलक है एव हास्यास्पद है।

त्रिविध गतियों की अवास्तविकता- पृथ्वी तीन गुणी गतियों से दौड़ती है तो भी उस पर गर्मी के दिनों में कई बार हवा नाम मात्र भी नहीं रहती है ऐसा क्यों ? सामान्य गति से चलने वाले वाहन जब ठहरे हुए होते हैं तो गर्मी होती है किन्तु जब वे चल देते हैं तो हवा का स चार स्वतः हो जाता है। तब यदि पृथ्वी तीन गतियों से निर तर

दौड़ती होती तो कमरों के अ दर या मैदान में कहीं भी निर तर जोरदार हवा का तुफान रहना चाहिये। किन्तु ऐसा नहीं देखा जाता है। इस दृष्टा त से एव पक्षियों के उड़कर पुनः अपने स्थान में आने के दृष्टा त से पृथ्वी का स्थिर रहना ही सुस गत होता है ।

वास्तविक सत्य–सूर्य चन्द्र आदि ये ज्योतिषी देवों के विमान है जो गति स्वभाववाले होने से सदा अनादि से गतिमान रहते हैं। ये विविध रत्नों के अनादि शास्वत विमान है। ये अपने निश्चित सीमित म ड़लों मार्गो में एक सीमित गति से सदा निर तर भ्रमण करते रहते है और इन रत्नमय विमानों के रत्न ही मनुष्य लोक को प्रकाशित एव प्रतापित करते रहते है ।

न तो ये अग्निपि ड़ है और न ही पृथ्वी के कटे हुए टुकड़े रूप है। पृथ्वी से कटा टुकड़ा पृथ्वी से ऊपर जाकर गोल चन्द्र बन जाय और चमकने लग जाय प्रकाश देने लग जाय इत्यादि ये सारी वैज्ञानिक लोगों की बिना प्रत्यक्षीकरण की कल्पनाएँ मात्र है ।

सत्य सुझाव– जब वैज्ञानिक बिना पास में गये एव बिना देखे ही केवल अपनी रुचि या कल्पना मात्र से सूर्य को आग का गोला मान सकते हैं, मनवा सकते हैं तो फिर बिना देखे ही आगम श्रद्धा को स्वीकार कर इन्हे देवों के भ्रमणशील विमान ही स्वीकार कर लेना चाहियै। और पृथ्वी को स्थिर मान लेनी चाहियै। जब कल्पना ही करना है तो लोक में प्रचलित धर्म सिद्धा तों में और ज्योतिष शास्त्रों में इनका जो स्वरूप अ कित किया गया है उसे ही स्वीकार कर लेना चाहिये एव तदनुसार ही सत्य की खोज करनी चाहियै ।

वैज्ञानिकों का सत्यावबोध– वैज्ञानिक कोई भी कभी पृथ्वी को चलती हुई देख नहीं पाये हैं। किसी ने चन्द्र को पृथ्वी का टुकड़ा होते हुए देखा नहीं, किसी को दिखाया भी नहीं है। सूर्य को अग्निपि ड़ रूप गोलाकार किसी वैज्ञानिक ने जाकर देखा भी नहीं है। कल्पनाओं से मान्य करके वैज्ञानिक सदा अपनी मान्यता और कल्पनाओं के अनुसार खोज शोध करते रहते है। उनकी खोज का अभी अ त नहीं आया है। आज भी वे खोज करके नई हजारों लाखों माइल की पृथ्वी स्वीकार कर सकते है। कई वैज्ञानिकों ने भी पृथ्वी गेंद के समान गोल मानने से इन्कार

कर दिया है। इसी प्रकार ये वैज्ञानिक कल्पना, खोज, उपलब्धि भ्रम, अपूर्णता, प्रयास, निराश, पुनः कल्पना, खोज, उपलब्धि, भ्रम ऐसे क्रमिक चक्कर में चलते रहते हैं। किसी वैज्ञानिक ने अपनी खोज को समाप्ति का रूप नहीं दिया है। वे अभी और कुछ खोज सकते है नया निर्णय भी ले सकते हैं, पुराना निर्णय पलट भी सकते है ।

सार– फिलहाल वैज्ञानिकों का ज्योतिष म ड़ल स ब धी निर्णय भ्रमित एव विपरीत है। उसी की विपरीतता से पृथ्वी के स्वरूप को भी वास्तविकता से विपरीत मानकर वे अपनी गणित का मिलान कर लेते है ।

अनेक धर्म सिद्धा तों में आये पृथ्वी एव ज्योतिष म ड़ल के स्वरूप से वैज्ञानिकों की कल्पना विपरीत है। जब वह वैज्ञानिकों की अपनी कल्पना ही है तो उसे सत्य मान कर धर्मशास्त्रों के स गत वचनों को झुठलाना किसी भी अपेक्षा से उचित नहीं है। क्यों कि विज्ञान का मूल ही कल्पना और फिर शोध प्रयत्न है। अतः शोध का अ तिम रिजल्ट राइट न आ जाय तब तक उसके लिये सत्य होने का निर्णय नहीं दिया जा सकता है। जब कि जैन शास्त्रोक्त सिद्धा त विशेष आदरणीय, भ्रम रहित एव विशाल है। ऐसे ज्ञान मूलक सिद्धा तों को विज्ञान के कल्पना मूलक कथनों से प्रत्यक्षीकरण का झूठा आल बन लेकर बाधित करना एव गलत कहना समझ भ्रम मात्र है ।

चन्द्रलोक की यात्रा व्यर्थ– वैज्ञानिकों की चन्द्रलोक यात्रा और उसके प्रयास हेतु किये गये खर्च अभी तक कुछ भी कामयाब नहीं हुए हैं। उन्हें पश्चाताप के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं लगा है। वास्तव में मूल दृष्टि-कोण सुधारे बिना वैज्ञानिकों को ज्योतिष म ड़ल के स ब ध में किसी भी प्रकार की उपलब्धि नहीं हो सकती, यह दावे के साथ कहा जा सकता है। क्यों कि ज्योतिष म ड़ल वैज्ञानिकों की शक्ति सामर्थ्य से बाह्य सीमा में है और उनके स ब धी कल्पनाएँ भी वैज्ञानिकों की सत्य से बहुत दूर है। अतः कल्पनाओं में बहते रहने में ही उन्हें स तोष करते रहना होगौ। पृथ्वी के स ब ध में खोज करते रहने पर तो आगे से आगे किसी क्षेत्र की उपलब्धि इन्हें हो सकती है, किसी नये नये सिद्धा तों की प्राप्ति भी हो सकती है किन्तु दैविक विमान रूप ज्योतिष

म ड़ल जो कि अति दूर है उन्हें आग का गोला या पृथ्वीका टुकड़ा मान कर चलने से कुछ आना जाना नहीं है, व्यर्थ की महेनत और देश का खर्च है।

अतः वैज्ञानिकों को ज्योतिष म ड़ल के स ब ध में महेनत करने के पूर्व धर्म सिद्धा तों के अध्ययन मनन का एव सही श्रद्धा करने का विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। क्यों कि धर्म सिद्धा त और ज्योतिषशास्त्र ही ज्योतिष म ड़ल के अधिकतम सही ज्ञान के पूरक है। स्वत त्र कल्पनाओं से उसका सही ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है।

पुनश्च– पृथ्वी स्थिर है अस ख्य योजनमय एक राजू प्रमाण विस्तृत है। सूर्य चन्द्र आदि गति मान है सदा भ्रमणशील है। सदा एक ही ऊँचाई पर रहते हुए अपने अपने म ड़लों मार्गों में चलते रहते हैं। हमें दिखने वाले सूर्य चन्द्र तारे आदि ये ज्योतिषी देवों के गतिमान विमान है। ये हमें प्रकाश एव ताप देते हैं। दिन रात रूप काल का वर्तन करते हैं। ये भिन्न-भिन्न गति वाले हैं। अतः कभी आगे कभी पीछे कभी साथ में चलते हुए देखे जाते हैं। इस स ब धी विविध वर्णन प्रस्तुत ज्योतिषगण–राज–प्रज्ञप्ति सूत्र में बताया गया है जिसका ध्यान पूर्वक अध्ययन मनन एव श्रद्धान करना चाहिये।

परिशिष्ट–३ :

सत्तरहवें प्रतिप्राभृत के निर्णयार्थ प्रश्नोत्तर

प्रश्न–१ : सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र के दसवें पाहुड़ का १७वाँ प्रतिपाहुड़ भगवान भाषित है ?

उत्तर– इस विषय में यदि हाँ कहा जाय तो मा स आदि खाने का कथन भगवद् कथित मानना होगा, जो कि सर्वथा अनुचित होगा। यदि यह कहा जाय कि नहीं ऐसा कथन भगवद् भाषित नहीं हो सकता, तो इस जिनवाणी के विपरीत पाठ को ३२ आगम के सूर्यप्रज्ञप्ति उपा ग में क्यों रखा जाय, हटा देना चाहिये। यह प्रश्न खड़ा होता है।

प्रश्न–२ : क्या इस पाठ के आगे पीछे कोई पाठ छूट गया होगा ?

उत्तर– हा, यदि छूट गया हो तो उसे पूर्ण करना चाहिये। कोई पूर्ण नहीं कर सकते हैं तो अपूर्ण और अनर्थकारी पाठ को रखना कोई समझदारी

नहीं है, उसे हटा देना चाहिये। अन्यथा दूषित पाठ वाले शास्त्र को आगम रूप में मानना योग्य नहीं होगा। क्योंकि न दीसूत्र में गिनाये गये कितने ही आगम हम ३२ में नहीं मान रहे हैं।

प्रश्न–३ : सूत्र की नकल में अकल की उपयोगिता नहीं लगाना चाहिये न ?

उत्तर– सूत्र में एक अक्षर भी घटाना बढ़ाना अन त स सार वृद्धि का कारण होता है। इसका आशय यह है कि भगवद् वाणी में छद्मस्थ को बुद्धि लगाना पाप है, किन्तु भगवद् वाणी विपरीत व छद्मस्थ की भूल से अनर्थ होता हो तो उसे सुधारना कोई पाप नहीं कहा जा सकता है। जब कि यह सभी एक मत से स्वीकार कर रहे हैं कि यह पाठ भगवद् वाणी का नहीं है। तब इसे हटाने में क्या दोष हो सकता है अर्थात् कुछ भी दोष नहीं।

प्रश्न–४ : क्या कोई साधु यह कह सकता है कि अमुक नक्षत्र में अमुक वस्तु खाकर जाने से कार्य सिद्ध होता है ?

उत्तर– साधु को इस प्रश्न का उत्तर देना भी नहीं कल्पता है। तो हमारे आगम में ऐसे प्रश्न और उत्तर को स्थान ही कैसे हो सकता है।

प्रश्न–५ : सूर्यप्रज्ञप्ति के इस पाठ में तो अनेक प्रकार के मा स आदि खाने के उत्तर है तो क्या ऐसा तीर्थंकर या जैन साधु रचना कर सकते हैं ?

उत्तर– मा स आदि तो दूर रहे किन्तु अन्य पदार्थ खाने के फलावट वाला प्रश्न–उत्तर देना भी जैन आगम व जैन मुनि की विधि से विपरीत है। अतः यह पूरा पाहुड़ ही साधु कृत न होकर किसी दुर्बुद्धि के द्वारा प्रक्षिप्त होना ही पूर्ण स भव लगता है। इतना स्पष्ट होते हुए भी ऐसे जिनवाणी विपरीत पाठ को रखना आगम सेवा व आगम निष्ठा नहीं कहला सकती, किन्तु चिंतन रहित भेड़ चाल ही होगी।

प्रश्न–६ : इस पाहुड़ का कथन अन्य मत का होगा तो ?

उत्तर– इस दसवें पाहुड़ के २२ पाहुड़ पाहुड़ है, जिसमें केवल दो पाहुड़ पाहुड़ में ही अन्य मतों का स ग्रह है। शेष में मात्र जिनमत का ही कथन है। उपलब्ध इस सतरहवें पाहुड़ पाहुड़ की भी जो रचना

उपलब्ध है, उससे ही स्पष्ट होता है कि अन्य मतों के कथन इसमें नहीं है।

सूर्यप्रज्ञप्ति के रचनाकार स्वमत कथन में नक्षत्रों का क्रम अभिजित से ही शुरू करते है जब कि इस पाहुड़ पाहुड़ में कृतिका से शुरू किया गया है। साथ ही सर्वत्र **कज्ज साधेति** ऐसी क्रिया लगाई है तथा इसमें आगे पीछे का पाठ छूटने जैसा भी कुछ नहीं लगता है।

अतः २२ पाहुड़ पाहुड़ की जगह २१ ही रहे होंगे और एक किसी के द्वारा बढ़ाया गया प्रक्षिप्त चल गया समझना चाहिये। अतः समीक्षा करके उसे निकाल कर वापिस २१ पाहुड़ पाहुड़ ही कर लेना चाहिये।

प्रश्न–७ : पूर्वों के वर्णन में अनेक विद्याओं व निमित्तों का वर्णन होता ही है। उसी के आधार से अनेक अ गबाह्य सूत्रों की रचना होती है। अतः सूर्य प्रज्ञप्ति का ऐसा वर्णन वहीं से आया होगा उसे प्रक्षिप्त मानने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर– पूर्वों में अनेक विद्या आदि का वर्णन हो सकता है तथा अन्य अ गसूत्र में भी हो सकता है। किन्तु उसकी भाषा रचना ऐसी अयोग्य नहीं हो सकती है। इस सूर्यप्रज्ञप्ति के पाठ में स्पष्ट सावद्यप्रेरक प चेन्द्रिय वध प्रेरक तथा मा स भक्षण प्रेरक भाषा रचना है इस तरह की वीतराग शासन के आगमों की रचना नहीं हो सकती है।

आगम लिपिबद्ध किये तब कई विषयों को हटा दिया गया, यथा– **पूरा प्रश्नव्याकरण सूत्र तथा आचारा ग सूत्र का सातवाँ अध्ययन** आदि भी हटा दिया गया। अ गसूत्रों के भी चमत्कार आदि के पाठ हटा दिये गये तो तब ऐसे अनर्थ मूलक पाठ को भी क्यों रखा जाता ? इसलिये स्पष्ट है कि यह पाठ उस समय मौलिक रचना का नहीं था। आगम लिपिकाल के बाद का प्रक्षिप्त है।

प्रश्न–८ : इस पाठ के प्रक्षिप्त होने का और भी कोई तर्क है ?

उत्तर– हा ! दसवें पाहुड़ के प्रथम पाहुड़ पाहुड़ में नक्षत्रों के क्रम की पृच्छा है। उत्तर में ५ मता तर बताए है, जिसमें पहला मत ''कृतिका से नक्षत्र क्रम को प्रार भ करने वाला बताया है'' छट्ठा मत स्वय आगमकार

ने अपना बताया है कि अभिजित नक्षत्र से नक्षत्रों का क्रम प्रार भ होता है। तदनुसार अनेक प्रश्नों के उत्तर में अनेक पाहुड़ों में आगमकार ने अपने मत को अभिजित नक्षत्र से प्रार भ करके ही बताया है। किन्तु इस १७वें प्राभृत में जो वर्णन है वह कृतिका से प्रार भ किया गया है जो कि आगमकार के अभिमत से भिन्न है। अतः कभी कोई कृतिका से नक्षत्र क्रम की आदि मानने वाले लिपिकर्ता के द्वारा प्रक्षिप्त किया गया हो, ऐसा स भव है।

प्रश्न–९ : आज तक किसी व्याख्याकार ने इसे प्रक्षिप्त कहा है?

उत्तर– टीकाकार **श्री मलयगिरी जी** ने इस विषय में अपना कोई म तव्य न देकर उपेक्षा ही दिखाई है तथा एक नक्षत्र के भोजन(दहीं) का निर्देश करके कह दिया कि शेष नक्षत्र का वर्णन इसी तरह समझ लेना, इससे यह अनुमान भी होता है कि **मलयगिरी आचार्य** के समक्ष ऐसे मा स परक शब्द नहीं रहे होंगे। अन्यथा वे भी कुछ ऊहापोह अवश्य करते। किन्तु व्याख्याकार **श्री घासीलाल जी म.सा.** ने इसे स्पष्ट शब्दों में प्रक्षिप्त घोषित किया है। जो उनकी चन्द्रप्रज्ञप्ति के इस पाठ की टीका में देखा जा सकता है।

आगमज्ञ **श्री अमोलक ऋषि जी म.सा.**ने भी इस पाठ पर टिप्पण देकर अपना म तव्य प्रकट किया है।

प्रश्न–१० : प्रक्षिप्त मानने की अपेक्षा अन्य मत की मान्यता रूप प्रतिपत्ति मान लेने से भी आपत्ति समाप्त हो सकती है ?

उत्तर– इस दसवें पाहुड़ के २२ पाहुड़ है उनमें २० पाहुड़–पाहुड़ में अन्य मत की प्रतिपतियाँ नहीं कह कर केवल एक अपनी ही मान्यता आगमकार ने बताई है तदनुसार प्रक्षिप्त करने वाले ने भी एक मान्यता रूप पाठ रचा है। प्रतिपत्तियाँ बताने योग्य उत्तर का प्रार भ भी इस पाहुड़ का नहीं है। अतः पड़िवत्तियाँ मानने का कोई प्रमाण या आधार कि चित भी नहीं है। प्रक्षिप्त कहने के तो तर्क व प्रमाण ऊपर कहे गये हैं।

यदि प्रतिपत्तियाँ रूप पाठ रहा होता और यह मात्र मत की एक प्रतिपत्ति रह गई, ऐसी कल्पना की जाय तो ऐसा अधूरा अनर्थकारी अवशिष्ट पाठ तो सर्वथा हेय ही होना चाहिये। जब विद्या चमत्कर के

पूर्ण सूत्र व अध्ययन भी पूर्वाचार्यों ने लिपि पर परा के लिये विच्छेद कर दिये तो ऐसे भ्रामक व स स्कृति विरुद्ध अधूरे पाठ को तो प्रकाशन के सर्वथा अयोग्य ही समझना चाहिये।

प्रश्न-११ : इसका प्रकाशन न करने से एक पाहुड़ कम हो जायेगा और प्रार भ की गाथा में इस पाहुड़-पाहुड़ का विषय निर्देशन का शब्द भी है, उसका क्या होगा ?

उत्तर- आचारा ग सूत्र के **सातवें अध्ययन** का क्या हुआ वही होगा ? या समुचे **प्रश्नव्याकरण सूत्र** का क्या हुआ वही होगा ? अथवा २१ ही पाहुड़ बताये जा सकते है और गाथा न . १८ के दूसरे चरण के अ त में आये **भोयणाणि** के स्थान पर अन्य गाथाओं के दूसरे चरण के अ त में आये शब्द प्रयोग के अनुसार यहाँ भी पूर्ति की जा सकती है, यथा- **तिहि गोत्ता भोयणाणि य** के स्थान पर **तिहि गोत्ता य आहिया,** रखा जा सकता है। तथा गाथा १९ में **बावीस पाहुड़ पाहुड़ा** के स्थान पर **एगवीस पाहुड़ पाहुड़ा** किया जा सकता है।

प्रश्न-१२ : सूत्र में एक अक्षर भी कम ज्यादा करना महान अपराध होता है और अन त स सार वृद्धि का कारण होता है, तो ऐसा कैसे किया जा सकता है ?

उत्तर- रचनाकार गणधर आदि ने यह ठीक नहीं रचा, यह सोच कर हीनाधिक करना आपत्तिजनक है किन्तु लिपिदोष, प्रक्षिप्त पाठ आदि का निर्णय कर स शोधन करना, हटाना, सही सम्पादन करना, कोई दोष जनक नहीं हो सकता। भविष्य में नुकसान का निमित्त जानकर पूरे सूत्र प्रश्नव्याकरण का परिवर्तन भी पूर्वाचार्यों ने किया। गणधर कृत सूत्र को भी परिवर्तित किया। **अतः आपत्तिजनक सर्वज्ञ मार्ग के विपरीत अर्थ के प्ररूपक प्रस्तुत पाठ का विच्छेद करना ससार वर्धक न होकर प्रश सनीय ही होगा।**

प्रश्न-१३ : पूर्व काल में तो ऐसा प्रचार था कि आगम में कुछ परिवर्तन का स कल्प करना भी महान अपराध है तो इतने सारे पाठ प्रक्षिप्त कैसे हुए ?

उत्तर- ऐसा वातावरण पहले भी था और अभी भी है। कई भवभीरु

होते है और कई दुस्साहस वाले किसी भी काल में हो सकते हैं। आगम व ग्र थों के अध्ययन करने व इतिहास का परिशीलन करने से ज्ञात होता है कि आगम लिपिबद्ध होने के बाद जो मध्यकाल बीता उसमें कई आगम सेवा करने वाले भी हुए हैं और कई अनेक उटपटा ग रचनाएँ भी हुई है। सभी मतावल बियों ने अपने अपने मत या विचारों की जड़ें मजबूत करने के और अन्य को उखाड़ फेंकने के अनेक जघन्य पुरुषार्थ किये हैं उस समय ऐसा बहुत कुछ होना स भवित हो सकता है। उदाहरण के लिये **महानिशीथ सूत्र** का परिशीलन पर्याप्त होगा।

अतः सारा श कहने का यह है कि किसी दुर्बुद्धि लिपिकर्ता प ड़ित के द्वारा यह पाठ प्रक्षिप्त किया गया है ऐसा स्पष्ट समझ में आता है। अतः आगम अधिकारी प्रबुद्ध निर्णायक स पादकों को इस पर अवश्य विचार करना चाहिये।

प्रश्न-१४ : जिस किसी को जो पाठ आपत्तिजनक लगा, वे उस पाठ को निकालते जावेंगे तो आगमों की क्या दशा होगी ?

उत्तर- व्यक्तिगत विचारणा का बाधक पाठ निकालना अलग स्थिति है और सर्वज्ञ प्ररूपित सिद्धा त विपरीत प्रक्षिप्त पाठों को निकालना अलग वस्तु है।

प्रश्न-१५ : यह पाठ प्रक्षिप्त ही है, इसका निश्चित प्रमाण हमारे पास क्या है ?

उत्तर- प्रक्षिप्त होने के लिये निश्चित प्रमाण का अभाव महसूस करते हुए यह भी नहीं भूलना चाहिये कि ६००-७०० वर्ष पूर्व तक की ही हस्तलिखित प्रतियाँ प्रायः आगमों की उपलब्ध होती है। उसके पूर्व आगमों के पाठ कैसे थे ? उसके पूर्व कितना लिपि काल और कितना मौखिक काल बीता था उस बीच के काल में विवेकपूर्वक कितने परिवर्तन स घ सम्मति से हुए ? कितने परिवर्तन व्यक्तिगत समझ से हुए और कितने दुर्बुद्धि या स्वार्थबुद्धि से हुए इसके लिये कल्पसूत्र, महानिशीथ सूत्र व अन्य अनेक प्राचीन ग्र थों के स्वाध्याय एव चिंतन से और आगम पाठों के साथ तुलना करने से ज्ञात किया जा सकता है एव अनुभव हासिल किया जा सकता है।

अतः १०००वर्ष पूर्व का तो कोई भी प्रमाण कैसे कहा जा सकता है। सुधर्मा, ज बू से देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक की कोई हस्त प्रति मिलती नहीं है। देवर्द्धिगणि के शास्त्रलेखन के पश्चात ५०० वर्ष तक बीच के काल में क्या घटा, क्या बढ़ा, इसका भी कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता है क्यों कि १५०० वर्ष प्राचीन कोई प्रति नहीं मिलती है।

अतः सम्पूर्ण जैनसमाज से एव जैनागमों से स्पष्ट रूप से विरुद्ध दिखने वाले पाठ के लिये निश्चित प्रमाण की आवश्यकता समझना व्यर्थ है।

कृतिका नक्षत्र से नक्षत्रों का प्रार भ स ब धी तर्क भी प्रक्षिप्तता सिद्ध करने में बहुत ठोस है, उपेक्षा करने योग्य नहीं है तथा लिपि पर परा से प्राप्त आगमों के प्रति विवेक पूर्ण श्रद्धा से निर्णय किया जा सकता है, न कि केवल निर्विचार श्रद्धा से।

आगमों में मद्य मा स आहार को नरक गमन का कारण बताया है। साधु मा स मछली मद्य का सेवन नहीं करने वाले होते है ऐसे आगम वाक्य है। इससे यह निश्चित है कि आगम काल में ये शब्द इसी अर्थ में प्रचलित थे। अतः **आचारा ग सूत्र** में साधु के आहार ग्रहण करने स ब धी पाठ में भ्रान्ति पैदा करने वाले इन शब्दों का प्रयोग आगमकार नहीं कर सकते हैं। क्या उनके शब्दकोष में अन्य शब्द नहीं थे कि वे निषिद्ध और नरक गमन योग्य खाद्यपदार्थों के नाम से साधु के आहार का वर्णन करे कि **मस ग मच्छग भोच्चा, अट्ठियाइ क टए य गहाय।**

अतः **देवर्द्धिगणि के लिपि काल** के बाद और टीकाकार **(शीला काचार्य व मलयगिरी)** आचार्यों के पहले के काल का या बाद का यह प्रक्षिप्त दूषण है। इसे गणधरों और पूर्वधरों पर ड़ालना उचित नहीं है। अहिंसा महाव्रती को भाषा का पूर्ण विवेक रखना आगमों में कहा है। वही साधक ऐसे हिंसा मूलक वाक्य कहे या लिखे यह कितना अनर्थकारी है। यथा- **अमुक सचित पदार्थ खाकर जावे या अमुक का मा स खाकर जावे तो कार्य सिद्ध होवे।**

अन्य आगमों में तो वनस्पति परक अर्थ करने व खेंचतान करके जमा देने से स तोष किया भी जा सकता है किन्तु सूर्यप्रज्ञप्ति में **सावद्य भाषा का दोष** तो फिर भी ज्यों का त्यों सुरक्षित बना रहता है जो पूर्वधर और गणधरों पर ड़ाला जाता है।

१४ पूर्वी की रचना में खेंचतान कर अर्थ जमाना पड़े ऐसे प्रयास करने की अपेक्षा मध्यकाल का प्रक्षिप्त पाठ मानना अधिक उचित प्रतीत होता है। क्यों कि आगमकारों के समय भी मा स मछली और मद्य का प्रचलित अर्थ यही था और उन्होंने इन्ही शब्दों से निषेध और नरक गमन का कथन किया है।

१४ पूर्वी तो अपने ज्ञान के कारण आगम विहारी कहलाते है। वे भविष्य की अर्थ परम्पराओं का विचार करके ही अस दिग्ध रचना करते हैं। अतः जितने स दिग्ध स्थल आगमों के हैं उसे श्रद्धा के बहाने गणधरों आदि पर आरोपित नहीं करना चाहिये। अपितु मध्यकाल में प्रक्षिप्त किया गया प्रदूषण ही समझना चाहिये। अन्यथा अ धश्रद्धा से प्रमाणिक पुरुषों की प्रमाणिकता पर ही प्रहार होगा। जिससे आशातना से बचने की जगह ज्यादा ही आशातना लगेगी।

प्रश्न-१६ : आचारा ग का आठवाँ अध्ययन विच्छिन्न हुआ या निकाला ? सही क्या है ? टीकाकार ने विछिन्न होना कहा है?

उत्तर- आचारा ग के आठवें अध्ययन के विछिन्न होने के स ब ध की टीका के विषय में यह विचारणा चाहिये कि देवर्द्धिगणि के ५००-६०० वर्ष बाद शीला काचार्य हुए है। तथा सैकड़ों साधु देवर्द्धिगणि के समय भारत में थे। उन्हें ११ अ ग, एक पूर्व का ज्ञान तथा ८४ आगम सब क ठस्थ रह गये थे, तब आचारा ग के ही बीच में से सीर्फ, सातवाँ अध्ययन सभी साधु और एक पूर्वधर भूल जावे और विस्मृत होकर विच्छेद हो जाये, ऐसी कल्पना करना सर्वथा अस गत है एव अघटित है। अतः लिपिकाल में अनुपयुक्त समझ कर उसका लिपिबद्ध न करना ही विशेष स गत प्रतीत होता है।

मूल पाठ में उस स्थान पर चूर्णी व्याख्या काल तक विच्छेद आदि कुछ भी लिखा हुआ नहीं था। बाद में जिसके जो समझ में

आया उसने वैसा ही अनुमान किया। किन्तु सही विचार करने पर ही किये गये अनुमान की कसोटी हो सकती है।

प्रश्न-१७ : प्रक्षिप्त मानने पर मौलिक रचना का क्या महत्व रहेगा ?

उत्तर- इस विषय में यह निवेदन है कि अक्षरशः सब मौलिक रचना ही नहीं मान लेना चाहिये क्यों कि पूर्वधरों की रचना ऐसी नहीं हो सकती है प्रमाण के लिये-

(१) दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन का प्रारम्भ- हे आयुष्मन मैने सुना है **उन भगवन ने इस प्रकार फरमाया** है कि जिन शासन में छजीवनिकाय अध्ययन **काशयप गौत्री श्रमण भगवान महावीर ने कथन किया है,** समझाया है, प्ररूपित किया है कि **मुझे उस धर्म प्रज्ञप्ति अध्ययन का अध्ययन** करना श्रेयस्कर है।

इस रचना के छोटे छोटे वाक्य पर शब्द पर तथा उनको स ब धित करने पर क्या अर्थ होता है उस पर विचार करें और १४ पूर्वी, गणधर की योग्यता को सामने रख कर कसोटी करें, देखें-क्या निर्णय आता है।

यहाँ भगवान से प्रत्यक्ष सुनने के भाव बताये है। **भगवान ने क्या फरमाया** यह बताते हुए कहा गया कि इ**स जिन शासन में महावीर ने** प्रज्ञापित किया कि **मुझे..**अध्ययन करना श्रेयस्कर है। क्या श्रुत केवली की ऐसी रचना होती है ? क्या इसमें अस बद्धता नहीं लगती है ?

(२) दशाश्रुतस्क ध दशा १० का मुख्य विषय प्रारम्भ व अ त इस प्रकार है- उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था श्रमण भगवान महावीर धर्म की आदि करने वाले **यावत्** णमोत्थुण पाठ कथित गुण कहना **यावत्** पधारे। भगवान ने मनुष्य देव युक्त परिषद को उपदेश दिया। साधु साध्वी ने नियाणा किया हे आर्यो ! इस प्रकार स बोधन से श्रमण भगवान महावीर ने बहुत से निर्ग्रंथ निर्ग्रंथियों को कहा- हे आयुष्यमन् श्रमणों ! मैंने जो यह धर्म कहा..। नियाणा वर्णन। तब

बहुत से निर्ग्रंथ निर्ग्रंथियों ने श्रमण भगवान महावीर से यह गूढ़ अर्थ सुनकर श्रमण भगवान महावीर को व दन पूर्वक ***यावत्*** प्रायश्चित किया। इसके बाद यह पाठ है कि उस काल उस समय में वहाँ भगवान ने यह पूरा अध्ययन बहुत से साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका बहुत से देव देवी की परिषद में अर्थ हेतु कारण सहित तथा सूत्र व अर्थ तथा तदुभय रूप में बार बार कहा, बार बार समझाया।

विचार करें-अनेक बार भगवान के पूरे नाम युक्त गुण युक्त यह अध्ययन भगवान ने फरमाया था ? अ त में पुनः **तेण कालेण तेण समएण** आदि रचना क्यों की गई ?

भगवान ने उस नगर व बगीचे में उस सम्पूर्ण परिषद में अपने नामों से भरा हुआ यह अध्ययन बार बार क्यों व कितनी बार फरमाया या केवल उस परिषद में घटना ही घटी थी ? इत्यादि उपलब्ध रचना क्रम की विचित्रता प्रत्यक्ष है। इस तरह अनेक सूत्रों में, अध्ययनों में रचना क्रम विचित्र है, जिसे १४ पूर्वी या गणधर द्वारा रचित कहना तो प्रक्षिप्त कहने की अपेक्षा, ज्यादा ही आपत्तिजनक होता है।

(३) उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययन भगवान महावीर स्वामी ने अ तिम समय फरमाये ऐसा प्रचलन है किन्तु कई अध्ययनों की रचना से यह स गत प्रतीत नहीं होता।

आठवें अध्ययन में जो स यम आदि का उपदेश दिया गया है वह भगवान ने स्वत त्र रूप से फरमाया है ? या कपिल मुनि के फरमाये हुए का ही पुनर्कथन किया है ? वैसे ही २० वें अध्ययन में भी अनाथि मुनि के उपदेश का भगवान ने पुनर्कथन किया है ? ऐसा पुनर्कथन तीर्थंकर करते है क्या ? आठवें अध्ययन के विषय में अनेक स पादनों में यह समझाया जाता है कि अध्ययन कथित उपदेश कपिल मुनि ने चोरों को दिया, जिससे प्रतिबुद्ध होकर वे दीक्षित हो गये। कोई चोर १-२ गाथा से प्रतिबुद्ध हुए और कोई पूरे अध्ययन से।

सोचने का विषय है कि इस अध्ययन का विषय तो स यमी

श्रमणों के लिये ज्यादा उपयुक्त है चोरों को प्रतिबुद्ध करने में वह विषय कैसे उपयुक्त हो सकता है ?

भगवान ने ये अध्ययन फरमाये तो किसने सुनकर इन अध्ययनों की रचना की है वे तो अज्ञात ही है। जब कि दशवैकालिक, न दीसूत्र, छेदसूत्र, अनुयोगद्वार सूत्र आदि के रचनाकारों के नाम तो उपलब्ध है । तो यह सूत्र कब बना ? बनाने वाले का नाम क्यों अज्ञात है ?

भगवान से सुनने वाले रचना करे तो अभी-सुधर्मा वाचना व जम्बू प्रभव पर परा चल रही है। उसमें तो अन्य की रचना पर परा कैसे चली ?

अतः उत्तराध्ययन भगवान की अ तिम वाणी कहना और आठवाँ अध्ययन चोरों को उपदेश कपिल मुनि द्वारा कहा बताना आदि भी स गत नहीं है।

मध्यकाल में प्रक्षिप्त करने की प्रवृत्ति का उदाहरण- दशाश्रुतस्क ध सूत्र भद्रबाहु स्वामी रचित (स कलित) है। इसके निर्युक्तिकार (छट्ठी शताब्दी के) द्वितीय भद्रबाहु (वराहमिहिर के भाई) है। निर्युक्तिकार ने प्रथम गाथा में सूत्रकर्ता **प्राचीन भद्रबाहु** को व दन किया है। सूत्र परिचय देते हुए निर्युक्तिकार ने कहा कि इसमें छोटी छोटी दशाएँ कही गई है। बड़ी दशाएँ अन्य सूत्रों में है। आठवीं दशा में (पर्युषणा कल्प)केवल साधु समाचारी स ब धी सूत्रों की व्याख्या उन्होंने की है।

कल्पसूत्र को महत्त्व देने की रुचि वाले मध्यकालीन तथाकथित महापुरुषों ने यह प्रचार किया है कि "बारह सो श्लोक प्रमाण उपलब्ध पूरा कल्पसूत्र, दशाश्रुतस्क ध का आठवाँ अध्ययन ही है जो भगवद् कथित और गणधर गू थित तथा चौदह पूर्वी भद्रबाहु से स कलित है।"

इस प्रचार को पुष्ट करने के लिये आठवीं दशा में किसी ने पूरा **बारह सो श्लोक का कल्पसूत्र लिख भी दिया।** जो ४०० वर्ष से अधिक पुरानी दशाश्रुतस्कन्ध की हस्तलिखित प्रति **अहमदाबाद की एल. ड़ी. लाइब्रेरी** में देखा गया है। उसमें पूरा कल्पसूत्र आठवीं दशा में उपलब्ध है। जो कि **महान प्रक्षिप्तिकरण** का उदाहरण है।

इस कल्पसूत्र के अ त में स्पष्ट मूलपाठ है कि यह पूरा कल्पसूत्र (आठवीं दशा)भगवानने परिषद में बार बार फरमाया, अर्थ हेतु आदि सहित।

कल्पसूत्र का विषय- भगवान के खुद के नामपूर्वक पूरे जीवन का कथन, अ त में ९८०वाँ वर्ष चल रहा है ऐसा कथन व मता तर, साधुओं की पट्टावली, देवर्द्धिगणि आदि को व दन, भगवान ने स वत्सरी की, वैसे ही गणधर करते, वैसे ही आज के आचार्य करते और वैसे ही हम करते आदि आदि है।

ये सब भगवान के मुख से परिषद में कहलाना और अर्थ हेतु सहित बार बार कहलाना इत्यादि पूर्ण सफेद झूठ नहीं तो क्या है फिर भी लिखित मौखिक चल ही गया। इस करामात में आठवीं दशा का स्वरूप भी बिगड़ा। इतने बड़े प्रक्षेप के अनर्थ मध्यकाल में हुए हैं।

अतः निश्चित किये गये दृष्टिकोण में पुनः विचार करना आवश्यक लगे तो विचार करना चाहिये। इसलिये सारे ही जैन समाज के आगम विपरीत पाठ को प्रक्षिप्त नहीं मानने के मानस को परिवर्तित करने की आवश्यकता समझनी चाहिये। यही निवेदन करने का आशय है। ***[ये प्रश्नोत्तर श्रमणस घ के महास तों को लिखाये गये थे।]***

प्रश्न-१८ : मा स परक होने के कारण पाठ निकाल देने की बात मन में जमती नहीं है। पुष्ट प्रमाणों के बिना ऐसे पाठों को निकाला न जाय, ऐसे बाधाजनक पाठ आचारा ग, भगवती सूत्र आदि में भी तो है ?

उत्तर- पूना श्रमण स घ साधु सम्मेलन के प्रस्तावों से निर्मित समाचारी (फोटो कापी) पृ.२० में इस प्रकार है- **चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति और कुछ अन्य सूत्रों में भी ऐसे पाठ है जो वीतराग मार्ग की मान्यताओं के विरुद्ध प्रतीत होते हैं ।**

इस वाक्य का आशय स्पष्ट यह है कि भगवतीसूत्र, आचारा ग

सूत्र और सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र के **मा स** विषयक पाठ वीतराग मार्ग की मान्यता से विरुद्ध है।

इस समाचारी के वाक्य का निर्णय लेने वाले श्रमण इन सूत्रों के इन पाठों को सर्वज्ञ भाषित व गणधर रचित नहीं मानते हैं, यह सुनिश्चित है। क्यों कि कोई भी सुज्ञ निर्णायक किसी पाठ को गणधर रचित मानकर भी उसे वीतराग मार्ग की मान्यता से विरुद्ध होने के आक्षेप से अल कृत नहीं कर सकते हैं।

गणधर रचित भी मानना और ऐसे आक्षेप से अल कृत भी किया जाना विद्वद् समाज के लिये प्रश सनीय नहीं हो सकता है।

क्यों कि गणधरों की रचना को जिनवाणी के विरुद्ध होना कहना महान आशातना का कारण है। जो श्रमणस घीय पदवीधर निर्णायक जिस सूत्रपाठ को जिन मार्ग के विपरीत होने की घोषणा कर सकते है, प्रकाशित कर सकते हैं, वे उस पाठ को गणधर कृत या प्रमाणिक पुरुष कृत तो मान ही नहीं सकते।

जब गणधर कृत या प्रमाणिक पुरुष कृत नहीं माने तो किसका रचित माना जायेगा ? जब कि भगवतीसूत्र व आचारा ग सूत्र स्वय तो गणधर रचित है। सूर्यप्रज्ञप्ति भी पूर्वधर रचित है और उनके ये मा स विषयक पाठ उनके रचित होना स्वीकार नहीं है। **क्यों कि समाचारी में आगम विरुद्ध जो कह दिया गया है।** अतः स्वतः ही यह सिद्ध हो गया कि स्वार्थबुद्धि या दुर्बुद्धि से किसी के द्वारा प्रक्षिप्त ही किये गये उक्त सूत्रों के वे पाठ है।

जब पूना सम्मेलन की समाचारी से ही यह सुनिश्चित और स्पष्ट सिद्ध हो रहा है कि प्रक्षिप्त हुए मा स परक पाठ उस आगम के रचनाकार के स्वय के नहीं है। तब एक विद्वान श्रमण ऐसा कहे कि "ऐसे पाठों को निकाला तो न जाए" इस वाक्य रचना के पीछे कौन सी बुद्धि समझी जायेगी। कोई भी विचारक तटस्थबुद्धि वाला विद्वान इस वाक्य की उचितता नहीं समझ सकता है।

वास्तव में इस समाचारी निर्णायक वाक्य से भी यही प्रेरणा

मिलती है कि ये सूर्य प्रज्ञप्ति आदि के पाठ आगम के मध्य में अनुचित और वीतराग मार्ग विरुद्ध प्रक्षिप्त पाठ है।

इस प्रकार समझ में आ जाने पर भी, किसी की भूल से प्रविष्ट खराबी है ऐसा जानकर के भी, उसके अर्थ भावार्थ को छिपाने की एव मूल को छपाने की नीति, कभी भी प्रश सनीय नहीं हो सकती है।

अतः अपने दृष्टिकोण में पुनः विचार करना चाहिये तथा आगम विपरीत पाठ को प्रक्षिप्त नहीं मानने के सारे जैन समाज के मानस को भी पविर्तित करना आवश्यक समझना चाहिये, यही निवेदन करने का आशय है।

सार– सूर्यप्रज्ञप्ति आदि शास्त्रों के मा स भक्षण प्रेरक पाठ प्रक्षिप्त है और जब प्रक्षिप्त है तो उन्हें हटाकर आगम को शुद्ध स पादन करने में दोष किस बात का है अर्थात् उनका सही स पादन करने में कि चित भी दोष नहीं है।

नोट–प्रक्षिप्तता आदि की जानकारी हेतु आगमों के सारा श रूप में प्रकाशित पुष्प २१ व २२ का भी ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिये।

प्राप्ति स्थान : सन् २०१२ से

हिन्दी साहित्य :

श्री विमलकुमार जी नवलखा
के.ओ. नवलखा टेकसटाइल ट्रेडर्स,
पोस्ट– पीपोदरा (जी.आई.डी.सी)
तालुका–मा गरोल,
जिल्ला– सूरत(गुजरात)
(मो.-०९४२६८८३६०५)

गुजराती साहित्य :

श्री प्रकाशमुनि जी म.सा.
तुरखिया रेडीमेइड, मेइन रोड,
सुरेन्द्रनगर-३६३ ००१
(फोन-(०२७५२)२२६४५७
(मो.-०९६२४७११५९६)

उपा गसूत्र : परिचय
निरयावलिकाप चक

प्रश्न–१ : इस सूत्र का परिचय क्या है ?

उत्तर– श्वे. स्थानकवासी जैनों द्वारा ३२ आगमों में १२ उपा गसूत्र प्रचलित है उसमें यह अ तिम उपा गसूत्र है। खास बात तो यह है कि इस शास्त्र का नाम भी उपा गसूत्र है। इसी के नाम से अ गसूत्रों के बाद का दूसरा आगम विभाजन उपा ग शास्त्र कहलाया ।

इस सूत्र का प्रसिद्ध नाम निरयावलिकादि पाँच शास्त्र है। इस शास्त्र के विभागों, अध्यायों का नाम वर्ग है । वर्ग–५ कहे गये हैं। वर्ग के प्रतिविभागों को यहाँ अध्ययन कहा गया है वे अध्ययन–५२ है। आठवें अ गशास्त्र अ तगड सूत्र में भी ऐसा ही विभाजन है अर्थात् वहाँ भी आठ वर्ग और ९० अध्ययन है। ३२ आगमों में इन दो आगमों का विभाजन एक सरीखा है। प्रस्तुत शास्त्र को ११०९ श्लोक प्रमाण माना गया है। श्लोक ३२ अक्षर का होता है।

पूर्व वर्णित औपपातिक सूत्र से लेकर सूर्यप्रज्ञप्ति तक के शास्त्रों के समान यह शास्त्र भी अज्ञात रचनाकार वाला शास्त्र है। वास्तव में यह शास्त्र भी देवर्द्धिगणि के शास्त्रलेखन के समय ही स कलित लेखित शास्त्र है, ऐसा मानना स्वीकारना ही श्रेष्ठ एव निर्विवाद होता है अर्थात् देवर्द्धिगणि ने अ गशास्त्रों का लेखन करवाया तथा १२ उपा गसूत्र मूलसूत्र आदि भी स भवतः लिखवाये है। और नये शास्त्र की रचना या स पादन भी करवाया । क्यों कि उस समय १ पूर्वधर श्रुतज्ञानी बहुश्रुत आचार्य आदि श्रमण मौजूद थे।

इस शास्त्र पर प्राचीन टीका नामक स स्कृत व्याख्या आचार्य च द्रसूरि की उपलब्ध है। कथाशास्त्र एव सरल आगम होने से इसकी व्याख्या भी स क्षेप में की गई है।

वर्तमान में यह कथाप्रधान शास्त्र अनेक जगह से प्रकाशित प्राप्त

होता है। इसमें कथाओं के माध्यम से इहलोक परलोक, स्वर्ग नरक, कर्म आदि सिद्धा तों का, सा सारिक मोहदशा और दुर्गति, वैराग्य और मुक्ति, राजनीति एव तत्कालीन ऐतिहासिक तत्त्वों का निरूपण है।

प्रश्न–२ : इस शास्त्र के ५ वर्गों के नाम किस प्रकार है और इस शास्त्र को निरयावलिका सूत्र क्यों कहा जाता है ?

उत्तर– इस शास्त्र के ५ वर्गों के नाम इस प्रकार है– (१) निरयावलिका (२) कप्पवड़ सिया (३) पुष्फिया (४) पुष्फचूलिया (५) वण्हिदशा प्रथमवर्ग की मुख्यता से इसका नाम निरयावलिका प्रसिद्ध हुआ है । तदुपरा त इस शास्त्र के ५ वर्ग विभाग ही पाँच शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध है । जब कि यह एक ही शास्त्र है और इसकी मूलपाठ की प्रस्तावना में शास्त्र का नाम उपा गसूत्र कहा गया है और पाँच इस शास्त्र के वर्ग कहे हैं ऐसा मूलपाठ स्पष्ट होते हुए भी ५ वर्गों को ५ शास्त्र कहने की पर परा कब से और क्यों चल गई है उसका कारण अज्ञात है।

तथापि पाँच आगम कहने की पर परा शुद्ध तो नहीं है। इस विषय में कोई भी विद्वान पाठक मूलपाठ की प्रार भिक उत्थानिका पढ़कर समझ सकता है। पर परा के कारण न दीसूत्र की आगमसूचि में इसके पाँच नाम भी अज्ञात समय से लिखे जाने लगे हैं। जिससे इस अशुद्ध पर परा को ज्यादा बल मिला है और समस्त श्वेता बर जैन समाज इन्हें पाँच शास्त्र श्रद्धा से मान रहे हैं। उसी हिसाब से ३२ आगम और ४५ आगम की स ख्या भी मान्यता प्राप्त है। क्यों कि अशुद्ध मान्यताएँ भी कभी दृढ़ पर परा बन जाती है यह लोकप्रवाह स्वाभाविक है।

सार– यह **उपा ग सूत्र** नाम वाला एक ही शास्त्र है, यह बात आगम प्रमाण से स्पष्ट सिद्ध है और पर परा में इसे पाँच शास्त्र मानने की प्रथा रूढ़ हो चुकी है।

वर्ग-१ : निरयावलिका

प्रश्न-१ : इस वर्ग में कितने अध्ययन हैं और किनका घटना जीवन अ कित किया है ?

उत्तर- इस प्रथम वर्ग में १० अध्ययन है जिसमें क्रमशः श्रेणिक के पुत्र कालकुमार आदि १० भाईयों का वर्णन है। जो कोणिक राजा के साथ युद्ध में गये थे। वहाँ चेड़ा राजा के हाथ से बाण द्वारा मारे गये और दसों भाई मर कर नरक में गये। नरक में जाने वालों का मुख्य वर्णन होने से ही इस वर्ग का नाम निरयावलिका रखा गया है। दस भाइयों के नाम- (१) कालकुमार (२) सुकालकुमार (३) महाकाल कुमार (४) कृष्णकुमार (५) सुकृष्णकुमार (६) पितृसेनकुमार (७) वीरकृष्णकुमार (८) रामकृष्णकुमार (९) पितृसेनकुमार (१०) महासेन कुमार। इनकी माताओं का नाम कालीराणी, सुकालीराणी आदि इन्हीं नामों के अनुसार है अर्थात् माताओं के नाम ऊपर से ही पुत्रों का नाम रखा गया था।

प्रश्न-२ : श्रेणिक राजा एव कोणिक राजा का वर्णन यहाँ किस प्रकार है ?

उत्तर- प्राचीन काल में राजगृही नाम की नगरी थी। वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करता था। श्रेणिक राजा के चेलना राणी थी तथा न दा आदि तेरह और काली आदि दस यों अनेक राणियाँ थी। चेलणा राणी के कोणिक, वेहल्लकुमार आदि पुत्र थे। न दा राणी के अभयकुमार नामक पुत्र था और काली आदि दस राणियाँ के कालकुमार आदि दस पुत्र थे।

एक समय चेलना राणी ने रात्रि में सि ह का स्वप्न देखा। जागृत होकर राजा से निवेदन किया। राजा ने स्वप्न पाठकों से पूछ कर निर्णय लिया कि कोई तेजस्वी जीव गर्भ में आया है।

गर्भकाल के तीन महिने बीतने पर चेलना राणी को उस गर्भ के प्रभाव से श्रेणिक राजा के कलेजे का मा स खाने का दोहद(स कल्प)

उत्पन्न हुआ। राजा श्रेणिक ने अभयकुमार के बुद्धिबल के सहयोग से राणी के दोहद को पूर्ण किया।

इस दुष्कृत्य से चिंतित होकर राणी ने गर्भ को नष्ट करने के अनेक प्रयत्न किये। किन्तु वे सब निष्फल रहे। गर्भकाल के नौ महिने पूर्ण होने पर पुत्र का जन्म हुआ। राणी ने दासी के द्वारा उसे उकरड़ी पर फिँकवा दिया। वहाँ कूकड़े की चोंच लगने से बालक की एक अ गुली में घाव हो गया और उससे खून बहने लगा। राजा श्रेणिक को इस घटना की जानकारी मिली तो वह तत्काल वहाँ गया, बालक को अपने हाथों में लेकर आया और चेलना राणी को आक्रोश भरे शब्दों में उपाल भ देते हुए उस बालक की सार-स भाल करने का आदेश दिया। बारहवें दिन उस राजकुमार का नाम कूणिक(कोणिक) रखा गया। काला तर से युवावस्था में कूणिककुमार का पदमावती आदि आठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ।

चेलना राणी के विहल्लकुमार नामक पुत्र भी हुआ जिसे श्रेणिक राजा ने कभी प्रसन्न होकर सेंचनक हाथी और अठारह लड़ा हार दिया।

काली आदि राणियों के भी कालकुमार आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए। एक बार कोणिक ने कालकुमार आदि दसो भाईओं के सामने इस प्रकार का प्रस्ताव रखा कि "श्रेणिक राजा को बाँधकर जेल में ड़ाल दें और राज्य के ग्यारह विभाग कर हम स्वय राज्य लक्ष्मी का अनुभव करें" कालकुमार आदि ने उसे स्वीकार किया एव मौका देखकर कभी उन्होंने श्रेणिक राजा को बाँधकर जेल में रख दिया। इस प्रकार कोणिक स्वतः राजा बन गया।

तदनन्तर कोणिक राजा चेलना माता के पास चरण स्पर्श करने के लिये आया। माता ने अप्रसन्नता दिखाई एव कारण पूछने पर कोणिक के जन्म की विस्तृत घटना बताते हुए कहा कि पिता का तुम्हारे ऊपर अपार स्नेह था यहाँ तक कि उन्होंने तुम्हारी अ गुली के खून रस्सी को मुँह से चूस कर तुम्हारी अपार वेदना को शा त किया था। हे पुत्र ! ऐसे परम उपकारी-स्नेही पिता को ब धक बना कर राज्य प्राप्त करना अच्छा नहीं है।

माता से पूर्व वृता त सुनकर कोणिक को अपनी गलती का खेद हुआ और स्वय पिता को बन्धन मुक्त करने के लिए कुल्हाड़ी लेकर चला। श्रेणिक ने उसे कुल्हाड़ी लेकर आते हुए देखकर सोचा कि यह मुझे मारने के लिये आ रहा है। पुत्र के हाथ मरने की अपेक्षा स्वय ही मर जाना चाहिये, ऐसा सोचकर तालपुट विष मुख में रखकर प्राणा त कर लिया।

कोणिक इस घटना से बहुत शोकाकुल हुआ और अन्त में मन न लगने से उसने उस राजगृही नगरी को छोड़ दिया एव चम्पानगर में सपरिवार रहने लगा। उसने राज्य के ग्यारह विभाग किये। कालकुमार आदि दसों भाई और कोणिक राजा अब राज्यश्री का अनुभव करते हुए रहने लगे।

प्रश्न–३ : कोणिक और श्रेणिक के इस घटनाक्रम में पूर्व भव के वैर का कोई स ब ध था ?

उत्तर– इस विषय में आगम के मूलपाठ में कोई स केत नहीं है। कथा व्याख्या ग्र थों में बताया है कि पूर्वभव में कोणिक एक तपस्वी साधक तापस था। श्रेणिक ने भक्तिवश मासखमण के पारणे के लिये उसे निम त्रण दिया कि तु पारणे के दिन श्रेणिक किसी विशेष कारणों से भूल गया। तापस आकर वापिस खाली चला गया और दूसरा मासखमण कर लिया। इसी तरह स योगवश उसे तीसरा मासखमण भी करना पड़ा। अ त में उसने श्रेणिक के प्रति अशुभ भाव आने से बदला लेने के वैरभाव को रखकर स थारा कर लिया। उसी तापस का जीव कोणिक बना और गर्भ से लेकर आखिर श्रेणिक को बाँधकर जेल में ड़ालने तक अपना बदला लिया। इस तरह पूर्व भव के मूल कारण से कोणिक ने पिता के प्रति अशुभ व्यवहार किया।

प्रश्न–४ : श्रेणिक की मृत्यु के बाद तो कोणिक राजा बन गया था फिर नाना चेड़ाराजा के साथ महास हारक युद्ध क्यों किया?

उत्तर– कोणिक का सगा भाई विहल्लकुमार अपनी राणियों के परिवार सहित हार और हाथी के द्वारा अनेक प्रकार के आन द का अनुभव करते हुए चम्पानगरी में रहता था।

एक बार कोणिक राजा की पद्मावती राणी ने कोणिक से कहा कि हार और हाथी तो आपके पास होना चाहिये। राणी के अत्य त आग्रह से कोणिक ने अपने सगे भाईयों से हार और हाथी मा गे। विहल्लकुमार ने उसके बदले में आधा राज्य मा गा। कोणिक ने उसे अस्वीकार कर दिया एव बार बार हार और हाथी लेने के लिए आग्रह करता रहा।

इस स्थिति में विहल्लकुमार ने परिवार सहित अपने नाना चेड़ा राजा के पास वैशाली नगरी जाने का विचार किया और कभी मौका देखकर वहाँ से निकल पड़े। नाना के पास पहुँचकर उनके सामने सारी स्थिति रख दी।

चेड़ा राजा अठारह गण राजाओं का प्रमुख था। उन सबसे म त्रणा की, जिसमें शरणागत की रक्षा करना सभी ने स्वीकार किया। कोणिक ने हार और हाथी का आग्रह नहीं छोड़ा। परिणाम यह हुआ कि दोनों ओर से युद्ध की तैयारी हुई।

राजा चेटक भगवान महावीर का परम उपासक था। उसने श्रावक के द्वादशव्रत ग्रहण कर रखे थे और उसका यह विशेष नियम भी था कि "मैं एक दिन में एक से अधिक बाण नहीं चलाउँगा। उसका बाण अमोघ था, कभी भी निष्फल नहीं जाता था। कालकुमार आदि दसों भाई कोणिक के साथ युद्ध में आए। युद्ध प्रारम्भ हुआ। दस दिन में कालकुमार आदि दसों भाई सेनापति बनकर युद्ध में आये और चेड़ा राजा के अमोघ बाण से मारे गये एव उस युद्ध में अन्य लाखों मनुष्य मारे गये।

प्रश्न–५ : काली आदि राणियों ने मुक्ति कैसे प्राप्त की ?

उत्तर– भगवान महावीर स्वामी विचरण करते हुए चम्पानगरी में पधारे। कालकुमार आदि दसों की माताएँ भगवान के दर्शन करने गई । उपदेश सुनने के बाद वे एक के बाद एक सभी यह प्रश्न करती है कि मेरा पुत्र कोणिक के साथ युद्ध करने गया है, हे भगवान ! मैं उसे जीवित देख सकूँगी ?

प्रत्युत्तर में भगवान ने सभी को कहा तुम्हारा पुत्र चेड़ा राजा के हाथों से मारा गया है इसलिए अब तुम अपने पुत्र को जीवित नहीं देख सकोगी। तदनन्तर वैराग्य भावना से भावित होकर दसों राणियों ने दीक्षा अ गीकार की एव उसी भव में स पूर्ण कर्म क्षय कर शिव पद को प्राप्त किया।

अ तगड़ सूत्र में वर्णन है कि काली आदि राणियों ने दीक्षा लेकर विकट उग्र तपस्या करी और ७–८–९–१० आदि अत्य त अल्प वर्षों की दीक्षापर्याय से मुक्ति प्राप्त करी।

प्रश्न–६ : कालकुमार आदि भी क्या मोक्ष जायेंगे ?

उत्तर– गौतम स्वामी प्रश्न करते है कि भ ते ! कालकुमार युद्ध में मृत्यु को प्राप्त कर कहाँ उत्पन्न हुआ ? उत्तर में भगवान ने फरमाया कि कालकुमार युद्ध में मरकर चौथी नरक में उत्पन्न हुआ। दस सागरोपम की स्थिति नरक में पूर्ण कर फिर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा। वहाँ स यम स्वीकार करके स पूर्ण कर्म क्षय कर मुक्ति प्राप्त करेगा। इसी प्रकार दसों ही भाई युद्ध में काल करके चौथी नरक में गये और फिर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर स यम अ गीकार कर स पूर्ण कर्म क्षय करके सिद्ध होंगे।

प्रश्न–७ : इस अध्ययन से ज्ञेय तत्त्व एव शिक्षाएँ क्या मिलती है?

उत्तर– (१) मानव सोचता कुछ और है होता कुछ और है। इसलिये अनैतिक और अनावश्यक चिंतन कभी भी नहीं करना चाहिये। (२) माता के चरण स्पर्श करने जाने के निमित्त से कोणिक की चिंतन दशा में परिवर्तन आ गया (३) अभयकुमार ने अपने बुद्धि कौशल से असम्भव जैसे कार्य को भी सम्भव कर दिखाया। (४) अतिलोभ का परिणाम शून्य में आता है– न हार मिला न हाथी और भाई मराये दस साथी (५) स्त्रियों की तुच्छ बुद्धि का हठ मानव को महान गर्त में ड़ाल देता है। अतः मनुष्य को ऐसे समय में स्वय की बुद्धि से ग भीरता पूर्वक हानि-लाभ एव भविष्य का विचार करके स्वत त्र निर्णय लेना चाहिये (६) युद्ध में या लड़ाई झगड़ों में आत्म परिणामों की क्रूरता होती है।

अतः उस अवस्था में मरने वालों की अधिकतर नरक गति ही होती है (७) चेलना राणी ने बिना मन के भी पति की आज्ञा से कोणिक की पालना करी (८) पूज्य पिता से लड़ता लोभी भाई की हत्या करता। लोभ पाप का बाप न करता परवाह अत्याचार की। कविता की इस कड़ियों का उक्त घटना में साकार रूप देखा जा सकता है। यह जानकर लोभ स ज्ञा का निग्रह करना चाहिये ।

यह **उपा गसूत्र** का निरयावलिका नामक प्रथम वर्ग समाप्त हुआ।

नोट– भगवतीसूत्र और अ तगड़सूत्र में भी यह वर्णन है ।

वर्ग–२ : कल्पावत सिका

प्रश्न–१ : इस वर्ग का परिचय क्या है एव इसमें वर्णन क्रम किस प्रकार है ?

उत्तर– इस दूसरे वर्ग में १० अध्ययन है। जिसमें १० जीवों का कल्पोत्पन्न देवलोक के विमानों में उत्पन्न होने का वर्णन है। इसलिये इस वर्ग का नाम कल्पावत सिका रखा गया है। प्रथम अध्ययन में पद्मकुमार का वर्णन है। वह इस प्रकार है– प्राचीनकाल में च पानगरी में कोणिक राजा राज्य करता था। वहाँ श्रेणिक राजा की भार्या कोणिक की विमाता काली नाम की राणी थी। उसके कालकुमार नामक पुत्र था जिसका पद्मावती के साथ विवाह हुआ। एकबार पद्मावती ने रात्रि में सि ह का स्वप्न देखा। कालान्तर में उसके पुत्र का जन्म हुआ उसका नाम पद्मकुमार रखा गया। तरुणावस्था में आठ कन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ एव मानुसिक सुखों का उपभोग करता हुआ वह समय व्यतीत करने लगा।

एक बार उस चम्पानगरी में भगवान महावीर स्वामी पधारे। पद्मकुमार भी दर्शन व दन करने के लिये गया। वहाँ धर्म देशना सुनी। भगवान की वैराग्य सि चित वाणी से उसे मानव जीवन की क्षण

भ गुरता का बोध हुआ। क्षणिक भोग-सुखों का दारूण परिणाम, एव मनुष्य भव का महत्व उसे समझ में आ गया। अब वह मनुष्य भव को आत्म साधना का अनुपम अवसर समझने लगा ।

उपदेश सुनकर उसने भगवान के सम्मुख अपनी स यम लेने की भावना प्रकट की एव पारिवारिक जनों से आज्ञा लेकर दीक्षित हुआ। दीक्षा लेकर पद्ममुनि ने ग्यारह अ गसूत्रों का क ठस्थ ज्ञान किया। साथ ही अनेक प्रकार की तपस्याओं के द्वारा शरीर को एव कर्मों को कृश किया। उसने पाँच वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन किया और एक महिने के स थारे से पहले देवलोक में उत्पन्न हुआ।

वहाँ से वह दो सागरोपम की आयु पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा एव यथासमय स यम ग्रहण करके स पूर्ण कर्मों का क्षय कर मुक्त हो जायेगा।

इसी प्रकार महापद्मकुमार आदि शेष नौ का वर्णन है।

पूर्व वर्ग में वर्णित कालकुमार आदि दसों भाईयों के ये दस पुत्र थे। श्रेणिक राजा के पौत्र और कोणिक के भतीजे थे।

इन दसों ने क्रमशः (१) पाँच (२) पाँच (३) चार (४) चार (५) चार (६) तीन (७) तीन (८) तीन (९) दो (१०) दो वर्ष की दीक्षा पाली और एक महिने का स थारा किया ।

ये दसों नवमें और ग्यारहवें देवलोक को छोड़कर क्रम से पहले देवलोक से लेकर बारहवें देवलोक तक उत्कृष्ट स्थिति में उत्पन्न हुए ।

इन दसों के पिता नरक में गये और इनकी दस दादियाँ भगवान के पास स यम स्वीकार कर उसी भव में मोक्ष में गई।

सार- एक परिवार के जीवों की अपने-अपने कर्तव्यों के अनुसार गति होती है। यथा- पिता को नरक, पुत्रों को स्वर्ग, माताओं को मोक्ष और पुत्रों को नरक।

वास्तव में पुण्यवान और भाग्यशाली जीव वही होते है जो

मिली हुई पुण्य भोगसामग्री में अ त तक नहीं फँसे रहते। किन्तु उनका स्वेच्छा से त्याग कर मनुष्य जीवन के अमूल्य क्षणों को आत्म साधना में लगा देते हैं। मोक्षप्रदायी इस मानव भव में एक दिन धन सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र, परिवार और इन्द्रिय सुखों के ममत्व का स्वय ही त्याग कर देते हैं, गुस्सा, घम ड़, लोभ आदि कषायों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं और जीवन में सरल नम्र और शा त बन कर स यम तप की आराधना में लग जाते हैं। उन्हें ही सच्चे बुद्धिमान समझना चाहिये।

जीवन के अ तिम क्षणों तक जो धन परिवार और स सार के सुखों में फँसे रहते हैं, गुस्सा, घम ड़ और लोभ लालच से मुक्त होकर शा त सरल नहीं बनते हैं। वे आगम की भाषा में बाल (अज्ञानी) जीव कहे जाते हैं और सरल सामान्य भाषा में वे मूर्ख हैं। क्यों कि प्राप्त मनुष्य भव रूपी पूँजी को ग वाकर वे नरक तिर्यंच गति के दु:खों के महेमान बन जाते हैं।

इसलिए प्रत्येक मानव को अनमोल इस मनुष्य जीवन को पाकर आलस्य और अन्य कारणों को हटाकर स यम, व्रत एव त्याग धर्म में अवश्य ही प्रयत्न कर लेना चाहिये।

वर्ग-३ :पुष्पिका

प्रश्न-१ : इस वर्ग का विषय परिचय क्या है ?

उत्तर- पहले के दो वर्गों में श्रेणिक राजा के परिवार के सदस्यों का वर्णन है । इस तीसरे वर्ग में विभिन्न १० जीवों का वर्णन है। इसलिये इस वर्ग का नाम पुष्पिका रखा गया है।

इसमें १० अध्ययन इस प्रकार है- (१) च द्र (२) सूर्य (३) शुक्र महाग्रह (४) बहुपत्रिका देवी (५) पूर्णभद्र (६) माणिभद्र (७) दत्त (८) शिव (९) बल (१०) अनादृत।

प्रश्न-२ : प्रथम अध्ययन में चन्द्र देव का वर्णन किस प्रकार है?

उत्तर- श्रावस्ति नाम की नगरी में अ गजीत नामक स पन्न वणिक

रहता था। अनेक लोगों का वह आल बनभूत, आधारभूत और चक्षुभूत था अर्थात् अनेकों लोगों का वह मार्गदर्शक अग्रसर था।

एक बार वहाँ पार्श्वनाथ भगवान विचरण करते हुए पधारे। अ गजीत सेठ दर्शन करने गया भगवान की देशना सुनी। स सार से विरक्त हुआ। पुत्र को कुटुम्ब का भार स भला कर स्वय भगवान के पास दीक्षित हो गया।

उसने ग्यारह अ गों का क ठस्थ ज्ञान किया। अनेक प्रकार की तपस्याएँ की। १५ दिन के स थारे में काल करके च द्र विमान में इ द्र रूप में उत्पन्न हुआ। स यम की आराधना में कुछ कमी होने से वह स यम का विराधक हुआ।

च द्र देव ने दैविक सुख भोगते हुए कभी अवधिज्ञान के उपयोग से जम्बूद्वीप के इस भरत क्षेत्र में विचरण करते हुए भगवान महावीर स्वामी को देखा। फिर सपरिवार भगवान के दर्शन व दन करने के लिये आया एव जाते समय ३२ प्रकार की नाट्यविधि का एव अपनी ऋद्धि का प्रदर्शन किया। उसके जाने के बाद गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान ने उसके पूर्व भव का कथन किया।

वर्तमान में जो च द्र विमान हमें दिखता है उसमें यह अ गजीत का जीव इन्द्र रूप में देव है। वहाँ उसके चार अग्रमहिषी देवी है। सोलह हजार आत्मरक्षक देव आदि विशाल परिवार है।

आज के वैज्ञानिक इस चन्द्र विमान में नहीं पहुँच कर अपनी कल्पनानुसार अन्यान्य पर्वतीय स्थानों में ही भ्रमण कर रहे हैं। क्यों कि ज्योतिष–राज चन्द्र का विमान रत्नों से निर्मित एव अनेक देवों से सुरक्षित है। जब कि वैज्ञानिकों को अपने कल्पित स्थान में मिट्टी पत्थर के सिवाय कुछ भी नहीं मिलता है।

अ गजीत मुनि ने स यम जीवन में क्या विराधना की, इसका स्पष्ट उल्लेख सूत्र में नहीं है कि तु विराधना करने का स केत मात्र है।

प्रश्न–३ : दूसरे अध्ययन में सूर्य देव का वर्णन किस प्रकार है?

उत्तर– श्रावस्ति नगरी के अ दर सुप्रतिष्ठित नामक वणिक रहता था

इसका पूरा वर्णन अ गजीत के समान है अर्थात् सा सारिक ऋद्धि, स यम ग्रहण, ज्ञान, तप, स लेखना, स यम की विराधना आदि प्रथम अध्ययन के समान ही है। पार्श्वनाथ भगवान के पास दीक्षा अ गीकार की और ज्योतिषेन्द्र सूर्य देव हुआ। चन्द्र के समान यह भी एक बार भगवान महावीर स्वामी की सेवा में उपस्थित हुआ एव अपनी ऋद्धि और नाट्यविधि का प्रदर्शन किया।

ये चन्द्र और सूर्य दोनों ही ज्योतिषेन्द्र महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगे और वहाँ यथासमय तप स यम का पालन कर स पूर्ण कर्म क्षय करके शिव गति को प्राप्त करेंगे।

वैज्ञानिक सूर्य के रत्नों के विमान को आग का गोला समझते हैं यह मात्र उनकी कल्पना का भ्रम है। जैन सिद्धा त में इसे रत्नों का विमान बताया है जो कि ज्योतिषेन्द्र सूर्य देव के स पूर्ण परिवार का निवास स्थान एव जन्म स्थान है। इसमें हजारों देव देवियाँ उत्पन्न होते हैं, निवास करते हैं। यह जम्बूद्वीप में भ्रमण करने वाला सूर्य विमान है। ऐसे दो विमान सूर्य के और दो चन्द्र के जम्बूद्वीप में भ्रमण करते हैं। पूरे मनुष्य क्षेत्र में १३२ चन्द्रविमान और १३२ सूर्यविमान भ्रमण करते हैं। मनुष्य क्षेत्र के बाहर अस ख्य चन्द्र और अस ख्य सूर्य विमान अपने स्थान पर स्थिर रहते हैं।

प्रश्न–४ : तीसरे अध्ययन में शुक्र महाग्रह का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– वाराणसी नाम की प्रसिद्ध नगरी में सोमिल नाम का ब्राह्मण रहता था। वह चारों वेदों का अनेक शास्त्रों का ज्ञाता था एव उसमें पूर्ण निष्णात था।

एक बार उस नगरी में पार्श्वनाथ भगवान का पधारना हुआ। सोमिल ब्राह्मण को ज्ञात होने पर वह अनेक प्रश्नों को लेकर भगवान की सेवा में पहुँचा। प्रश्नों का समाधान पाकर स तुष्ट हुआ एव श्रावक धर्म स्वीकार किया।

साधुओं की स गति की कमी के कारण किसी समय वह

सौमिल धर्म भावना में शिथिल हो गया एव उसे अनेक प्रकार के बगीचे लगाने की भावना हुई। उसने अनेक आम्र आदि फलों एव विविध फूलों के बगीचे लगाए।

काला तर में उसने दिशा प्रोक्षिक तापस की प्रव्रज्या अ गीकार की। उसमें वह बेले-बेले पारणा करता था और पारणे में स्नान, हवन आदि क्रियाएँ करके फिर आहार करता था।

प्रथम पारणे में वह पूर्व दिशा में जाता है और उस दिशा के स्वामी देव की पूजा करके आज्ञा लेकर क दादि ग्रहण करता है। दूसरे पारणे में दक्षिण दिशा में, तीसरे पारणे में पश्चिम और चौथे पारणे में उत्तर दिशा में जाता है। इस प्रकार तापस दीक्षा का और तपस्या का आचरण करता है।

तापसी दीक्षा का पालन करते हुए उसे स लेखना करने का स कल्प हुआ। उसने प्रतिज्ञा करी कि मैं उत्तर दिशा में चलते-चलते जहाँ भी गिर जाऊँगा वहाँ से नहीं उठु गा। पहले दिन उत्तर दिशा में चलता है एव शाम को किसी भी योग्य स्थान में अपने विधि विधान करके काष्ट मुद्रा से मुख बाँधकर मौन धारण कर ध्यान में बैठ जाता है।

रात्रि में एक देव वहाँ प्रगट होता है और कहता है– हे सोमिल! यह तेरी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है अर्थात् यह तेरा आचरण सही नहीं है खोटा है। सोमिल ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। देव चला गया। दूसरे दिन फिर वह काष्ट मुद्रा बाँध कर उत्तर दिशा में चला। शाम को योग्य स्थान में ठहरा ।रात्रि में फिर देव आया, उसी प्रकार बोला। सोमिल के कुछ भी ध्यान न देने पर देव चला गया ।

तीसरे दिन अपने भ ड़ोपकरण लेकर काष्ट मुद्रा से मु ह बाँधकर फिर उत्तर दिशा में चला, योग्य स्थान में ठहरा, रात्रि में देव आया, बोला एव सोमिल के उपेक्षा करने पर चला गया। इसी प्रकार चौथा दिन भी बीत गया।

पाँचवें दिन देव के पुनः आने एव बार-बार कहने पर सोमिल

ने पूछ लिया कि हे देवानुप्रिय! मेरी दीक्षा खोटी क्यों है ? उत्तर में देव ने कहा कि तुमने पार्श्वनाथ भगवान के समीप श्रावक के बारह व्रत अ गीकार किए थे। उन्हें छोड़ दिया और यह तापसी दीक्षापालन कर रहे हो, यह ठीक नहीं किया है। पुनः सोमिल ने पूछा कि अब मेरा आचरण सुन्दर कैसे हो सकता है ? देव ने पुनः श्रावक के बारह व्रत स्वीकार करने की प्रेरणा की और चला गया।

तब सोमिल ब्राह्मण ने स्वय पुनः बारह व्रत स्वीकार किए एव उपवास से लेकर मासखमण तक की तपस्याएँ की। अनेक वर्ष श्रावक व्रत का पालन कर पन्द्रह दिन के स थारे से काल करके शुक्रावत सक विमान में शुक्र महाग्रह के रूप में देव हुआ।

किसी समय यह शुक्र महाग्रह देव भी भगवान महावीर की सेवा में आया। दर्शन व दन करके अपनी ऋद्धि का प्रदर्शन करके चला गया।

व्रत भ ग एव तापसी दीक्षा स्वीकार करने की आलोचना प्रतिक्रमण न करने से वह विराधक हुआ। देव भव की आयु पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर आत्मकल्याण करेगा ।

प्रश्न–५ : चौथे अध्ययन में बहुपुत्रिका देवी का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– पूर्व के तीन अध्ययनों में प्रत्येक के तीन-तीन भवों का वर्णन है। इस अध्ययन में पाँच भवों का वर्णन है वह इस प्रकार है–

वाराणसी नाम की नगरी में भद्र नामक सार्थवाह रहता था। उसकी पत्नि का नाम सुभद्रा था। वह वन्ध्या थी। पुत्र नहीं होने के दुःख से वह अत्यन्त चिंतित एव दुःखी थी।

एक बार सुव्रता आर्या की शिष्याएँ उसके घर गोचरी के लिये पहुँची। उन्हें आहार पानी बहरा कर सुभद्रा ने साध्वियों से स तानोत्पति के लिये विद्या, म त्र, औषधि आदि के लिये निवेदन किया। साध्वियों ने कहा कि इस सम्बन्ध में कुछ भी बताना हमारे नियम के विपरीत

है। तदन तर साध्वियों ने योग्य अवसर जान कर उसे स क्षेप में निर्ग्रंथ प्रवचन का उपदेश दिया। उपदेश सुनकर वह श्रमणोपासिका बनी।

कुछ समय बाद उसने स यम भी स्वीकार किया। किन्तु पुत्र न होने के कारण बालक–बालिकाओं पर उसका स्नेह बढ़ने लगा और स यम मर्यादा का उल्ल घन कर वह बालक-बालिकाओं के साथ स्नेह, क्रीड़ा, श्रृ गार, सुश्रूषा आदि प्रवृतियाँ करने लगी।

गुरुणी के द्वारा एव अन्य आर्याओं के द्वारा निषेध करने या समझाने पर भी उपेक्षा करके वह अन्य स्थान(उपाश्रय) में जाकर रहने लगी और स्वच्छ दता पूर्वक स्नेह प्रवृतियाँ करने लगी। स यम तप का पालन करते हुए पन्द्रह दिन का स थारा करके उक्त दूषित प्रवृतियों की आलोचना शुद्धि किये बिना विराधक होकर वह प्रथम देवलोक में देवी रूप में उत्पन्न हुई।

वहाँ वह जब भी इन्द्रसभा में जाती है तब बहुत से बालक-बालिकाओं की विकुर्वणा करके सभा का मनोर जन करती है। इसलिये वहाँ वह बहुपुत्रिका देवी के नाम से पुकारी जाती है। एक बार वह राजगृह नगर में भगवान महावीर के समवसरण में आकर अपनी दोनों भुजाओं में से क्रमशः एक सौ आठ बालक एक सौ आठ बालिकाएँ निकालती है और भी अनेक बालक वैक्रिय शक्ति से निकाल कर नाटक दिखाते हुए अपनी शक्ति और ऋद्धि का प्रदर्शन कर पुनः अपनी माया को समेट कर चली जाती है।

गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान उसका पूर्व भव फरमाते है और दृष्टांत देकर समझाते है कि जैसे एक विशाल भवन में से हजारों व्यक्ति बाहर निकलते हैं और पुनः उसमें प्रवेश कर जाते उसी प्रकार सारे रूप उसके शरीर में समाविष्ट हो जाते हैं।

वह देवी वहाँ से आयु पूर्ण होने पर एक ब्राह्मण के घर उत्पन्न होगी। उसका नाम सोमा रखा जायेगा। यौवन अवस्था में माता पिता अपने भानेज राष्ट्रकूट के साथ उसका विवाह करेंगे। वहाँ उसके

एक-एक वर्ष में एक युगल पुत्र जन्मेंगे। यों सोलह वर्ष में ३२ बालको कों जन्म देगी।

इतने बालकों की सेवा परिचर्या करते हुए वह परेशान होगी तथा उनमें से कई नाचेंगे, कूदेंगे, रोएँगे, हसेंगे, एक दूसरे को मारेंगे, पीटेंगे, भोजन के लिये एक दूसरे पर झपटेंगे, उस सोमा के शरीर पर ही कोई वमन करेगा, कोई मल-मूत्र करेगा। इस प्रकार पुत्रों से दुःखी होकर वह सोचेगी कि इससे व ध्या होना ही श्रेष्ठ है। मैं तो इन बच्चों से परेशान हूँ।

किसी एक समय गोचरी के लिये आई हुई साध्वियों से अपना दुःख निवेदन करेगी एव धर्म श्रवण कर दीक्षित होना चाहेगी किन्तु पति की अत्यधिक प्रेरणा होने से वह साध्वियों के पास जाकर श्रमणोपासिका बनेगी एव काला तर से स यम ग्रहण कर ग्यारह अ गों का क ठस्थ ज्ञान करेगी और शुद्ध आराधना करके मास खमण के स थारे से काल करके प्रथम देवलोक में इन्द्र के सामानिक देव रूप में उत्पन्न होगी। वहाँ की आयु पूर्ण होने पर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर स यम तप की आराधना करेगी तथा स पूर्ण कर्मों को नष्ट कर सिद्ध बुद्ध मुक्त होगी।

प्रश्न–६ : इस अध्ययन से शिक्षा स स्कार क्या प्राप्त किये जा सकते है ?

उत्तर– मानव अप्राप्त भौतिक चीजों की चाहना करके दुःखी होता रहता है। इन भौतिक चीजों में कहीं भी वास्तविक सुख नहीं है। स सार में कोई बहु परिवार से दुःखी होता है, कोई बिना परिवार के दुःखी होता है, कोई सम्पति के अभाव में दुःखी होता है तो कोई विशाल स पति के कारण शान्ति से रह नहीं सकता है।

सहज प्राप्त स्थिति में स तोष रख कर प्रसन्न रहने पर ही शा ति सुख एव आत्मआन द की प्राप्ति होती है। अ त में त्याग और धर्म ही आत्मा को स सार प्रप च से मुक्त करता है। यह जानकर प्रत्येक

सुखेच्छु मानव को एक दिन धर्म, स यम, एव त्यागमार्ग में अग्रसर होने का स कल्प रखना चाहिये। साथ ही प्रयत्न पूर्वक शीघ्र ही अपनी परिस्थितियों को पार कर इच्छाओं पर काबू पाकर आत्मकल्याण के श्रेष्ठ मार्ग को पूर्ण रूपेण स्वीकार कर लेना चाहिये। यही आगम ज्ञान एव श्रद्धान का सार है ।

जो श्रद्धालु जन साधु साध्वियों से अपनी स सारिक उलझनों को मिटाने की आशा से य त्र, म त्र, औषध-भेषज की आशा रखते हैं उन्हें उक्त अध्ययन के वर्णन से शिक्षा लेनी चाहिये कि ऐसी प्रवृत्तिएँ साधु के आचार से विपरीत है। वीतराग भगवान के शासन के साधु-साध्वियाँ केवल आत्मकल्याण के मार्ग का, श्रमण धर्म एव गृहस्थ धर्म का तथा त्याग तप का उपदेश ही दे सकते हैं। अन्य लौकिक कृत्यों में वे भाग नहीं ले सकते ।

प्रश्न–७ : अवशेष ६ अध्ययन पूर्णभद्र आदि का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मणिपदिका नामक नगरी थी । वहाँ पूर्णभद्र नामक सेठ रहता था। उसने बहुश्रुत स्थविर भगव तों से धर्मोपदेश सुनकर स यम अ गीकार किया। ग्यारह अ गों का क ठस्थ ज्ञान किया। उपवास से लेकर मासखमण तक की तपस्याओं से कर्मों की निर्जरा करते हुए अनेक वर्षों तक स यम पर्याय का पालन किया।

एक मासखमण के स थारे से आराधक होकर सौधर्म(प्रथम) देवलोक में पूर्णभद्र नामक देव हुआ। किसी समय उस देव ने भगवान महावीर के समीप दर्शन व दन के लिये आकर बत्तीस प्रकार के नाटक के द्वारा अपनी ऋद्धि का प्रदर्शन किया। गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान ने उसके पूर्व भव का कथन किया। और यह भी बताया कि देवलोक से दो सागरोपम की आयु पूर्ण होने पर वह पूर्णभद्र देव महा विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सर्व कर्म क्षय कर मुक्त होगा।

यह पाँचवाँ अध्ययन पूर्ण हुआ।

छट्ठे अध्ययन में पूर्णभद्र के समान ही सम्पूर्ण वर्णन मणिभद्र का है । दोनों की नगरी भी एक ही थी। दीक्षा, अध्ययन, तप, देवलोक की स्थिति, महाविदेह में दीक्षा और मोक्ष तक सभी वर्णन सरीखा है।

इसी प्रकार–७ दत्त, ८–शिव, ९–बल और १०–अनादृत का वर्णन पाँचवें अध्ययन के समान है। ये सभी दो सागरोपम की स्थिति में प्रथम देवलोक में उत्पन्न हुए। फिर महाविदेह में जन्म लेकर तप स यम का आचरण कर सभी शिव गति को प्राप्त करेंगे।

इस वर्ग में ४ जीव स यम के विराधक होकर एव शेष छ आराधक होकर देवगति में गये और नव ही एकाभवावतारी है अर्थात् उन्हें अब एक महाविदेह क्षेत्र के मनुष्य का भव ही करना शेष है।

प्रश्न–८ : इस वर्ग से क्या शिक्षा तत्त्व प्राप्त होते है ?

उत्तर– स यमव्रतों की विराधना करने वाले के भी यदि श्रद्धा प्ररूपणा एव तप रूचि बराबर है तो वह विराधक होते हुए भी स सार भ्रमण और जन्म मरण नहीं बढ़ाता है। किन्तु वह निम्न स्तर का देव बनता है अथवा तो देवी रूप में उत्पन्न होता है।

इसलिये स यम में पूर्ण शुद्ध आराधन न करने वाले साधकों को चाहिये कि वे अपनी श्रद्धा प्ररूपणा आगमानुसार पूर्ण शुद्ध रखें एव यथासमय १२ भेदे तप में लीन रहे एव कषाय भावों से मुक्त रहे तो वे स यम में कमजोर होते हुए भी अपनी आत्मा की अधोगति से सुरक्षा कर सकेंगे एव भव परम्परा की वृद्धि नहीं करेंगे।

वर्ग–४ : पुष्पचूलिका

प्रश्न–१ : इस वर्ग का परिचय क्या है ?

उत्तर– इस वर्ग में दस स्त्रियों का वर्णन है जिन्होंने पार्श्वनाथ भगवान के शासन में "पुष्प चूला" साध्वी प्रमुखा के पास अध्ययन कर तप

स यम का पालन किया, इसलिये इस वर्ग का **पुष्प चूला** यह नाम रखा गया है।

वे दसों स्त्रियाँ स यम पालन कर क्रमशः निम्न देवियाँ बनी (१) श्री देवी (२) ह्री देवी (३) द्युति देवी (४) कीर्ति देवी (५) बुद्धि देवी (६) लक्ष्मी देवी (७) ईला देवी (८) सुरा देवी (९) रस देवी (१०) गंध देवी ।

प्रश्न–२ : इस वर्ग के दस अध्ययनों का वर्णन किस प्रकार है ?

उत्तर– श्री देवी–राजगृही नगरी में सुदर्शन नामक स पन्न सद्गृहस्थ रहता था। उसके "प्रिया" नाम की भार्या थी एवं भूता नाम की एक लड़की थी। जो वृद्ध एव जीर्ण शरीर वाली दिखती थी। उसके सभी अ गोपा ग शिथिल थे। अतः उसको कोई भी वर नहीं मिला।

एक बार पार्श्वनाथ भगवान उस नगरी में पधारे । माता-पिता की आज्ञा लेकर वह भूता लड़की भी अपने धार्मिक रथ में बैठकर दर्शन व दन के लिये गई। उपदेश सुनकर बहुत खुश हुई । उसे निर्ग्रन्थ प्रवचन पर अत्यन्त श्रद्धा रुचि हुई। माता पिता से आज्ञा लेकर दीक्षा लेने के लिए तत्पर हो गई।

माता-पिता ने उसका दीक्षा महोत्सव किया एव हजार पुरुष उठाने वाली शिविका में बिठाकर भगवान की सेवा में ले गये और भगवान को शिष्यणी रूप भिक्षा स्वीकार करने का निवेदन किया। भगवान ने उसे दीक्षा देकर पुष्पचूला आर्या के सुपुर्द किया। पुष्पचूला आर्या के पास शिक्षा प्राप्त कर वह तप स यम में आत्मा को भावित करने लगी।

काला तर से भूता आर्या शरीर की सेवा सुश्रूषा में लग गई और शुची धर्मी प्रवृत्तियों का आचरण करने लगी अर्थात् वह बार बार हाथ, पाँव, मुँह, सिर, काखें, स्तन, गुप्ता ग को धोती थी और बैठने, सोने, खड़े रहने की जगह को पहले पानी छिड़कती फिर बैठना

आदि करती। गुरूणी के द्वारा इन सब प्रवृत्तियों के लिए निषेध करने पर एक दिन वह अलग जाकर किसी स्थान में अकेली रहने लगी और अपनी इच्छानुसार करने लगी। अनेक प्रकार की तपस्याएँ करते हुए आलोचना प्रायश्चित नहीं करने से वह विराधक होकर, पहले देवलोक के **श्री अवत सक** विमान में **श्री देवी** रूप में उत्पन्न हुई। किसी समय भगवान महावीर के समीप में आकर उस देवी ने अनेक प्रकार की नाट्य विधि के द्वारा अपनी ऋद्धि का प्रदर्शन किया। वहाँ से एक पल्योपम की स्थिति पूर्ण होने पर वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मुक्ति प्राप्त करेगी।

भूता के समान ही नौ स्त्रियों का वर्णन है, केवल नाम का अन्तर है। सभी शरीर बकुशा होकर प्रथम देवलोक में गई और एक पल्योपम की स्थिति पूर्ण होने पर महाविदेह क्षेत्र में मोक्ष जावेगी।

प्रश्न–३ : इस अध्ययनों से क्या जानने को मिलता है ?

उत्तर– इस वर्ग के वर्णन से यह ज्ञात होता है कि लोक में जो भी लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियों की पूजा प्रतिष्ठा की जाती है वह प्रथम देवलोक की देवियों के प्रति एक प्रकार की भक्ति का प्रदर्शन है। उसके साथ ही उन्हें प्रसन्न कर उनसे कुछ पाने की आशा रखी जाती है।

तीसरे वर्ग में माणिभद्र, पूर्णभद्र देव का वर्णन है उनकी भी जिन मन्दिरों में पूजा प्रतिष्ठा की जाती है। ये सब प्रवृत्तियाँ लौकिक देवों की भक्ति रूप में लौकिक आशा चाहनाओं से की जाती है।

वीतराग धर्म तो लौकिक चाहनाओं से परे होकर आत्मसाधना करने का है। इसकी साधना करने वाला साधक पाँच पदों में स्थित आत्माओं को ही आध्यात्म की अपेक्षा नमस्करणीय समझता है। एव व दन नमस्कार करता है। शेष किसी को भी व दन नमस्कार करना वह अपना लौकिक, व्यवहारिक एव पर परागत आचार मात्र

मानता है। उस व दन या भक्ति में वह धर्म की कल्पना को नहीं जोड़ता है।

कई भद्रिक साधु–साध्वी या श्रावक श्राविकाएँ ऐसे लौकिक आशा युक्त भक्ति के आचारों को धर्म का वाना दे बैठते हैं यह उनकी व्यक्तिगत अज्ञान दशा की भूल है।

वर्ग–५ : वृष्णिक दशा

प्रश्न–१ : इस वर्ग का परिचय एव विषय वर्णन किस प्रकार है?

उत्तर– इस वर्ग में अ धकवृष्णि के कुल के यदुव शीय पुरुषों का वर्णन है। इसलिये इसका नाम वृष्णिदशा रखा गया है। इस वर्ग के १२ अध्ययन है, जिसमें निषधकुमार आदि १२ भाईयों का वर्णन है। स भवतः ये १२ ही बलदेव के पुत्र हैं। मूलपाठ में शेष ११ अध्ययन पूर्णतः निषधकुमार के समान जानने का कहा गया है। निषधकुमार का वर्णन इस प्रकार है–

द्वारिका नगरी में कृष्णवासुदेव राज्य करते थे। उनके भाई बलदेव राजा के रेवती नाम की राणी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम निषधकुमार रखा गया। काला तर में यौवनवय प्राप्त होने पर पचास कन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ। वह श्रेष्ठ प्रासाद में मानुषिक सुख भोगते हुए विचरण करने लगा।

एक बार अर्हंत अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी में पधारे। कृष्ण की आज्ञा से सामुदानिक भेरी बजाई गई। कृष्ण राजा एव उसकी प्रजा भी भगवान की सेवा में गई। निषधकुमार भी दर्शनार्थ गया। उपदेश श्रवण कर श्रद्धा रुचि व्यक्त करते हुए उसने भगवान के पास श्रावक धर्म स्वीकार किया।

उसके चले जाने के बाद भगवान अरिष्टनेमि के प्रथम गणधर

वरदत्त अणगार द्वारा निषधकुमार का पूर्व भव जानने की जिज्ञासा प्रगट करने पर भगवान ने उसके पूर्वभव का कथन किया।

निषधकुमार का पूर्व भव– इस भरत क्षेत्र में रोहतक नाम का नगर था। वहाँ महाबल नाम का राजा था । उसके वीरा गद नामक पुत्र हुआ। उसका यौवन अवस्था में बत्तीस श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण किया गया। वह उत्तम प्रासाद में मानुषिक सुख भोगता हुआ रहने लगा।

किसी एक समय सिद्धार्थ नाम के आचार्य उस नगरी में पधारे । वीरा गद ने उपदेश सुनकर उनके पास स यम अ गीकार किया।

ग्यारह अ गों का क ठस्थ ज्ञान कर अनेक प्रकार की तपस्याओं के द्वारा आत्मशुद्धि करने लगा। उसने वहाँ पैंतालीस वर्ष तक शुद्ध स यम का पालन कर दो महिने का स थारा प्राप्त किया एव काल करके आराधक होकर पाँचवें देवलोक में देव रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ दस सागरोपम की स्थिति पूर्ण करके यहाँ वह निषधकुमार बना है और आज इसने श्रावक व्रत स्वीकार किये हैं।

निषधकुमार श्रावक के गुणों से स पन्न होकर श्रमणोपासक पर्याय व्यतीत करने लगा। एक बार पौषध में धर्म जागरण अर्थात् आत्मोन्नति विचारणा करते हुए उसे अपनी नगरी में भगवान की व दना पर्युपासना करने का स कल्प हुआ।

भगवान अरिष्टनेमि उसके मनोगत भावों को जानकर विचरण करते हुए वहाँ पधारे। निषध कुमार उपदेश सुनकर दीक्षित हुआ। ग्यारह अ गों का क ठस्थ ज्ञान किया। अनेक विचित्र तप साधना के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए नव वर्ष स यम का पालन किया एव इक्कीस दिन के स थारे से काल करके सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुआ। वहाँ से तेतीस सागरोपम की स्थिति पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा। यौवन अवस्था में स यम ग्रहण कर स पूर्ण कर्मों को क्षय करके सिद्ध गति को प्राप्त करेगा।

शेष ग्यारह अध्ययन में ग्यारह राजकुमार का वर्णन भी इसी प्रकार है। यहाँ भलावण पाठ अति स क्षिप्त होने से उनके माता-पिता का नाम भी सूचित नहीं किया गया है। स यम ग्रहण एव अणुत्तर विमान में उत्पत्ति आदि निषध कुमार के समान समझना चाहिये।

प्रश्न-२ : उपा ग सूत्र का उपस हार कथन का क्या आशय है ?

उत्तर- यह उपा ग सूत्र एक श्रुतस्क ध है, पाँच इसके वर्ग है। पाँच दिन में पढ़ा जाता है। इसमें ४ वर्गों के १०-१० अध्ययन है, पाँचवें वर्ग के १२ अध्ययन है।

उपा गसूत्र के पाँच वर्गों और बावन अध्ययनों में प्रथम वर्ग से दस जीवों के नरक में जाने का वर्णन है शेष चार वर्ग के सभी (४२) ही जीवों के स्वर्ग में जाने का वर्णन है, नरक में जाने का नहीं। अतः प्रथम वर्ग का ही नाम निरयावलिका होना स गत है। पूरे सूत्र का निरयावलिका नाम तो लिपिदोष आदि से ही प्रचलित हो सकता है।

इसलिये पूरे सूत्र का नाम तो **उपा ग सूत्र** ही समझना चाहिये और सूचित पाँच नाम वर्गों के ही समझने चाहिये।

इस प्रकार यह पाँच वर्गात्मक "उपा ग सूत्र" समाप्त हुआ।

॥ उपा ग सूत्र(निरयावलिकादि) स पूर्ण ॥

॥ शेष तीन उपा ग सूत्र स पूर्ण ॥

॥ जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर भाग-८ स पूर्ण ॥

परिशिष्ट

स पादन सहयोगी श्री विमलकुमार जी नवलखा, सूरत के आये प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न-१ : चक्रवर्ती जैसा महान ऋद्धिशाली व्यक्ति चक्ररत्न (एकेन्द्रिय) को प्राणाम क्यों करता है ? एकेन्द्रिय को प चेन्द्रिय स ज्ञी महान ऋद्धि, लब्धिव त, ६३ श्लाघनीय महापुरुष प्रणाम करे यह कैसा जीताचार है ?

उत्तर- आज भी करोडपति अरबपति, लक्ष्मीपूजन, दुकान को प्रणाम, बहीखातों को प्रणाम करते हैं। यह अपनी आवक या समस्त ऋद्धि के आधारभूत वस्तु का सन्मान अहोभाव विनयभाव स्वभाविक ही हो जाता है। चक्रवर्ती कोई भी लौकिक रिवाजों से परे नहीं हुए हैं ऐसा समझ सकते हैं।

प्रश्न-२ : पहले, दूसरे, तीसरे आरे के युगल मनुष्य कैसे जीवन व्यतीत करते होंगे ? इतनी ल बी उम्र होती है और करना कुछ नहीं, कल्पवृक्षों से इच्छापूर्ति हो जाना, मिलना झुलना लोगों से होता नहीं, धर्म क्रिया भी कुछ होती नहीं तो उम्र कटती कैसे है ?

उत्तर- युगलिक मनुष्यों के खाना-पीना, घूमना, भ्रमण स चरण सुखपूर्वक होता है। दो का साथ तो सदा रहता है। पुण्य और सुखी जीवन में समय पास होता है। समय पास तो नवग्रैवेयक अनुत्तर देव तथा नरक सातवीं में भी होता ही है। जिन्हें जैसा जीवन मिला है, समय पास हो ही जाता है। अन्यों को भले समझ में नहीं आता, क्यों कि उनके पास वैसा उदाहरण प्रत्यक्ष नहीं है।

प्रश्न–३ : चक्रवर्ती चुल्लहिमव त पर्वत साधते समय एक लाख योजन का वैक्रिय शरीर क्यों बनाते हैं ? उन्हें वैक्रिय लब्धि होती है क्या ?

उत्तर– चुल्लहिमव त पर्वत का शिखर १०० योजन ऊँचा है । वहाँ ऊपर चुल्लहिमव तकुमार का भवन है । १०० योजन शाश्वत होने से एक लाख योजन उत्सेधा गुल से हो ही जाता है । १ लाख योजन का वैक्रिय शरीर उत्सेधा गुल से ही होता है । अतः भवन में बाण फेंकने के लिये चक्रवर्ती को १ लाख योजन का वैक्रिय शरीर बनाना पडता है । वैक्रिय लब्धि तो ऋद्धिशाली मानवों के पास होती ही है ।

प्रश्न–४ : बढई रत्न प्रत्येक योजन पर त बू आदि लगाता है, तो इतनी बडी सेना का इतना जल्दी पडाव क्यों ?

उत्तर– चक्रवर्ती की सेना का पडाव एक–एक योजन के अ तर से प्रतिदिन होता है । वह घोष पाठ समझना । लम्बी उम्रवालों को रोजाना इतना एक योजन(१२००० कि.मी.)रस्ता काटने से चल सकता है । छोटी उम्र वालों के देव सहाय से ज्यादा रस्ता भी पार हो जाता है । भरत चक्रवर्ती को विजय यात्रा में ६०००० वर्ष लगे थे । अतः एक एक योजन पर पडाव हो तो भी हिसाब जम सकता है । अ तिम बारहवें चक्रवर्ती के ७०० वर्ष की उम्र होती है । उसे १०–२० वर्ष में ही ६ खंड की विजय यात्रा पूर्ण करनी होती है । वह देव सहाय से हो जाती है ।

प्रश्न–५ : ५०० धनुष के चक्रवर्ती के ८० अ गुल का घोडा (अश्वरत्न) होता है तो चक्रवर्ती बैठता कैसे है ?

उत्तर– चक्रवर्ती उत्सेधा गुल से ५०० धनुष की अवगाहना वाले होते है । खुद के माप से तो वे भी ९६ अ गुल के, चार हाथ के

ही होते है । अतः उनके घोडे आदि उनके अ गुल से ८० अ गुल ऊँचे होवे वह योग्य ही होता है ।

प्रश्न–६ : नव निधियों में प्रत्येक की १२ x ९ योजन की ल बाई–चौडाई होती है तो किस भ डार में रखी जाती है ? विनीता नगरी का आयाम विष्क भ भी इतना ही होता है ?

उत्तर– नवनिधियाँ राजधानी के बाहर दूर दूर भूमि के अ दर होती है । उनका मुख भोंयरे जैसा श्रीघर में(लक्ष्मी घर में) होता है । देव व्यवस्था एव वैक्रियलब्धि आदि से शीघ्र कार्य हो जाते हैं ।

प्रश्न–७ : भरत चक्रवर्ती ने दीक्षा स्वय ली या भगवान के पास ग्रहण की ?

उत्तर– भरत चक्रवर्ती को केवलज्ञान हुआ तब तक भगवान ऋषभदेव का निर्वाण हो गया था । अतः उन्होंने स्वय ही अपने साथ दीक्षित राजाओं के साथ विचरण किया था ।

प्रश्न–८ : वक्षस्कार–४ में कमल का वर्णन है, वहाँ योजन ४ कोस का बताया है, क्या यह शाश्वत है फिर भी ऐसा क्यों ?

उत्तर– वक्षस्कार ४ में कमल का वर्णन है वे योजन और ४ कोस या २ कोस या आधा कोस जो भी कथन है वह शाश्वत कोस, योजन समझना । क्यों कि शाश्वत वस्तुओं का माप शाश्वत योजन से ही होता है । कमल पृथ्वीकाय के एव शाश्वत ही हैं।

प्रश्न–९ : श्रीदेवी आदि का वर्णन आया है, इसके देवों का वर्णन क्यों नहीं ? देव बिना देवी किस प्रकार ?

उत्तर– महर्द्धिक देवियों का वर्णन जहाँ भी आता है वहाँ उनकी मुख्यता से आता है । देव का वर्णन वहाँ गौण समझ लेना ।

इतनी ऋद्धि स पन्न देवी के देव तो होते ही होंगे । वर्तमान में भी राष्ट्रपति, प्रधानम त्री आदि स्त्रियाँ हो तो समय समय पर उनका नाम वर्णन आता है उनके आदमी का नाम भी नहीं आता है । अतः श्रीदेवी, लक्ष्मीदेवी, ५६ दिशाकुमारियाँ आदि के देव होना भी समझ लेना ।

प्रश्न–१० : जम्बूद्वीप का जयन्त द्वार जगती से १००० योजन नीचा है क्या ? यदि जगती १००८ योजन ऊपर है तो उसका तालमेल कैसे ? सीतोदा नदी ९५००० योजन आगे लवण समुद्र में कैसे, कहाँ मिलती है ?

उत्तर– जम्बूद्वीप की जगती ३ लाख १६ हजार योजन के घेरे से समभूमि पर ही है उसके ४ द्वार भी वही समभूमि पर है । पश्चिम महाविदेह १००० योजन नीचे है वहाँ दिवाल की व्यवस्था स्वत त्र है। उसी दिवाल के नीचे से नदी का पानी आगे भूमि में फैल जाता है या ९५००० योजन जाकर लवण समुद्र में मिलता है, कुछ भी व्यवस्था होगी पर तु उसका स्पष्ट वर्णन सूत्र में उपलब्ध नहीं है।

प्रश्न–११ : नदी के समुद्र में प्रवेश करने की जगह जगती में जो छिद्र होते है, वहाँ जगती भेद कर नदियें समुद्र में मिलती है, तो जब समुद्र में ज्वार(भरती) आता है तब उस छिद्र से समुद्र का पानी जमीन पर फैलता है क्या ?

उत्तर– नदियाँ जहाँ समुद्र में प्रवेश करती है वहाँ हजारों कि.मी. चौडाई का प्रवाह होता है, अतः ज्वार(भरती)आदि का असर उस पर नहीं आता है । यदि भरती का असर आवे तो भी हजारों कि.मी. चौडाई में उसका भी समावेश हो जाता है ।

प्रश्न–१२ : महाविदेह की लम्बाई १ लाख योजन की कही है, जम्बूद्वीप गोलाकार है, गोलाकार वस्तु कहीं भी एक

जैसे नहीं दिखती तो ३३६८४–४/१९ योजन का महाविदेह पूरा १ लाख योजन कैसे होगा ? गोलाई में कम–ज्यादा नहीं होता है क्या ?

उत्तर– महाविदेह क्षेत्र की लम्बाई १ लाख योजन उत्कृष्ट की अपेक्षा और बीच(सेन्टर)की अपेक्षा समझना चाहिये। अर्थात् सीता–सीतोदा नदी की सीमा में समझना। फिर क्रमशः दोनों बाजु निषध–नीलपर्वत तक घटते घटते कम समझना । अर्थात् महाविदेह पूरा सभी जगह १ लाख योजन लम्बाई वाला नहीं समझ लेना पर तु किसी एक जगह उत्कृष्ट १ लाख योजन लम्बा होता है ऐसा समझना। इसी अपेक्षा महाविदेह की उत्कृष्ट ल बाई १ लाख योजन कही है ।

प्रश्न–१३ : गजद ता पर्वत मेरु के पास जाकर ५०० योजन ऊँचे है, वहाँ चौडाई अ गुल के अ ख्यातवें भाग बताई है, इतना ऊँचा पर्वत ५०० x ४०००=२०,००,००० कोस ऊँचा पर्वत चौडा इतना सा तो यह चर्मचक्षु से दिखता है ? इन पर सिद्धायतन कूट आदि भी है, अ गुल के अस ख्यातवें भाग पर सिद्धायतन कूट कैसे टिक सकता है ? समझाए ?

उत्तर– गजद ता पर्वत जहाँ अ गुल के अस ख्यातवें भाग कहे गये है वे मेरु के साथ मिले हुए हैं । अतः बहुत दूर तक तो उनका अस्तित्व मेरु में समाविष्ट रहता है वह मात्र उनकी सीमा का कथन समझना चाहिये । ऐसा कुछ दूरी तक मेरु और गजद ता का अस्तित्व एकमेक होता है । ज्ञानियों की दृष्टि से स्वत त्र अस्तित्व कहा जाता है । जहाँ १००–५० योजन चौडा होता है अर्थात् योग्य चौडाई कूट के लायक होती है वहीं पर से कूटों की व्यवस्था समझना चाहिये ।

प्रश्न–१४ : आठवीं विजय में सीम धर स्वामी है, ९वीं में

दूसरे श्री बाहू स्वामी है, २४वें में तीसरे सुबाहुस्वामी, २५वें में चौथे युगम दर स्वामी है । हमारे यहाँ यह क्रम नहीं मिलता । भरतक्षेत्र से ९वीं नजदीक है फिर भी ८वीं विजय के श्री सीम धर स्वामी की आज्ञा लेते हैं, क्रम भी अलग दिया है, समझाएँ ?

उत्तर– विहरमानों के नामों का क्रम ग्र थों में जो मिलता है उसमें आठवीं विजय से पहला नाम शुरु होता है । अतः पहले की मुख्यता से ही आज्ञा लेना वगैरह प्रचलन में है । क्रम जो भी मिलता है वह ३२ शास्त्र में तो है नहीं । फिर भी सही क्रम विजय ८,९,२४,२५ इस तरह होना बराबर समझना चाहिये । महाविदेह की ३२ विजयों के वर्णन में भी चार थोक में आता है उससे भी ८,९,२४,२५ न बर चारों थोक के बाह्य किनारे आता है । उसी तरह ५ महाविदेह के २० विहरमान का क्रम हो सकता है । आगम में वर्णन स्पष्ट नहीं होने से क्रम में ज्यादा अ दर उतरना जरूरी नहीं समझना ।

प्रश्न–१५ : सूर्य चन्द्र की तरह नक्षत्र–ग्रह–तारे भी नये नये म डल में घूमते हैं ? या एक ही म डल में अपनी सीध में चक्कर लगाते हैं ?

उत्तर– चन्द्र, सूर्य और ग्रह तीनों के म डल परिवर्तन होते हैं । नक्षत्र और तारे एक ही म डल में जहाँ होते हैं उसी म डल में घूमते हैं । सूर्य–चन्द्र के म डल भ्रमण की विधि शास्त्र में स्पष्ट बताई है । वैसे ग्रहों के म डल की स ख्या और भ्रमणविधि का वर्णन नहीं मिलता है । केवल उल्लेख प्राप्त होता है कि ग्रह म डल पलटते हैं । सूर्य चन्द्र म डल पलटते रहने से इनकी गति सदा बदलती रहती है क्यों कि अ दर के म डल से बाहर का म डल परिधि में ज्यादा होता है और प्रत्येक म डल को एक दिन में पार करके अगले म डल में दूसरे दिन पहुँच जाना जरूरी होता है ।

ग्रहों का ज्यादा वर्णन मिलता नहीं है । नक्षत्रों की गति सबकी प्रायः समान स्थिर होती है । ताराओं की भी वैसे ही समान होती है । चन्द्र–सूर्य–ग्रह–नक्षत्र–तारा यों इन पाँचों की गति क्रमशः अधिक अधिक होती है । जिसमें चन्द्र सूर्य की और ग्रह की बढती घटती रहती है, नक्षत्र तारा की सदा एक सी रहती है ।

प्रश्न–१६ : राहु से चन्द्र या सूर्य को क्या नुकसान होता है ? राहु चन्द्र आदि के मार्ग में बाधक क्यों है ? ये तो इन्द्र है, राहु इनकी अवहेलना आशातना कैसे और क्यों करता है ? इन्द्र इनका प्रतिकार या तिरस्कार क्यों नहीं करते ?

उत्तर– राहु से सूर्य चन्द्र को कोई नुकसान या आशातना नहीं होती है किन्तु राहु विमान सूर्य चन्द्र के नीचे आडा आ जाने से हमें मानवों को सूर्य चन्द्र आच्छादित दिखते हैं । उसी को ग्रहण वगैरह रूप में कहा जाता है किन्तु ग्रह, सूर्य चन्द्र को कुछ भी बिगाड नहीं करते है, कुछ दूरी पर नीचे भ्रमण करते रहते हैं ।

प्रश्न–१७ : ग्रहों से मानव जीवन पर क्यों असर होता है ?

उत्तर– ग्रह किसी का भला बुरा करते नहीं है । लोक में निमित्तज्ञान होता है जो कुछ ग्रहों के आधार से भी और कुछ नक्षत्रों के एव राशि के आधार से भी होते हैं । वह सब निमित्त का अनुमानित एव फलावट का ज्ञान होता है ।

प्रश्न–१८ : ज बूद्वीप में तीर्थंकरों का जन्माभिषेक करने ६४ इन्द्र आते है, सूर्य चन्द्र के आने की क्या व्यवस्था है ?

उत्तर– ६४ इन्द्र भगवान का जन्म महोत्सव करने आते हैं, उसमें सूर्य चन्द्र उत्तर दक्षिण के अपनी अपनी दिशा से आते हैं । मेरु से उत्तर के तीर्थंकर हो तो उत्तरी सूर्य चन्द्र आते हैं । मेरु के दक्षिण दिशा के तीर्थंकर का महोत्सव हो तो दक्षिण के चन्द्र सूर्य आते हैं । ऐसा ही स पूर्ण ढाईद्वीप में समझ लेना ।